

ॐ श्रीगम् ॐ

अथ वेदाङ्गप्रकाशः

प्रकरणः पञ्चमः भागः

रुच्यैणताद्धितः

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां पञ्चमी भागः

— ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ —

श्रीमत्सुबोधिमिश्रप्रणयनरत्नसुतीकृतव्याख्यासहितः

— ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ —

पठनपाठनसंस्करणाय अष्टमं पुस्तकम्

ॐ श्रीगुरुभ्यो नमः ॐ

अथ वेदाङ्गप्रकाशः

तमस्यः पण्डितो भागः

रुत्रैणताद्धितः

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

पानिनिमुनिप्रणीतायाश्चन्द्राध्याय्यां पञ्चमो भागः

श्रीमत्सुबोधिसत्त्वानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः

पठनपाठनव्यवस्थायां अष्टमं पुस्तकम्

सप्तमेरुनगरे वैदिक-पन्थायवे मुद्रितः

सूटपन्थाः १,१६,०५,३३,०९१

सातवीथार

१०००

}

विषय संवत् २०४८

कुल

₹ ४०.००

भूमिका।

यह छायाव्यापी का पाँचवां भाग, और पटन वाटन में साठवां पुस्तक है। मैंने इसकी बनाना साधारणक इतिहास समझा है कि यद्वन पढ़ायेवालों की 'स्वी' और 'तद्वित' प्रत्ययों का भी बोध होना आवश्यक उचित है। इसके जाने बिना अन्य शास्त्रों का पढ़ना भी सुगम नहीं हो सकता। विशेष तो यह है कि संस्कृत में जैसा तद्वित प्रत्ययों से अधिक बोध होता है, वैसा अन्य से नहीं हो सकता। इसमें बोधा का तो स्वीप्रत्यय का प्रकरण है, बाकी दोनों मध्यम तद्वित के हों हैं। इनमें से मुख्य मुख्य सूत्र, जो कि विशेष कर के वेदादि शास्त्रों और संस्कृत में उपयुक्त है, उन की लिख कर, भाष्य के वालिक, चरिका, उदाहरण, प्रत्युदाहरण भी लिखे हैं, जिस से 'स्वीप्रत्यय' और 'तद्वित' का भी यथावत् बोध हो।

इस में बहुत कर के 'उत्तम' और 'अपवाद' के सूत्र हैं। जैसे—सर्विक के अपवाद सब तद्वित सूत्र, और यम् का अपवाद इम्, और इम् के अपवाद यम् आदि प्रत्यय हैं। जो अपवाद सूत्र हैं, वे उत्तम के विषय ही में प्रयुक्त होते हैं, उन से जो बाकी विषय रहता है, जो उत्तम का होता है। परन्तु अपवाद सूत्र के विषय में उत्तम सूत्र कभी प्रयुक्त नहीं होते। जैसे—चक्रवर्ती राजा के राज्य में सामन्तिक राजा, और सामन्तिक के राज्य में कुछ छोटे सामन्ति, उनके विषय में कुछ छोटी भूमि वाले अपवादवत्, और बड़े राज्यवाले उत्तमवत् होते हैं, ऐसे ही सूत्रों में भी समझना चाहिये।

कोटि कोटि अपवाद परमात्मा की देना चाहिये कि जिसने अपनी वेदविद्या को प्रसिद्ध कर के मनुष्यों का परमहित किया

है, कि जिस को पहले महाबुद्धि वाचिनि सद्वृत्त पुरुष हो गये। जिन्होंने हजार स्त्रीकमुक्त छोटे ही ग्रन्थ ग्रन्थाध्यायी, और कुछ कम चौबीस हजार स्त्रीकों के बीच महाभाष्य ग्रन्थ में समग्र वेद और लौकिक संस्कृत शब्दसभी महासमुद्र को भी वक्षानोष्म सिद्ध करके निर्दिष्ट करा दिया है, कि जिस से एक शब्द भी चाकी नहीं रह गया। उन को भी अनेक ग्रन्थवाद देना चाहिये, कि जो हम लोगों पर बड़ा उपकार कर गये हैं। वैसे उनको भी ग्रन्थवाद देना चाहिये कि जो इन्हीं ग्रन्थों के पहले पढ़ाने और प्रसिद्ध करके निष्कण्ट होकर तब मन मन से प्रवृत्त रहते हैं।

क्योंकि 'तदधीते गदोद' जो विद्वान् व्याकरण को पहले और पहिले उन्हीं को 'वैयाकरण' कहते हैं। और जो महावीरवीरवीर सम्पूर्ण गुणवृत्त निर्वीर वाक्य को छोड़ कर अपनी भुद्ध बुद्धि से प्रसिद्ध के लिये अतिचिह्नकर केदविचारहित 'सारस्वतचन्द्रिका' 'महाश्री' 'कातन्व' और 'मिहिरातकीभुवो' आदि अमुक्त ग्रन्थ रच के परमपुत्रीत ग्रन्थों की उन्नति के प्रतिकण्टक हो गये हैं, उन को न वैयाकरण और न हितकारी समझना चाहिये, प्रत्युत अहितकारी है। क्योंकि जो व्याकरण का सम्पूर्ण बीज तीन कथों में बचाये हो सकता है, उस को ऐसा कठिन और अव्यवस्थित विद्या है कि जिसको पचास वर्ष तक पढ़ के भी व्याकरण के पूर्ण विषय को बचाये नहीं जान सकते। उन के लिये ग्रन्थवाद का विरुद्धार्थी शब्द देना ठीक है।

जो इन ग्रन्थ में सूत्र के पाये शब्द है, जो इस की सूत्रसंख्या; और अ० संकेत से ग्रन्थाध्यायी; एक (१) से अथवा; दो (२) से वाद; तीन (३) से सूत्रसंख्या समझनी चाहिये ॥

अथ रुत्रैणताद्धितः

स्त्रियाम् ॥ १ ॥ — अ० ४ । १ । ३ ॥

यह अधिकार सूत्र है । इस से प्राये जो प्रत्यय विधान करेंगे, तो सब स्त्रीप्रकरण में जानना चाहिये ॥ १ ॥

अजाघतष्टाम् ॥ २ ॥ — अ० ४ । १ । ४ ॥

जो स्त्री अधिकृत हो, तो अजादि गणपठित और अकारान्त जालिपदिकों से टाप् प्रत्यय हो ।

जैसे—अजादि—अजा; एका; कोकिला; गटका इत्यादि ।
अघत—अघा; देवदत्ता; शाला; माला इत्यादि ।

अकारान्त शब्द जब स्त्रीलिङ्ग के वाचन होते हैं, तब सब से टाप् हो हो जाता है । यर्थात् स्त्रीलिङ्ग में अघत कोई शब्द नहीं रहता ॥ २ ॥

प्रत्ययसंभारकात्पूर्वस्याज्ज इदाप्यनुपः ॥ ३ ॥

—अ० ५ । ३ । ४४ ॥

घात् परे हो, तो प्रत्ययसंभार से पूर्व जो घात् उस की इकार प्रादेश हो, परन्तु जो वह घात् सुप् से परे न हो तो ।

जैसे—जटिनिका; मुम्भिका; कारिका; हारिका; पात्रिका; पाठिका इत्यादि ।

‘प्रत्यय’ बहुवच इत्यत्रिये है कि—शक्नोतीति शक्ता । ‘अकार से पूर्व’ इसलिये कहा है कि—नन्दना; रमया । ‘पूर्व को इत्थ’ इत्यत्रिये कहा है कि—कटुका, वहाँ पर को न हुआ । ‘अकार को इत्थ’ इसलिये कहा है कि—गीका, वहाँ न हो । ‘अपरकरत्थ’ इसलिये है कि—राका; याका, वहाँ इत्थ न हो । ‘आप् के परे’ इसलिये कहा है कि—कारकः; वारकः; वहाँ न हो । ‘अमुप्’ इसलिये है कि—बहुवः परिव्राजका असमाभिति बहुपरिव्राजका वाराभक्षी ॥ ३ ॥

वा०—मामकनरकधीर्यसंख्यानं कर्तव्यमप्रत्ययस्य-
त्वात् ॥ ४ ॥

सुप्रसिद्ध आप् के परे मामक और नरक शब्द के अत् को भी इकार आदेश हो ।

वैसे—ममेयं मामिका; नरान् कावलीति नारिका ॥ ४ ॥

वा०—प्रत्ययप्रतिषेधे त्यक्त्यधीरधीरसंख्यानम्^१ ॥ ५ ॥

सुप्रसिद्ध आप् परे ही तो त्यक् और त्यन् प्रत्ययान्त को इत् आदेश हो ।

वैसे—दाक्षिणामिका; इहस्तिका^२ इत्यादि ॥ ५ ॥

१. यह वाक्य इसलिये कहा है कि (उचोत्ता०) इस अन्ते सूत्र से व पूर्व होने से कितना कर्त्तृ रूप जाना है, की मिला ही ही पाये ॥

२. यहाँ दाक्षिणा शब्द से (दाक्षिणाधनभक्तुरसमायक्) इस सूत्र से ‘त्यक्’ प्रत्यय और इह शब्दक शब्द से (इहत्वात् त्यन्) इस सूत्र वरत्ति ‘त्यन्’ प्रत्यय हुआ है ॥

न यासथीः ॥ ६ ॥ —यन् ३ । ३ । ४३॥

स्त्रीविषय में या थीर या इनके ककार से पूर्व यत् को इत् प्रादेश न हो ।

जैसे—यथा; तथा; यद्वा 'यत्; तत्' शब्दों से 'यकथ' इत्ययं हुआ है ॥ ६ ॥

वा०—यसथीः प्रतिषेधे त्यक्त्वन उपसंख्यानम् ॥ ७ ॥

यत् थीर तत् शब्दों को ओ इत्थ का निषेध किया है, यद्वा त्यक्त्वं उपसंख्यान को भी इत्थ न हो ।

जैसे—उपत्यका; अश्रित्यका^१ ॥ ७ ॥

वा०—पावकादीनां छन्दस्पुपसङ्ख्यानम् ॥ ८ ॥

पावका आदि वैदिक शब्दों में इत्थ न हो ।

जैसे—हिरण्यवर्णाः शुभयः पावका; पाप्म प्रलोभकाः ।

'छन्द' कह्य इसलिये है कि—पाविका; प्रलोभिका, यद्वा लोक में निषेध न हो जावे ॥ ८ ॥

वा०—आश्लिषि शीपसङ्ख्यानम् ॥ ९ ॥

आशीर्वाद शब्द में वर्तमान शब्दों को इत्थ न हो ।

जैसे—जीवतात् = जीवका; नन्दतात् = नन्दका; भवतात् = भवका इत्यादि ॥ ९ ॥

१. यहाँ भी व पूर्व के होने से (उदीवा०) इसी समान रूप से विकल्प प्राप्त है, को निषेध कर दिया ॥

वा०—उत्तरपदलोपे चोपसङ्ख्यानम् ॥ १० ॥

उत्तरपद का जहाँ लोप हो वहाँ इत्त्व न हो ।

जैसे—देवदत्तिका—देवका; मतदत्तिका—मतका इत्यादि ॥ १० ॥

वा०—क्षिपकादीनां चोपसङ्ख्यानम् ॥ ११ ॥

क्षिपका आदि शब्दों में इत्त्व न हो ।

जैसे—क्षिपका; झूबका इत्यादि ॥ ११ ॥

वा०—तारका ज्योतिष्पुपसङ्ख्यानम् ॥ १२ ॥

तारका शब्द जहाँ लक्ष्य का नाम हो, वहाँ उसकी इकारादेश न हो ।

जैसे—तारका ।

‘ज्योति’ ग्रहण इसलिये है कि—तारिका वाली, वहाँ निर्देश न हो ॥ १२ ॥

वा०—वर्णका तान्त्रव उपसङ्ख्यानम् ॥ १३ ॥

गन्तुओं के समुदाय में वर्तमान वर्णका शब्द की इत्त्व न हो ।

जैसे—वर्णका शायरजभेदः ।

‘तान्त्रव’ इसलिये कहा है कि—वर्णिका भानुरी शोकावरो, वहाँ न हो ॥ १३ ॥

वा०—वर्त्तका शकुनी प्राचामुपसङ्ख्यानम् ॥ १४ ॥

वर्ती का वाली जहाँ वर्त्तका शब्द हो, वहाँ उस की इकारादेश न हो, प्राचीन भाषाओं के मत में ।

जैसे—वर्त्तका शकुनिः । उन्वव वर्त्तिका ।

'शङ्कु' ग्रहण इत्यलिये है कि—यत्तिका भानुरी लीकायतस्य यहाँ न ही ॥ १४ ॥

वा०—अष्टका पितुर्देवत्ये ॥ १५ ॥

पितृ और देवताकर्मों में वर्तमान अष्टका शब्द को इकार न ही ।

जैसे—अष्टका ।

'पितुर्देवत्य' इत्यलिये है कि—अष्टिका खारी, यहाँ ही जाये ॥ १५ ॥

वा०—वा सूतकापुत्रकाबुन्दारकानामुपसङ्ख्यानम् ॥ १६ ॥

सूतका यानि यहाँ को विकल्प करके इकार ही ।

जैसे—सूतिका, सूतका; पुत्रिका, पुत्रका; बुन्दारिका, बुन्दारका ॥ १६ ॥

उदीचाभातः स्थाने यकपूर्वाया ॥ १७ ॥

—वा० ७ । ३ । ४५ ॥

उत्तरदेशीय भाषाओं के मत में जो अक्षरविषयक यकार और ककार में पूर्व याकार के स्थान में यकार उस को इत् यादेश ही ।

जैसे—यकारपूर्व—इभ्यका, इभ्यिका; अक्षिपका, अक्षिपिका । ककारपूर्व—चटका, चटकिता; मूषका, मूषकिता ।

'यात्' ग्रहण इत्यलिये है कि—साङ्कायके भवा साङ्का-भियका, यहाँ न ही । 'यकपूर्व' ग्रहण इत्यलिये है कि—अभियका, यहाँ विकल्प न ही ॥ १७ ॥

वा०—वक्त्रपूर्वत्वे धात्वन्तप्रतिषेधः ॥ १८ ॥

धातु के अन्त के अकार बकार जिस से पूर्व हों, ऐसे अकार को इकार हो। मूल से जो निकल आया है, उस का निषेध कर के निरव विधान किया है।

जैसे—मुनिका; मुनविका; कुनिका; असीविका इत्यादि ॥१८॥

असर्वव्यापताद्वारचानङ्पूर्वाणामपि ॥ १९ ॥

—वा० १७। ३। ४७ ॥

सर्वविषय में जो भवता, एवा, जा, जा, डा, स्वा, ये अक्षर मन्त्रपूर्वक हों, जो भी आकार के अकार को इन् आवेश न हो, उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में।

जैसे—भरवका, भरविका; एवका, एविका; जका, जिका; जका, जिका; इके, डिके; रवका, रविका। मन्त्रपूर्वक—अभरविका, अजवका; अजका, अजिका; अरवका, अरविका; अरवका, अरविका इत्यादि^१ ॥ १९ ॥

अभावितपुंस्काच्च ॥ २० ॥ —वा० ७। ४। ४८ ॥

जो अभावितपुंस्लिङ्ग से बरे, धातु के अन्त में अकार, उस को उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में इन् आवेश न हो।

१. यहाँ एका और डा इन दो मन्त्रपूर्वक मन्त्रों को एकाएक समझे नहीं होना, कि जो अन्त की प्रातिपदिक संज्ञा होने विधिति जाती है, उन् से बरे डात् होता है, इस कारण उपरहितधातु के न होने के प्राप्ति हो नहीं है न।

जैसे—अद्यका, अद्यिका; अद्यद्याका, अद्यद्यिका; परम-
अद्यका, परमअद्यिका इत्यादि ॥ २० ॥

आवात्वाय्यानाम्^१ ॥ २१ ॥ —घ० ७।३।४९ ॥

आवात्वा की मूल में, स्त्री विषय में अभाषितपूर्वक प्रातिपदिकों
से परे श्री आत् के स्थान में अकार, उस को आत् आदेश हो ।

जैसे—अद्याका, अद्याद्याका; परमअद्याका इत्यादि ॥ २१ ॥

अन्तेभ्यो ङीप् ॥ २२ ॥ घ० ४।१।१५ ॥

स्त्रीविषय में अकारान्त और नकारान्त प्रातिपदिकों से ङीप्,
प्रत्यय हो ।

जैसे—अकारान्त— कर्त्री; हर्त्री; वक्तुी इत्यादि । नकारान्त—
हस्तित्री; मालित्री; दन्तित्री; अग्नित्री इत्यादि ॥ २२ ॥

उचित्तस्य ॥ २३ ॥ घ० — ४।१।१६ ॥

स्त्रीविषय में जो उचित् शब्द लब्ध है, उस से और तदन्त
प्रातिपदिकों से भी ङीप् प्रत्यय हो ।

जैसे—अवर्ती; प्रतिभवती; वचनती; यजन्ती इत्यादि ॥ २३ ॥

आ०—आतोऽचितः प्रतिषेधः ॥ २४ ॥

उक्त जिस का इत् गया हो, ऐसे निवृत् यादि अविवक्षित
अन्तमान्त आतु प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय न हो ।

१. यहाँ आवात्वा शब्द के बहुवचन स्थिति के पञ्चमि आवात्वा के अन्त में
अकारान्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय न हो ।

जैसे -उवाचत्; पणञ्चत्^१ आह्वयौ ॥ २४ ॥

वा०-अञ्चतेऽचोवसाङ् ह्यनम् ॥ २५ ॥

उचित् वातु से जो डीप् का निषेध किया है, वहाँ अञ्चत् का उपसङ्गवान्, अर्थात् उससे डीप् का निषेध न हो ।

जैसे -प्राची; प्रतीची; उदीची ॥ २६ ॥

वनौ र ष ॥ २६ ॥ —अ० ४। १। ७ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वञ्जन्त प्रातिपदिकों से डीप् प्रत्यय हो, और उस वञ्जन्त को रेफ आदेश हो जाये ।

जैसे -वीचरी; पीचरी; सबरी इत्यादि ॥ २६ ॥

वा०-वनौ न ह्रस्वः ॥ २७ ॥

ह्रस्व प्रत्याहार से परे जो वन् लट्जन्त से डीप् न हो ।

जैसे -सहसुच्चा^२ आह्वयौ ॥ २७ ॥

वाचोऽन्यतरस्याम् ॥ २८ ॥ —अ० ४। १। ८ ॥

स्त्री वच में वाचसञ्जन्त प्रातिपदिकों से विकल्प करके डीप् प्रत्यय हो ।

जैसे -द्विचदो, द्विचाद्; त्रिचदो, त्रिचाद्; चतुस्चदो, चतुस्चाद् इत्यादि ॥ २८ ॥

१. वहाँ अञ्चत् और अञ्चत् वातु से अञ्चत् प्रत्यय के परे वञ्जन्त को वञ्जन्त में वञ्जन्त (वञ्जन्तवञ्जन्त) इससे वञ्जन्त हो गया है ।

२. यहाँ यह उपसङ्ग वातु से वञ्जन्त प्रत्यय (सह व) इस वच से हुआ है, और ह्रस्व प्रत्याहार से वञ्जन्त से परे वन् है ।

टाप् ॥ २९ ॥ — अ० ४ । १ । ९ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान आग्नेदविषयक वादग्रन्थान्त आतिपदिकों से टाप् प्रत्यय हो ।

जैसे— द्विपदा ऋक्; त्रिपदा ऋक्; बहुपदा ऋक् ।

‘ऋक्’ इत्यादि इतिशेषे हे कि— द्विपदी बृहन्तो, यहाँ टाप् न हो ॥ २९ ॥

न षट्संज्ञादिभ्यः ॥ ३० ॥ — अ० ४ । १ । १० ॥

षट्संज्ञक और स्वन् आदि वचनपठित आतिपदिकों से स्त्रीप्रत्यय न हो ।

जैसे— षष्ठ्य आह्वयः; सप्त नव दश वा । स्वसा; दुहिता; ननान्दा; माता; माता; तिस्रः; चत्वारः इत्यादि ।

यहाँ ऋकारान्त शब्दों में ङीप् और षष्ठ्य आदि षट्संज्ञकों के अन्तर्ग नकार का लोप होके षडन्तों से टाप् प्रत्यय आता है, जो दोनों का निषेध समझना चाहिये ॥ ३० ॥

मनः ॥ ३१ ॥ — अ० ४ । १ । ११ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान मन्प्रत्ययान्त आतिपदिकों से ङीप् प्रत्यय न हो ।

जैसे— दामा, दामानी, दामानः; पामा, पामानी, पामानः; सीमा, सीमानी, सीमानः; प्रतिमहिमा, प्रतिमहिमानी, प्रतिमहिमानः इत्यादि ॥ ३१ ॥

अन्यो बहुव्रीहेः ॥ ३२ ॥ — अ० ४ । १ । १२ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान अग्रन्त बहुव्रीहि समास से ङीप् प्रत्यय न हो ।

जैसे—सुदर्भा, सुपर्वाणी, सुपर्वाणः; सुश्रम्भा, सुश्रमाणी, सुश्रम्बाणि; इत्यादि ।

‘बहुव्रीहि, बहुव दक्षलिपे है कि—प्रतिपद्यन्ता राजानमति-
राजी, यहाँ एकविधलिपिमान में निषेध न लगे ॥ ३२ ॥

बाबुभाभ्यामन्यतरस्याम् ॥ ३३ ॥ —घ० ४।१।१३०

जो मध्यन्त प्रातिपदिक और सन् प्रथमान्त प्रातिपदिकान्त बहुव्रीहिसमान हो, तो इनसे स्त्रीनिग में विकल्प करके सन् प्रत्यय ही जाय ।

जैसे—मध्यन्त—पामा, पासे, पामाः; सीमा, सीमे, सीमाः ।
पञ्च में—पामा, पामानी, पामानः; सीमा, सीमानी, सीमानः ।
मध्यन्त बहुव्रीहिसमान—बहुवो राजानोऽस्यां नमस्यौ सा बहुरात्रा
नगरी, बहुरात्रे नमस्यौ, बहुरात्रा नमस्यः; बहुतक्षा, बहुतक्षे,
बहुतक्षाः । पञ्च में—बहुरात्रा, बहुरात्रानी, बहुरात्रानः; बहुतक्षा,
बहुतक्षाणी, बहुतक्षाणः ।

यहाँ ‘अन्यतरस्याम्’ बहुव दक्षलिपे है कि—(बनो र च)
इस सूत्र के विषय में भी विकल्प हो जाये । जैसे—बहुधीया,
बहुधीवरी; बहुधीया, बहुधीवरी इत्यादि ॥ ३३ ॥

अनुपसर्जनात् ॥ ३४ ॥ —घ० ४।१।१४॥

यहाँ से आये जिस जिस शब्द का विधान करिये, सो सो
अनुपसर्जन प्रयोजि स्वार्थ में, मुख्य प्रातिपदिकों ही से हूयि ।
इत्यलिये यह प्रसिद्धाद सूत्र है ॥ ३४ ॥

टिड्ढाणञ्ठयसञ्दध्नाञ्माञ्चत्तपप्ठक्ठञ्कञ्चवरपः ॥ ३५ ॥

—घ० ४।१।१५॥

यहाँ चदन्त की अनुबुलि सर्वत्र चली जाती है । परन्तु यहाँ
सम्भव होता है यहाँ विशेषण किया जाता है ।

इ. पाण, धाञ्, इयत्तञ्, दप्ताञ्, भावञ्, लवञ्, टञ्, ठञ्, कञ्, खीर कवरञ् ये प्रत्यय जिनके अन्त में हों उन, खीर अन्त मनुषमर्जन दिन प्रातिपदिकों से शीघ्र प्रत्यय हो ।

जैसे—टिन्—कुश्चरी; मइचरी । ड—घाग्नेयी; शीघर्णेयी;
 वैनतेयी । खम्—श्रीरमयी; कुम्भकारी; नक्षत्रकारी । घञ्—
 शौलसी; शौचपानी । इयसच्—उग्रइयसी; जानुइयसी । दध्न्—
 ऊरुदध्नी; जानुदध्नी । बावच्—ऊरुमायी, जानुमायी । तवच्—
 द्वितीय; चतुष्टयी; पंचतयी । ठक्—आशिकी; आलापिकी ।
 टञ्—लावणिकी । कञ्—यादुगी; तादुगी । नवरप्—हाथरी;
 नाथरी ।

यहाँ 'अनुपमार्जन' इत्यस्य इसलिये है कि—बहुब्रुवराः बहुमद्वरा नवरा इत्यादि से कोप् न ही । यह टित् आदि मदात्त शब्दों से टाप् प्राप्त है, इसलिये उसका व्यवहार यह सूत्र समझना चाहिये ॥ ३४ ॥

या ०—नमस्त्वर्गोक्तवत्पुंस्तद्व्याप्तत्वात् नान्यथाप्यस्य ॥ ३ ॥

नञ्, स्तब्ध्, ईकच्, क्युन् इन् प्रत्ययान्त शब्दों, घोर, तरण, तल्लु शब्दों से स्त्रीविषय में डीन् आशय होवे । जैसे—नञ्—स्वैधी; स्तब्ध्—पीसनी; ईकच्—शास्त्रिणी, याष्टिणी; क्युन्—आश्रयभूतणी, सुभगभूतणी; तल्लु; तल्लुनी इत्यादि ।

यहां भी तदन्त प्रातिपदिकों से दान् ही प्राप्त है, जसका अर्थवाच यह भी वाचिक है ॥ ३६ ॥

सप्तमः ॥ ३०॥ — अ० । ४ । ३ । १५ ।

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान वच्, प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से स्त्री-प्रत्यय हो। जैसे - शायी; आरसी इत्यादि। यहाँ वर्ग और वचन शब्दों से वच्, प्रत्यय हुआ है। ३.७।

वा०—अवस्थाग्रहणं कर्तव्यम् ॥३८॥

जिस यज्ञ अवस्था का पूर्व सूत्र में प्रहृत है, वह अवस्थाधिकार का यज्ञ समाप्ता । क्योंकि इत्यादि शिक्ताः^१ इत्यादि, वहाँ हीन् व हो जाये ॥ ३८ ॥

प्राचीं वक्षस्तद्धितः ॥३९॥ —अ० ४।१।१०॥

लोहितज्ञ में वर्तमान यज्ञ प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से प्राचीन भाषाओं के मत में तद्धितसंज्ञक एक प्रत्यय हो । जैसे—
गार्ग्यायनी; वात्स्यायनी ।^२ श्रीरों के मत में—गार्गी;
वात्सी ॥ ३९ ॥

सर्वत्र लोहितवदिकतन्त्रेभ्यः ॥४०॥

—अ० ४।१।१०॥

जो लोहित आदि कत वर्तन्त यथादिमन्त्रादि सकारान्त यन्त्र हैं, उन से तद्धित संज्ञक एक प्रत्यय होता है । जैसे—
लोहितादि—लोहित्यायनी, काशित्यायनी; वात्स्यायनी ।
कतन्त्र—कात्यायनी इत्यादि ॥ ४० ॥

कीरव्यमाण्डूकाभ्याञ्च ॥४१॥ —अ० ४।१।११॥

कीरव्य और माण्डूक प्रातिपदिकों से तद्धितसंज्ञक एक प्रत्यय ही । जैसे—कीरव्यायनी; माण्डूकायनी इत्यादि ॥ ४१ ॥

वा०—आसुरेशपत्न्युत्पानम् ॥४२॥

आसुरि यन्त्र से भी तद्धितसंज्ञक एक प्रत्यय ही । जैसे—
आसुरायनी ।

१. वहाँ हीनिक यज्ञ प्रत्यय (हीनायुक्तयुक्त यज्ञ) समझे हुआ है, प्रातिपद हीन् व हुआ, उत्तरार्ध हीन् ही यज्ञ ॥

२. वहाँ एक प्रत्यय के निम्न होने से तदन्त से हीन् प्रत्यय ही जाता है ॥

यहाँ धातुरि शब्द में व्यत्ययजनक इच् प्रत्यय दिया है। पूर्व (प्राचां ७४०) इस सूत्र में 'तद्धित' ग्रहण का प्रयोजन भी यही है कि धातुरि शब्द के इकार का जोष हो जाये ॥ ४२ ॥

वयसि प्रथमे ॥४३॥ —सं० ४। १। २० ॥

जो प्रथम वयस्या विदित होती हो, तो अकारान्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो। जैसे—कुमारी; किशोरी; वसन्ती; यमकरी।

यहाँ 'प्रथम वयस्या' ग्रहण इसलिये है कि श्यविरा; बृद्धा इत्यादि से ङीप् न हो। 'अकारान्त' से इसलिये कहा है कि—विभुः, यहाँ ङीप् प्रत्यय न हो ॥ ४३ ॥

वा०—वयस्यचरम इति वक्तव्यम् ॥४४॥

सूत्र में प्रथमावस्था में जो ङीप् कहा है, वहाँ चरम अर्थात् बृद्धावस्था की सीढ़ के कहना चाहिये। जैसे—वृद्धा; शिरम्यो। ये प्राप्तकीन द्वितीय अवस्था के नाम हैं। प्रथमावस्था के कहने से यहाँ प्राप्ति नहीं की ॥ ४४ ॥

द्विषोः ॥४५॥ —सं० ४। १। २१ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान द्विपुल्लङ्ग बदन्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो। जैसे—वज्रमूली; दधमूली; पण्डाभ्यामी इत्यादि।

यहाँ 'वत्' ग्रहण इसलिये है कि—वज्रमूलिः, यहाँ ङीप् न हो ॥ ४५ ॥

अपरिमाणविस्तारितकाम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि ॥४६॥

—सं० ४। १। २२ ॥

यहाँ तद्धित का लुक् हुआ हो, यहाँ स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान अपरिमाणान्त विस्तान्त भावितान्त और कर्मत्वान्त द्विगु प्रातिपदिकों से लीव् प्रत्यय न हो । जैसे—वज्रवधिरक्ष्यः श्रीला वज्रवाध्या, दशवाध्या, द्विवर्षी, त्रिवर्षी, द्विसता, त्रिसता; द्विविस्ता, त्रिविस्ता; द्वायाचिता, त्रयाचिता; द्विकम्बलया, त्रिकम्बलया ।

यहाँ 'अपरिमाण' ग्रहण इसलिये है कि—द्वयाचकी, त्रयाचकी, यहाँ निषेध न हो । 'तद्धितलुक्' इसलिये है कि—वज्रवाध्या, यहाँ भी होजाये ॥ ४६ ॥

काण्डान्तात्क्षेपे ॥४७॥ —घ० ४ । १ । २३ ॥

तद्धित का लुक् हुआ हो, तो लोचवाची स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान काण्ड कर्मत्वान्त द्विगु प्रातिपदिक से लीव् प्रत्यय न हो । जैसे—द्वे काण्डे वनाणक्षयाः सा द्विकाण्डा ।

'लोच' इसलिये कहा है कि—द्विकाण्डा रज्जुः, यहाँ निषेध न हो । 'काण्ड' शब्द के अपरिमाणवाची होने से पूर्वसूत्र से ही निषेध हो जाता, फिर लोचग्रहण निषेधार्थ है ॥ ४७ ॥

पुरुषात् प्रमाणेऽन्यतरस्याम् ॥४८॥

—घ० ४ । १ । २४ ॥

जो तद्धित का लुक् हुआ हो तो प्रमाण अर्थ में स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान पुरुषान्त द्विगु प्रातिपदिक से लीव् प्रत्यय विकल्प करके होवे । जैसे—द्वौ पुरुषौ प्रमाणमस्याः परिखायाः सा द्विपुरुषा, द्विपुरुषी; त्रिपुरुषा, त्रिपुरुषी ।'

१. यहाँ अपरिमाणान्त पुरुष कर्म के लिये ही निषेध प्राप्त है, इसलिये बहु वचनात् विभाजा कर्मत्वकी आदिसे ॥

यहां 'प्रमाण' ग्रहण इसलिये है कि—आम्हीं पुरुषाभ्यां कीता द्विपुरुषा; त्रिपुरुषा, यहाँ विकल्प करने कीन् न हो। और 'तद्विस्तृतम्' इसलिये है कि—द्विपुरुषो; त्रिपुरुषो, यहाँ समाहार में निषेध न होवे ॥ ४८ ॥

बहुव्रीहेकधसो द्वीप् ॥४९॥ —स० ४ : १ : २३ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान अथम् शब्दान्त बहुव्रीहि प्रातिपदिक के द्वीप् प्राचय हो। जैसे—मह इव ऊधो वसमाः सा बहुव्रीहि; कुम्भोष्णी^१ ।

यहां 'बहुव्रीहि' ग्रहण इसलिये है कि—आप्ता ऊधः प्राप्तोष्णा, यहाँ न दूषा ॥ ४९ ॥

सङ्ख्याख्यायदेर्द्वीप् ॥५०॥ —स० ४ : १ : २४ ॥

संख्या और शब्द जिस के आदि में हों, ऐसा जो स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान अथम् शब्दान्त बहुव्रीहि प्रातिपदिक है, उस के द्वीप् प्राचय हो। जैसे—संख्या—द्विपूष्णी; त्रिपूष्णी। शब्द—सप्तपूष्णी; निरुधनी।

यहां 'आदि' ग्रहण से द्विव्रीहोष्णी, त्रिव्रीहोष्णी इत्यादि के भी द्वीप् हो जाता है ॥ ५० ॥

१. अथम् वाय आदि के ऐन को कहते हैं, कि जो दूष पर समाप्त है। इस अथम् शब्द के जब समासान्त 'अङ्' प्राचय होने के कारण हो जाता है, जब (यनी बहु०) इस पुंल्लिङ्ग सूत्र से कप् और निषेध शान्त होता है, उसका यह अर्थवाच्य है ॥

वामहृत्पदान्तात् ॥५१॥ अ० ४।१।१०॥

संज्ञा प्रस के प्रादि में, वामन् तथा हृत्पदान्तात् में ही, ऐसे स्थानिक में वत्तमान बहुव्रीहि प्रातिपदिक से ही प्रत्यय होते। जैसे—वैराग्नी यथाः सा विद्याग्नी यथा; विद्याग्नी। विद्याग्नी; विद्याग्नी बहुव्रीहिः इत्यादि।

(नवविधैकदेशीः) इन परिभाषा के प्रमाण में वहाँ प्रत्यय की अनुपस्थिति नहीं मिलती ॥ ५१ ॥

अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम् ॥५२॥

—अ० ४।१।२२॥

जो सप्तम उपधालोपी बहुव्रीहि प्रातिपदिक है, उसमें स्थानिक में विकल्प करके ही प्रत्यय हो। जैसे—बहुराजा, बहुराज्ञी, बहुराजे; बहुतक्षा, बहुतक्षी, बहुतक्षे^१।

‘सप्तम’ प्रत्यय इसलिये है कि—बहुवचसा, वहाँ ही प्रत्यय हो। और ‘उपधालोपी’ इसलिये है कि—मुपर्वा, मुपर्वाणी, मुपर्वाणः इत्यादि में न हो ॥ ५२ ॥

१. वहाँ हृत्पदान्तात् संज्ञा के अर्थ में वामन्ता प्रादि, ती वत्त के अर्थ में वत्तमान प्रादि है, वत्तमान विद्याग्नी यथा इत्यादि में ही नहीं होता ॥

२. वहाँ सप्तम बहुव्रीहि प्रातिपदिकी में वत्त में (वाक्यभाष्यः) इस उक्त वृत्त में वत्त प्रत्यय विकल्प करके ही जाता है। इन ती विकल्पों के होने के तीन प्रयोग हो जाते हैं ॥

नित्यं संज्ञाछन्दसोः ॥५३॥ —घ० ऋ १ । २९ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान अमन्त उपाधासौपी बहुव्रीहि प्रालिपदिक से संज्ञा और वेदविषय में ङीप् प्रत्यय नित्य हो जाये । जैसे—संज्ञा में—गुराज्ञी; अतिराज्ञी नाम श्रावः । छन्द में—गोः वज्र-दाम्नी; द्विदाम्नी; एकदाम्नी; एकमूढनी; समानमूढनी ।

पूर्वसूच में जो विकल्प है, उसके निरपविधान के लिये यह अववाद दूज है । यहाँ संज्ञा और वेदिकप्रयोग न होंगे, वहाँ ङीप् न होना । जैसे—गुराज्ञा इत्यादि ॥ ५३ ॥

केवलमात्मकभावाद्येवपापारसमानार्थकृतसुमङ्गलभेषजाच्य
॥५४॥ —घ० ऋ १ । ३० ॥

जो स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान केवल मात्मक भावाद्येव पाप अथवा समान आर्सेकृत सुमङ्गल और भेषज शब्द हो, तो इन प्रालिपदिकों से संज्ञा और वेदविषय में ङीप् प्रत्यय हो । जैसे—केवली; मात्मली; मित्रावश्यपोर्जीगर्धनी; पापी; उत्तम्यरीम्बो मधवा विशिष्ये; समानी, आर्सेकृती; सुमङ्गली; भेषजी ।

यहाँ संज्ञा और वेदविषय न हों, वहाँ ङाप् होकर केवला इत्यादि प्रयोग होंगे ॥ ५४ ॥

राघोश्चाजसौ ॥५५॥ —घ० ऋ १ । ३१ ॥

अह् विभक्ति से सम्पन्न स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान राघि शब्द से संज्ञा और वेदविषय में ङीप् प्रत्यय हो । जैसे—या राघी कृष्टा; राघोभिः ।

‘अह् में निषेध’ इतिविधे है कि—यावत् राघयः, यहाँ ङीप् न होवे ॥ ५५ ॥

वा०—भजसादिष्विति वक्तव्यम् ॥५६॥

केवल वस्तु के बारे जो ङीप् का निवेद्य किया है, सो वस्तु
आदि के बारे निवेद्य करना चाहिये । जैसे रात्रि सङ्क्षोभित
हवादि से भी ङीप् न होवे ॥ ५६ ॥

अन्तर्बतपतिवतीर्नुक् ॥५७॥ - अ० ४।१।३२॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान वैदिक प्रयोगों में अन्तर्बत् और पतिवत्
शब्द से ङीप् और नुक् का आशय भी हो ॥ ५७ ॥

फा०—अन्तर्बतपतिवतीस्तु मनुष्यस्य निपातनात् ।

वभिष्यां जीवत्वस्यां च वा छन्दसि तु नुम्भवेत्

॥५८॥

अन्तर्बत् शब्द में मनुप् और पतिवत् शब्द में मनुप् के मकार
को नकारादेश निपातन किया है । तथा अन्तर्बत् शब्द से वभिषी
शब्द में, और पतिवत् शब्द से वित् वा पति जीना हो, वहाँ वैदिक
प्रयोग विषय में विस्तर करके नुक् और ङीप् नित्य ही होवे ।
जैसे—साम्बतर्बती देवानुपेत्, साम्बतर्बती देवानुपेत्; पतिवती
तृणवासा, पतिवती लवणवस्त्रा ॥ ५८ ॥

परधुनीं यमसंयोगे ॥५९॥ - अ० ४।१।३३॥

जो यज्ञ का संयोग हो, तो स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान पति शब्द
को नकारादेश और ङीप् आशय हो । जैसे—वर्तमानस्य परनी;
पतिनं वार्धं यच्छ ॥

यहाँ 'यमसंयोग' इसलिये कहा है कि—दानस्य पतिरिव
वाङ्मनी, यज्ञ न हो ॥ ५९ ॥

विभाषा सपूर्वस्य ॥६०॥ — घ० ४। १। ३४ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान पूर्वपद सहित पति शब्द हो, तो उस को नकारादेश निरूप्य बनके हो । स्त्रीत्वं तो नकारादेश के होने से सिद्ध ही है । जैसे—बृद्धपतिः, बृद्धवती; स्वयंपतिः, स्वयंवती; जीवपतिः, जीवपत्नी ।

यहाँ 'सपूर्व' ग्रहण इसलिये है कि अतिरिक्त बाह्यणी घामस्व, यहाँ होन् न हुआ ॥ ६० ॥

नित्यं सपरम्परादिषु ॥६१॥ — घ० ४। १। ३५ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान सपरम्परी आदि प्रातिपदिकों में पति शब्द को नकारादेश नित्य ही निरान्वय किया है । जैसे—समाप्तः पतिरस्याः सा सपत्नी; एकपत्नी; जीवपत्नी इत्यादि ॥ ६१ ॥

पूतकतोरंशु ॥६२॥ — घ० ४। १। ३६ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान पूतकतु शब्द से स्त्रीत्वं और उस को ऐकारादेश भी होने । जैसे—पूतकतोः स्त्री पूतकतापी ।

यहाँ से लेके तीन सूत्री में जो प्रत्ययविधान है, सो पुंल्लिङ्ग पर्याप्त उस स्त्री के साथ पुरुषमन्वय की विध्या हो तो होने । जैसे—यथा हि पूताः कनवः पूतकतुः सा भवति, यहाँ पुंल्लिङ्ग की विध्या नहीं, इन से स्त्रीत्वं न हुआ ॥ ६२ ॥

वृषाकप्यग्निकुसितकुसीदलामुदात्तः ॥६३॥

—घ० ४। १। ३७ ॥

१. यह वाक्यान्वयविधान इसलिये अत्यन्त ही बाह्य है कि वाक्यान्वय की अनुपपत्ति इन सूत्र में नहीं पायी, यद्यपि किसी से पूछा जाता नहीं ॥

स्त्रीलिङ्ग और पुरुष के बीच में कृषाकपि क्षमि कुक्षित और कुसीद शब्दों को ऐकारादेश, और इन से ङीप् प्रत्यय हो, और यह ङीप् प्रत्यय उदात्त भी होवे । जैसे—कृषाकपेः स्त्री कृषाकपायो; क्षमिः स्त्री क्षमायी; कुक्षितस्य स्त्री कुक्षितायी; कुसीदस्य स्त्री कुसीदायी ।

यहां 'पुंलोप' इसलिये है कि—कृषाकपिः स्त्री इत्यादि में ङीप् न हो ॥ ६३ ॥

मनोरी वा^१ ॥ ६४ ॥ —म० ४ । १ । ३० ॥

पुंलोक में और स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान मनु प्रातिपदिक से विकल्प करके ङीप् प्रत्यय होवे, और मनु शब्द को 'मकार' और पञ्च में ऐकारादेश हो, और यह उदात्त भी हो जावे । जैसे—मनोः स्त्री मनायी, मनायी, मनुः, ये तीन प्रयोग होते हैं ॥ ६४ ॥

वर्णानुदात्तास्तोषधास्तो नः ॥ ६५ ॥

—म० ४ । १ । ३१ ॥

जो स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान वर्णवाची अनुदात्त उकारोत्तर प्रातिपदिक है, उन से विकल्प करके ङीप्, और वच के लकार को नकारादेश भी होवे । जैसे—एला, एनी; इवेता, इवेनी; हरिता, हरिनी ।

यहां 'वर्णवाची से' इसलिये कहा है कि—प्रहृता, यहाँ ङीप् और नकार न होवे । 'अनुदात्त' इसलिये है कि—इवेता, यहाँ

१. यह अष्टात्तरिधाया एवं उदात्त है कि जो कार्य इस रूप से होते हैं, वे किसी से उत्पन्न नहीं हैं ॥

न हो। 'लोगप्र' इसलिये है कि—अन्य प्रातिपदिक से ङीप् न हो। अन्त की अनुबन्धि इसलिये जाती है कि—प्रतिब्रह्मणी, यद्वा न हो ॥ ६२ ॥

वा०—विशङ्गादुपसङ्ख्यानम् ॥ ६३ ॥

विशङ्ग शब्द लोपप्र नहीं है, इस कारण ङीप् नहीं जाता वा, इसलिये इसका उपसङ्ख्यान है। विशङ्ग शब्द में भी स्त्रीलिङ्ग में ङीप् होते। जैसे—विशङ्गी ॥ ६३ ॥

वा०—अमितपलितयोः प्रतिषेधः ॥ ६४ ॥

अमित और पलित प्रातिपदिकों में ङीप् और इनके लकार की नकारादेश न होते। मूत्र में पाया वा, उस का निषेधकम यह भववाद है। जैसे—अमिता, पलिता ॥ ६४ ॥

वा०—छन्दसि वनमेके ॥ ६५ ॥

वेद में अमित और पलित शब्द के लकार के स्थान में वनम् आदेश और ङीप् प्रत्यय ही, ऐसी इच्छा कोई आचार्य करते हैं। जैसे—अमिकी; पलिकी ॥ ६५ ॥

अम्पतो ङीप् ॥ ६६ ॥ --अ० ४। १। ४० ॥

लोपप्र से विश्व अनुदात्त वर्गवाची अन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय ही। जैसे—सारङ्गी; कलमापी; शबली इत्यादि।

यहां 'अनुदात्त' शब्द इसलिये है कि—कृष्णा, कपिल इत्यादि से न हो ॥ ६६ ॥

विद्भीरादिभ्यश्च ॥ ७० ॥ — ष० ४ । १ । ४१ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान अकारान्त चित् घोर गौर आदि प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय होते । जैसे — नर्तकी; शयनी; रक्षकी । गौरी; माली; शृङ्गी इत्यादि ॥ ७० ॥

**ज्ञानपदकुण्डमोयस्वप्नभाजननागकालनीलकुशकामुककव-
राद् घृत्यमवाङ्मयनाहुविमाश्रयास्पोत्यवर्णानाच्छादना-
ऽवोविकारसंभवेच्छाकेशवेधेषु ॥ ७१ ॥** — ष० ४ । १ । ४२ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान अकारान्त ज्ञानपद आदि (११) व्यासह शब्दों से कृति आदि व्यासह (११) अर्थों में महाशक्ति करके ङीष् प्रत्यय होते ।

जैसे—जाग्यदी कृति; जाग्यदी रीति; (यहां ङीष् होने से स्वर में भेद हो जाता है) । कुण्डी (समकवाकम्) अन्वय कुण्डा । गौरी (ज्ञानपद अर्थात् वाप हो तो) अन्वय गोना । स्वामी (अहुविमा भूमिः) अन्वय स्वमा । भाजी (आश्रय-
कहाने के योग्य दाक) अन्वय भाजा । माली (स्पोत्यम्—कृति
मोटी हो तो) अन्वय माला । काली (जो काले हो) अन्वय
काला । नीली (जो वस्त्र हो) नहीं तो नीला छाटी । कुशी
(जो मोढ़े का कुछ विकार हो) नहीं तो कुशा । कामुकी (जो
सैयुन की वृद्धा रखती हो) नहीं तो कामुका । कवरी (जो
बाजों का सम्हालना हो) नहीं तो कवरा ॥ ७१ ॥

वा०—नीलादीषधी ॥ ७२ ॥

नील शब्द से षोडश अर्थ में भी ङीष् प्रत्यय होते । जैसे—
नीली षोडशिः ॥ ७२ ॥

वा०—प्राणिनि च ॥७३॥

प्राणी धर्म में भी नील शब्द से ङीष् प्रत्यय होवे । जैसे— नीली गीः; नीली बड़वा; नीली मकड़ी इत्यादि ॥ ७३ ॥

वा०—वा संज्ञायाम् ॥७४॥

संज्ञा धर्म में विकल्प करके ङीष् प्रत्यय हो । जैसे— नीनी, नीला इत्यादि ॥ ७४ ॥

शोणालप्राचाम् ॥७५॥ —प० १ । ४ । १ । ४३ ॥

प्राचीन व्याख्याओं के मत में स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान शोण प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय होवे, अन्य व्याख्याओं के मत में नहीं । जैसे—शोणी, शोणा बड़वा ॥ ७५ ॥

बोली गुणवचनात् ॥७६॥ —प० ४ । १ । ४४ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान गुणवचन लकारान्त प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय विकल्प करके हो जावे । जैसे—बढ़ी, बढ़ः; मूड़ी, मूहुः इत्यादि ।

‘लत्’ ग्रहण इसलिये है कि—‘बुधिः’ यहाँ ङीष् न हो । ‘गुणवचन’ ग्रहण इसलिये है कि—‘साधुः’, यहाँ न हो ॥ ७६ ॥

वा०—गुणवचनान्धीबाधुदानान्वम् ॥७७॥

गुणवचन प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय ग्रहण। बाधिवे, क्योंकि ङीष् के होने से सन्धीदात्त स्वर प्राप्त है, सो बाधुदात्त होवे । जैसे—बसवी; लम्बी इत्यादि ।

यह विधान सर्वत्र नहीं, किन्तु जहाँ बाधुदात्त प्रयोग पावे वही ॥ ७७ ॥

वा०—असंख्योगोपधानां प्रतिषेधः ॥७८॥

असंख्योगोपधानां प्रतिषेधः ॥७८॥ अत्र सख्योगोपधानां प्रतिषेधः ॥७८॥ अत्र सख्योगोपधानां प्रतिषेधः ॥७८॥ अत्र सख्योगोपधानां प्रतिषेधः ॥७८॥

अङ्गुलिभ्यश्च ॥७९॥ - अ० ४।१।४९॥

अङ्गुलिभ्यश्च ॥७९॥ अत्र अङ्गुलिभ्यश्च ॥७९॥ अत्र अङ्गुलिभ्यश्च ॥७९॥ अत्र अङ्गुलिभ्यश्च ॥७९॥

नित्यं ह्यवसि ॥८०॥ - अ० ४।१।५०॥

नित्यं ह्यवसि ॥८०॥ अत्र नित्यं ह्यवसि ॥८०॥ अत्र नित्यं ह्यवसि ॥८०॥ अत्र नित्यं ह्यवसि ॥८०॥

भुवश्च ॥८१॥ - अ० ४।१।५१॥

भुवश्च ॥८१॥ अत्र भुवश्च ॥८१॥ अत्र भुवश्च ॥८१॥ अत्र भुवश्च ॥८१॥

पुंलोपादावप्यायाम् ॥८२॥ - अ० ४।१।५२॥

पुंलोपादावप्यायाम् ॥८२॥ अत्र पुंलोपादावप्यायाम् ॥८२॥ अत्र पुंलोपादावप्यायाम् ॥८२॥ अत्र पुंलोपादावप्यायाम् ॥८२॥

पुंलोपादावप्यायाम् ॥८२॥ अत्र पुंलोपादावप्यायाम् ॥८२॥ अत्र पुंलोपादावप्यायाम् ॥८२॥ अत्र पुंलोपादावप्यायाम् ॥८२॥

वा०—वीथालिकादीनां प्रतिषेधः ॥८३॥

पुंलोप के कथन में वीथालिका आदि शब्दों के लीप् प्रत्यय न हो । जैसे—वीथालकस्य स्त्री वीथालिका; वशुपालिका इत्यादि ॥ ८३ ॥

वा०—सूर्यादेवतायां चात् प्रत्ययः ॥८४॥

सूर्य शब्द से देवता शब्द में चात् प्रत्यय हो । जैसे—सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या ।

यहाँ 'देवता' ग्रहण इसलिये है कि—सूरी, वहाँ न हो ॥८४॥

इन्द्रवरुणमयशर्वरुद्रमुहहिमारण्यवयवधनमातुलाऽऽ-

साध्याशाभानुक् ॥८५॥ - य० ४ : १ : ४९ ॥

सीलित में वर्तमान इन्द्रादि चारह (१२) प्रातिपदिकों से लीप् प्रत्यय, और इन्द्र आदि शब्दों को आनुक् का आगम भी हो । जैसे—इन्द्रस्य स्त्री इन्द्रात्री; वरुणात्री; अयनात्री; शर्वात्री; यशस्त्री; मृशानी^१ ॥ ८५ ॥

वा०—हिमारण्ययोर्महत्वे ॥८६॥

सीलित में वर्तमान हिम और अरण्य प्रातिपदिकों से महत्त्व शब्द में लीप् प्रत्यय और आनुक् का आगम हो । जैसे—महद्भिर्म हिमानी; महदरण्यमरण्यानी ॥ ८६ ॥

१. यहाँ इन्द्रादि शब्दों से पुंलोप में लीप् प्रत्यय की पूर्व सूत्र से प्राप्ति ही है, केवल आनुक् का आगम होने के लिये यह सूत्र है । श्री सूत्र से प्राप्त शब्दों में वार्त्त विधान है, इसलिये द्विग आदि छः शब्दों से कितने शब्दों में वार्त्तियों के विधान किया है ॥

वा०—यथाहोषे ॥८७॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान यव प्रातिपदिक से दुष्टता यन् में होव् प्रत्यय और घानुक् का आगम हो । जैसे—दुष्टी यवी यवानी ॥८७॥

वा०—यवनाल्लिप्याम् ॥८८॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान यवन प्रातिपदिक से लिपि अर्थ में होव् प्रत्यय और घानुक् का आगम होवे । जैसे—यवनानी लिपिः ॥ ८८ ॥

वा०—उपाध्यायमातुलाभ्यां वा ॥८९॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान उपाध्याय और मातुल प्रातिपदिकों से होव् प्रत्यय और घानुक् का आगम विकल्प करके होवे । जैसे—उपाध्यायानी, उपाध्यायी; मातुलानी, मातुली ॥ ८९ ॥

वा०—आचार्यादिष्वत्वं च ॥९०॥

यहाँ पूर्व वार्तिक में विकल्प की घटुवृत्ति नहीं पायी है । स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान आचार्य प्रातिपदिक से होव् प्रत्यय और घानुक् का आगम भी विकल्प करके होवे, और घानुक् के नकार को प्राप्त प्राप्त है सो न हो । जैसे—आचार्यानी, आचार्या । वहाँ वक्ष में टाप् प्रत्यय ही जाता है ॥ ९० ॥

वा०—अर्थाक्षत्रिषाभ्यां वा ^१ ॥९१॥

१. दृग्वर्तिक में उपादान शब्द से अपूर्व विद्याय और मातुल शब्द की वृत्ति में पड़ा ही है ॥

२. वहाँ के केके दोरी वार्तिक अपूर्व विद्यायक इतिविने हैं कि अर्थादि शब्द वृत्ति में नहीं पड़े हैं ॥

यहां फिर विचार यहन इसलिये है कि माल की समुचित न जाये ।

स्वीतिज्ञ में वर्तमान अर्थ और अविद्य प्रतिपदिकों से जीव प्रत्यय और आनुक् का योग्य विकल्प करके होते । जैसे— प्रख्यापी, प्रख्या; अविद्यापी, अविद्या ॥११॥

वा०—मुद्गलाच्छन्दसि लिख्य ॥१२॥

स्वीतिज्ञ में वर्तमान मुद्गल प्रतिपदिक से चरित प्रयोग विषय में जीव प्रत्यय और आनुक् का योग्य हो, और जीव प्रत्यय चित् भी हो जाये । जैसे— रघोरक्षमुद्गलानी चरित् ॥१२॥

भीतात् करणपूर्वात् ॥१३॥ — अ० ४ । १ । ३० ॥

स्वीतिज्ञ में वर्तमान करणकारकवाची पूर्वपदमुख भीत सम्बन्ध प्रतिपदिकों से जीव प्रत्यय हो । जैसे - कर्षेय भीता सा कर्षकीती; वसनकीती; रक्षकीती इत्यादि ।

यहां 'करण' कारक का ग्रहण इसलिये है कि— वैवदत्तकीता, इत्यादि से जीव न हो ॥ १३ ॥

छावरूपाख्यायाम् ॥१४॥ — अ० ४ । १ । ३१ ॥

स्वीतिज्ञ के वर्तमान अलवाक्या अर्थ में करणकारक जिस के पूर्व हो ऐसे सम्बन्ध प्रतिपदिक से जीव प्रत्यय हो । जैसे— अक्षविलिप्ती शोः; क्षुब्धविलिप्ती रक्षापी इत्यादि ।

यहां 'अलवाक्या' ग्रहण इसलिये है कि अयनाज्जुलिप्ता साक्षुकी, इत्यादि से जीव न होये ॥ १४ ॥

बहुवीहेश्वरान्तोदात्तात् ॥१५॥ अ०—४। १। ३२ ॥

पाणिनि में बलवान् बहुवीहि समास में अन्तोदात्त स्थान्त प्रातिपदिक में क्रीप् प्रत्यय ही । जैसे—बन्धो मित्रो यवा सा बन्धविषीः अरुभिर्भः; यन्तोऽरुतो; केवलूनी इत्यादि ।

यहां 'बहुवीहि' ग्रहण इसलिये है कि—पद्मनां पतिता पादपतिता, वहां क्रीप् प्रत्यय न होवे ॥ १५ ॥

वा०—अन्तःदात्ताज्जातप्रतिषेधः ॥१६॥

अन्तोदात्त बहुवीहि प्रातिपदिकों से जो क्रीप् कहा है, सो बात सत्य जिस के अन्त में उस प्रातिपदिक से न हो । यह वार्तिक सूत्र का निषेधक प्रवाद है । जैसे—इन्तःदाता; रक्तजाला इत्यादि ॥ १६ ॥

वा०—पाणिगृहीत्यादीनामर्थविशेषे ॥१७॥

विशेष अर्थान् जहां वेदोक्तरीति से पाणिग्रहण अर्थान् विवाह किया जावे, वहां पाणिगृहीती आदि अर्थों में क्रीप् प्रत्यय होवे । जैसे—पाणिगृहीती भार्या ।

और जहां किसी प्रकार पाणिग्रहण कर लेवे वहां पाणिगृहीता टाकन्त ही प्रयोग होवे ॥ १७ ॥

वा०—अबहुनञ् सुकालमुखादिपूर्वादिति बलव्याम् ॥१८॥

सूत्र १२ में जो अन्तोदात्त बहुवीहि प्रातिपदिक से क्रीप् कहा है, सो यदि बहु नञ् सुकाल और मुखादि शब्द पूर्व हों तो न ही । जैसे—बहु—बहुकृत । नञ्—अकृत । सु—सुकृत । काल—कालजाता । अकालरजाता । मुखादि—मुखजाता; दुःखजाता इत्यादि ॥ १८ ॥

अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा ॥ ९९ ॥ — अ० ४।१।३३ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान एकांश पूर्वपद से भिन्न अन्तोदात्त सञ्ज्ञत बहुव्रीहि समासपुक्त प्रातिपदिकों से विकल्प करके ङीप् प्रत्यय होवे । जैसे—‘आङ्ग’ बन्धी, आङ्ग’ जम्हा; पलायुमन्तिनी, पलायु-भक्षिता; मुरलीति, मुरलीता ।

यहां ‘अस्वाङ्ग’ ‘पूर्वपद’ इसलिये है कि—इत्तभिन्नी, यहाँ विकल्प न हो । और ‘अन्तोदात्त’ इसलिये है कि—अस्वङ्गता, यहाँ ङीप् न हो ॥ ९९ ॥

वा०—बहुलं संज्ञाछन्दसोः ॥ १०० ॥

संज्ञा और चैदिकप्रयोग विषय में वर्तमान लक्षप्रत्ययान्त प्रातिपदिक से बहुत करके ङीप् प्रत्यय होवे । जैसे—प्रबुद्धबिलूनी, प्रबुद्धबिलूना । प्रबुद्धा चाक्षी बिलूना चेति नाम बहुव्रीहिः । यहाँ बहुव्रीहि समास नहीं किन्तु कर्मधारय है ॥ १०० ॥

स्वाङ्गाच्चोपसर्जनान्नसंयोगोपधात् ॥ १०१ ॥

—अ० ४।१।३४ ॥

यहाँ बहुव्रीहि अन्तोदात्त सञ्ज्ञत वे तीन पद तो छूट गये, परन्तु एक विकल्प की अनुमति आती है ।

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान जिस के स्वाङ्गवाची उपसर्जन संयोगोपध ने भिन्न प्रातिपदिक अन्त में हो उस से ङीप् प्रत्यय विकल्प करके होवे । जैसे—चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा; अतिक्रान्ता वेश्या-निकेयी, अतिक्रान्ता माना ।

यहां 'स्वाङ्ग' ग्रहण इसलिये है कि—'बहुवच'। 'उपसर्जन' इसलिये है कि—'संज्ञा'। और 'संज्ञागोचर' ग्रहण इसलिये है कि—'सुपुङ्गव'। सुपाञ्च, यहाँ डीप् न हुआ ॥१०१॥

वा०—अङ्गमात्रकण्ठेभ्य इति वक्तव्यम् ॥१०२॥

पूर्व सूत्र से संज्ञागोचर के निषेध से अङ्ग आदि का निषेध प्राप्त है, उस का व्यवहारविधायक यह वाक्यिक है।

स्त्रीलिंग में वर्तमान जो स्वाङ्गवाची उपसर्जन अथ वाच और कण्ठ प्रातिपदिक हैं, उनसे डीप् प्रत्यय हो। जैसे—
चूड़णी, चूड़णा; मुवाची, मुवाणा; निमग्नकण्ठी, निमग्नकण्ठा
इत्यादि ॥१०२॥

नासिकोदरीधरजङ्घादन्तकर्णभृङ्गाच्च ॥१०३॥

—अ० ४। १। ३३॥

विकल्प को अनुवृत्ति यहाँ भी पाती है। स्त्रीलिंग में वर्तमान बहुव्रीहि समास में जिस के अन्त में स्वाङ्गसंज्ञक उपसर्जन अथवा अप्रत्ययवाची नासिका, उदर, धोष्ठ, जघा, दन्त, कर्ण वा भृङ्ग शब्द हो, उस प्रातिपदिक से डीप् प्रत्यय विकल्प करके होने।

१. यहाँ स्वयं उक्त को उद्धृत है कि जिस समासाना अनुदात्त प्रातिपदिक से प्रत्ययप्रधान हो उस के आन्त अर्थ का जो शरीरावयव होवे। जैसे—विम्बोष्ठी, विम्ब के कंधान जिस के धोष्ठ हों। यहाँ धोष्ठ स्वयं है, जगदा विशेष नाशवान यद्वाच्य में है ॥

२. इस सूत्र में नासिका और उदर दो शब्दों से दो बहुवृत्ति के होने से अनेक सूत्र से डीप् का निषेध प्राप्त और धोष्ठ आदि कण्ठों के संज्ञागोचर के होने से डीप् का निषेध नाश है, उन दोनों का विधायक यह व्यवहार सूत्र है ॥

जैसे—तुंगनामिका, तुंगनामिका; कुम्भोदरी, कुम्भोदरा;
चिम्बोच्छी, चिम्बोच्छा; दीर्घजेषी, दीर्घजेषा; समदन्ती, समदन्ता;
वाक्कणी, वाक्कणी, तीक्ष्णशृङ्गी, तीक्ष्णशृङ्गा इत्यादि ॥१०३॥

वा०—पुच्छान्त ॥१०४॥

पुच्छ शब्द जो स्त्रीप्रत्ययवाची है, इस कारण निवृत्त
का प्रत्यय नहीं आती है । पुच्छान्त स्त्रीप्रत्ययवाची प्रातिपदिक से
निवृत्त करके झीव् प्रत्यय होते । जैसे—कल्याणपुच्छी,
कल्याणपुच्छा ॥१०४॥

वा०—कवरमणिविशारदेष्वी नित्यम् ॥१०५॥

कवर मणि विष जोर कर शब्दों से परे जो स्त्रीप्रत्ययवाची
पुच्छ प्रातिपदिक उस से स्त्रीप्रत्यय में नित्य ही झीव् प्रत्यय
हो । जैसे—कवरपुच्छी; मणिकुच्छी; विष्णुकुच्छी; करपुच्छी
इत्यादि ॥१०५॥

वा०—उपमानात्पञ्चान्त पुच्छान्त ॥१०६॥

उपमानवाची शब्दों से परे जो स्त्रीप्रत्ययवाची पञ्च और पुच्छ
प्रातिपदिक उस से नित्य ही झीव् प्रत्यय हो । जैसे—उत्पलपञ्ची
सेना; उत्पलपुच्छी इत्यादि ॥१०६॥

न जोडादिबहुचः ॥१०७॥ —स० ४ । १ । ३६ ॥

जोड आदि प्रातिपदिक और बहुत सच् जिस में हो, ऐसे
प्रातिपदिक से झीव् प्रत्यय न होते । जैसे—कल्याणजोडा;
कल्याणशृङ्गा; कल्याणवासा; कल्याणशब्दा । बहुच—पृथुजयन्ता;
महालज्जाता इत्यादि ॥१०७॥

सहजश्चिद्यमानपूर्वाश्रय ॥१०८॥ —अ० ४। १। १७॥

यह नश्च चिद्यमान में ही पूर्व जिसके, उस स्वाभाविकी स्वीलिंग में वर्तमान प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय न हो। जैसे—
मकेना; मकेना; विद्यमानकेना; मनासिका; अनासिका;
विद्यमाननासिका इत्यादि ॥१०८॥

नक्षत्रमुखास्तंजायाम् ॥१०९॥ —अ० ४। १। १८॥

स्वीलिंग में वर्तमान नक्षत्रास्त और मुखास्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय न हो। जैसे—सूर्यमुख्या; वज्रमुख्या; गौरमुख्या;
कालमुख्या।

‘स्तंजा’ सहज इसलिये है कि—ताम्रमुखी कन्या, यहाँ ङीप्
हो ॥१०९॥

दीर्घजिह्वी च छन्दसि ॥११०॥ —अ० ४। १। १९॥

येद में ‘दीर्घजिह्वी’ निपातन किया है। जैसे—दीर्घजिह्वी ने
देवाना छन्दकलेट्। ‘दीर्घजिह्वी’ शब्द निम्न ङीप् होने के लिये
निपातन किया है ॥११०॥

विह्पूर्वपदाङ्गीप् ॥१११॥ —अ० ४। १। २०॥

विह् पूर्वपद ही जिस के उस स्वाभाविकी स्वीलिंग में
वर्तमान प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय हो। जैसे—आङ्मुखी;
अशङ्मुखी; आङ्नासिकी इत्यादि ॥१११॥

वाहः ॥११२॥ —अ० ४। १। २१॥

वाहन्त प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय होवे। जैसे—वायोहो;
अप्यहो; विह्वीहो इत्यादि ॥११२॥

सह्यतिशयीति भाषायाम् ॥११३॥

—य० ४ । १ । १२॥

भाषा समीत् लौकिक प्रयोग विषय में मन्त्री और अधिस्त्री के बीचों बीच प्रत्ययान्त विधातव्य विद्ये है । जैसे—सखीयं मे वसुधयोः नाशयोः मिशुररतीनि वसिष्ठी ।

यहां 'भाषा' सह्य इत्यलिये है कि—सखे सप्तपदी भव, वहां न ही ॥११३॥

जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् ॥११४॥

—य० ४ । १ । १३॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान जो वकारोपधयुजित जातिवाची कर्तागत और विषय स्त्रीलिङ्ग न हो, ऐसे जातिपदिक के लीज प्रत्यय होते । जैसे—कुक्षुली; सुकरी; ब्राह्मणी; वृक्षी; नाशयनी; वाराहणी; सह्यणी ।

यहां 'जाति' सह्य इत्यलिये है कि—कुक्षा । 'वस्त्रीविषय' इत्यलिये है कि—सखिका । 'अयोपध' इत्यलिये है कि—वसिष्ठा; वसवः । 'अनुपपन्न' सह्य इत्यलिये है कि—वहकुक्षुली; वहसुकरा, इनमें लीज न हुआ ॥११४॥

वा०—योपधप्रतिषेधे ह्यगवयमुक्यमरस्यमनुष्याणाम्-
प्रतिषेधः ॥११५॥

वकारोपध का निषेध जो सूत्र में किया है, वहां ह्य वयम मुक्य मरस्य और अनुष्य प्रातिपदिकों का निषेध न होवे, समीत् इनसे लीज प्रत्यय हो । जैसे—ह्यी; वयवी; मुकवी; मरवी; मनुषी ॥११५॥

पाककर्मपर्यंतपुष्पफलभूतवासीतरपदाक्ष्य ॥११६॥

—सं. ४। १। ६४।

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान जिस प्रातिपदिक के उत्तरपद पाक आदि शब्द हों, उससे ङीप् प्रत्यय ही। जैसे—ओदनपाकी; मूत्रपयो; पक्ष्मणी; शङ्खपुष्पी; बह्वृक्षणी; रत्नकुली; गीवासी ॥११६॥

वा०—सद्वृत्तायप्रान्तगततेकेभ्यः पुष्पात्प्रतिषेधः ॥११७॥

सत् अनु काश्र्द प्रान्त गत एक इस प्रातिपदिकों से परे जो स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान पुष्प प्रातिपदिक उस से ङीप् प्रत्यय न ही।

सूत्र ११६ के प्राप्ति है, उसका विशेष शब्दों के योग में निषेध किया है। जैसे—सत्पुष्पा; प्रसत्पुष्पा; प्रत्यक्पुष्पा; वनसत्पुष्पा; प्रान्तपुष्पा; सत्पुष्पा; एकपुष्पा ॥११७॥

वा०—सम्भरप्रतिनशयविष्टेभ्यः पलात् ॥११८॥

सम् भरण यजिन यय और विष्ट शब्दों से परे जो फल प्रातिपदिक उस से ङीप् प्रत्यय न ही। यही सर्वत्र ङीप् का निषेध होने से उत्पन्न हो जाता है।

जैसे सम्भरता, भरणकता; यजिनकता; ययकता; विष्टकता ॥११८॥

वा०—स्वेतशब्द ॥११९॥

स्वेत शब्द से परे जो फल उससे भी ङीप् न ही। जैसे—स्वेतकता ॥११९॥

वा०—जैशब्द ॥१२०॥

जि शब्द से परे जो फल उससे भी ङीप् न ही। जैसे—जिकता ॥१२०॥

वा०—भूलाप्रज्ञः ॥१२१॥

जम् से परे जो भूल प्रातिपदिक उससे भी छोड़ प्रत्यय न होवे । जैसे—न भूलभयः वा भूला इत्यादि ॥१२१॥

इती मनुष्यजातेः ॥१२२॥ अ० ४।१।५२॥

स्वीलिङ्ग में वर्तमान मनुष्यजातिवाची इकारान्त प्रातिपदिक से छोड़ प्रत्यय ही । जैसे- यन्त्री; कुन्ती; दात्री; प्यात्री इत्यादि ।

यहाँ 'इकारान्त' ग्रहण इतलिये है कि—किद्; दरत्; यद्वा छोड़ न होवे । 'मनुष्य' ग्रहण इतलिये है कि—तित्तिरि; यहाँ न हो । और पूर्वसूत्र से जाति की अनुवृत्ति यही जाती, फिर 'जाति' ग्रहण का प्रयोजन यह है कि—यकारोपस्य से भी छोड़ प्रत्यय हो जावे, जैसे—घोषमेवी इत्यादि ॥१२२॥

वा०—इज उपसङ्ख्यामजस्यर्थम् ॥१२३॥

जाति के न होने से स्वीमिय में वर्तमान इज् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से छोड़ प्रत्यय कहना चाहिये । जैसे—सीतकृमी; सीतचित्ती' इत्यादि ॥१२३॥

उक्तुतः ॥१२४॥ अ० ४।१।५६॥

स्वीलिङ्ग में वर्तमान मनुष्यजातिवाची उकारान्त प्रातिपदिक से ऊह् प्रत्यय होवे । जैसे—कुक्; कृत्तवन्धू; कीरवन्धूः ।

यकारोपस्य के निषेध की अनुवृत्ति यहाँ जाती है, इसी कारण अथर्वानुवाङ्मयी, इत्यादि में ऊह् प्रत्यय नहीं होता ॥१२४॥

१. कुलङ्गम यादि प्रातिपदिकों से वातुरधिक प्रकरण का उभ् प्रत्यय है, इन कारण जाति नहीं ।

वा०—अप्रातिजातेवचारज्वादीनाम् ॥१२१॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान अप्रातिजातिवाची [उच्चारण] प्रातिपदिक में ऊर्ध्व प्रत्यय होते, परन्तु रज्जु आदि प्रातिपदिकों से न हो। जैसे—पलाशुः, धर्मशूः।

यहाँ 'अप्राति' शब्द इसलिये है कि—रुद्रवाहुः, जहाँ न हो। और 'अरज्जवादि' शब्द इसलिये है कि—रज्जुः, हनुः, इत्यादि से ऊर्ध्व न हो ॥१२२॥

बाहुग्राह्यशास्त्राणाम् ॥१२३॥ — य० ४।१।१०॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान बाहु ग्राह्य शास्त्र प्रातिपदिक में सं. विषय में ऊर्ध्व प्रत्यय होते। जैसे—भद्रवाहुः, जालवाहुः।

यहाँ 'सत्ता' शब्द इसलिये है कि—वृत्तवाहुः, गुणाहुः, इत्यादि से न होते ॥१२४॥

पञ्जीशब् ॥१२५॥ — य० ४।१।१५॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान पञ्ज प्रातिपदिक से ऊर्ध्व प्रत्यय होते। जैसे—पञ्जुः ॥१२६॥

वा०—इवशुरस्योकाराकारलोपश्च यत्तस्यः ॥१२७॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान इवशुर शब्द से ऊर्ध्व ज्ञाप्य और उस के उकार वकार का लोप हो जाये। जैसे—अश्वः।

यहाँ किसी से ऊर्ध्व प्राप्त नहीं, इसलिये यह शक्ति अपूर्व-विज्ञानक है ॥१२८॥

ऊर्ध्वतरपदादीन्मये ॥१२९॥ — य० ४।१।२५॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान ऊर्ध्व उतरपद से है जिस के, उस प्रातिपदिक से उपमान रूप में ऊर्ध्व प्रत्यय होते। जैसे—

कदलीस्तम्भ इवोक्तं यस्याः स्त्रियः सा कदलीस्तम्भोक्तः ;
नागमालोक्तः ।

यहां 'योपम्य' बह्वच इत्यलिये है कि कृतोक्तः स्त्री, यहां न
होवे ॥१२९॥

संहितलक्ष्मणवामादेशश्च ॥ १३० ॥

—य० ४ । १ । ७० ।

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान संहित एक लक्षण वा वाम काल किस
के आदि में हो, ऐसे कालपर प्रातिपदिक में ऊह् प्रत्यय होवे ।
जैसे—संहितोक्तः , लक्षोक्तः ; लक्षणीक्तः ; वामोक्तः ।

यहां उपमान सर्व नहीं है, इत्यलिये इस सूत्र का उक्त
सारम्भ है, नहीं तो पूर्व सूत्र में ही हो जाता ॥१३०॥

सा०—संहितलक्ष्मण्यो य ॥ १३१ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान संहित और लक्ष्मण से परे जो उक्त
प्रातिपदिक उस से ऊह् प्रत्यय होवे । जैसे—संहितोक्तः ; लक्षोक्तः ;
लक्ष्यादि ॥१३१॥

कटुकमण्डलवोक्तव्यसि ॥ १३२ ॥

—य० ४ । १ । ७१ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान कटु और कण्ठानु प्रातिपदिकों से
वैदिक प्रयोग विषय में ऊह् प्रत्यय होवे । जैसे—कटुवचनं वै मुखर्षी
च ; या सम कण्ठानु शूद्राव्य यथात् ।

यहां 'छन्दो' बह्वच इत्यलिये है कि—कटुः ; कण्ठानुः, यहां
न हो ॥१३२॥

वा०—गुग्गुलुमधुजलुपतयालुनामुपसङ्ख्यातम् ॥ १३३ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान वैदिक प्रयोगविषय में गुग्गुलु मधु जलु और पतयालु प्रातिपदिकों से ऊङ् प्रत्यय होवे । जैसे—गुग्गुलुः, मधुः, जलुः, पतयालुः ॥ १३३ ॥

संज्ञायाम् ॥ १३४ ॥ —वा० ४ । १ । ७२ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान संज्ञाविषय में ऊङ् और कमण्डलु प्रातिपदिकों से ऊङ् प्रत्यय होवे । जैसे—ऊङ्; कमण्डलुः ।

यहाँ 'संज्ञा' इसलिये है कि—ऊङ्; कमण्डलुः, यहाँ ऊङ् न होवे ॥ १३४ ॥

शाङ्गैरवाग्रजो ङीन् ॥ १३५ ॥ —वा० ४ । १ । ७३ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान जाति शब्दों में शाङ्गैरव आदि और वाग्र, वाग्रवाग्र प्रातिपदिकों से ङीन् प्रत्यय होवे । जैसे—शाङ्गैरवी । काण्डवी । अग्रन्त—वैदी, श्रीवी ।

यहाँ जाति की अनुवृत्ति आने से पुंलिंग में प्राप्त ङीप् का वाग्र—इह सूत्र नहीं होता । जैसे—वैदस्य स्त्री वैदी, यहाँ ङीप् होता ही है ॥ १३५ ॥

यङ्श्चाप् ॥ १३६ ॥ —वा० ४ । १ । ७४ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान जातिवाची यङ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से चाप् प्रत्यय होवे । जैसे—याम्बक्यङ्वा; सोमीर्वा; कार्गोषमन्धा; वाराणा इत्यादि ॥ १३६ ॥

वा०—आजन् शब्दः ॥ १३७ ॥

स्वीडिश में वर्तमान जो शब्दों से परे यद् उद्यत् प्रत्ययदिक् से भाव् प्रत्यय होने । जैसे—आर्कराश्या; पीतिमाश्या; गीकश्या इत्यादि ॥१३७॥

आवट्याक्य^१ ॥ १३८ ॥ —श० ४ । १ । ७२ ॥

स्वीडिश में वर्तमान आतिवाची आवट्य शब्द से भाव् प्रत्यय होने । जैसे—आवट्या ॥१३८॥

तद्धिताः ॥ १३९ ॥ —श० ४ । १ । ७१ ॥

यह अधिकार मूल है । पञ्चमाश्रयाय पर्यन्त इसका अधिकार जायगा । इससे आने जो जो प्रत्यय विधान करें, जो जो लङित-संज्ञक जानने चाहिये ॥१३९॥

युवन्तिः ॥ १४० ॥ —श० ४ । २ । ७७ ॥

जो स्वीडिश में वर्तमान युवन् शब्द से लिङ्प्रत्यय होता है, वह लङितसंज्ञक भी हो जाये । जैसे—युवन्तिः ॥१४०॥

अभिजोरनार्थयोग्यं रूपोत्तमयोः ध्वङ् गोत्रे ॥ १४१ ॥

—श० ४ । १ । ७८ ॥

जो स्वीडिश में वर्तमान गीश शब्द में विहित अतिभिन्न शब्द और इत् है, वे जिनके ध्वङ् में ही, ऐसे मुख्योत्तम शब्दों जो

१. यह शब्द जन्म वर्णविधि में पडा है, इसलिये यन् प्रत्ययान्त के होय् ध्वङ् (यन्ध्वङ्) इस शब्द मूल से जात्य है उसका अर्थयत् है । परन्तु आधीन आगत्यो के मत में तो यह शब्द ही है । जैसे—आवट्याक्यी ॥

नृनीय आदि अन्तर्द्वर्ग के पूर्व मुख्यसंज्ञक वर्ण हों, उन आतिपदिकों के स्थान में व्यङ्ग्य आदेश हो, यह लङ्घितसंज्ञक भी हो जाये ।

जैसे—अण्—करीषयन्तिव कन्धोऽयम् स करीषयन्ति । कुमुद-
यन्तिः । तस्य [अणत्वं] स्त्री करीषयन्त्या; कौमुदयन्त्या ।
इम्—आराह्या; बालयन्त्या^१ ।

यहां 'अण् धीर इज्' इत्यन्तिवे है कि—अन्तर्भागस्थापत्य स्त्री
आर्तभाषी, यहाँ विदादिकों से अज् हुआ है, इस कारण व्यङ्ग्य
नहो होगा । 'अणत्वं' इत्यन्तिवे कहा है कि—आतिपदी; वैयाघ्रिणी,
यहाँ न हो । 'कुरुपीलम्' इत्यन्तिवे है कि—अण्धगवी;
कल्पटवी, यहाँ न हो । धीर 'गीर्' इत्यन्तिवे है कि—आर्तभाषी,
यहाँ न हो ॥१४१॥

गोत्रान्वयवात् ॥ १४२ ॥ —अ. ४ । १ । ३९ ॥

इस सूत्र का आरम्भ कुरुपीलम् विशेषण न पढ़ने के लिये
है ।

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान गीर् का व्यवय्य अर्थात् गोत्राभिधायक
में मुख्य पुत्रिक भुक्तिक धीर सुधर आदि आतिपदिक से विहित
हो गीर् अर्थ में अण् धीर इज् है, उनके स्थान में व्यङ्ग्य आदेश
हो, यह लङ्घितसंज्ञक भी होवे । जैसे—गीर्णिका; गीर्णिका;
गौधर्मा इत्यादि ॥१४२॥

१. यहाँ करीषयन्ति धीर कुमुदयन्ति नामों के (अण्धगवी)
इन से अण् धीर वराह तथा बलायक नामों के (अण्दम्) इन
आरायी सुत्र के इज् हुआ है ॥

श्रीरूपादिस्वरथ ॥ १४३ ॥ —घ० ४।१।०००॥

स्त्रीलिंग के वर्तमान श्रीरूपादि प्रातिपदिकों से श्वङ्, प्रथम, और उमड़ी तद्धितसंज्ञा भी हो । जैसे —श्रीरूपा; शारूपा; श्वारूपा इत्यादि ॥१४३॥

देवयज्ञिशोभिबुधिसात्यमुष्मिकाण्डेविद्विज्योऽन्यतर-

स्याम् ॥ १४४ ॥ —घ० ४।१।०१०॥

श्रीरूपादि में वर्तमान देवयज्ञि शोभिवुद्धि सात्यमुष्मि और काण्डेविद्वि प्रातिपदिकों के स्त्रीलिंग में श्वङ्, प्रथम ही उमड़ी तद्धितसंज्ञा भी हो ।

जैसे—देवयज्ञ्या; शोभिवुद्ध्या; सात्यमुष्या; कण्डविद्व्या ।

और यज्ञ में (इसो मनुष्यजातेः) इन उक्तसूत्र में शीघ्र होता है । जैसे—देवयज्ञी; शोभिवुद्धी; सात्यमुषी; काण्डेविद्वी इत्यादि ॥१४४॥

इति स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम् ॥

समर्थानां प्रथमाद्या ॥ १४५ ॥ —घ० ४।१।०२०॥

समर्थानाम् प्रथमाद् वा इन तीन पदों का अधिकार करते हैं । इसके साथ ही ही प्रथम कहे हैं, वे समर्थों की प्रथम प्रकृति से विकल्प करके होंगे, यज्ञ में वाच्य भी बना रहे । यह अधिकार छ. पाद समर्थान् यज्जमाज्याय के द्वितीय पाद के अन्तर्गत आयेगा । जैसे उपनोत्पत्यम् श्रीकनः ।

यहां 'समर्थानाम्' इसलिये है कि—कम्बल उपवीरपत्यं देवदत्तस्य, यहाँ उनसे कम्बल से प्रत्यय नहीं होता। 'प्रथमात्' इसलिये है कि—पञ्चम्यन्त ही से होवे प्रथमान्त से नहीं हो। जैसे—उपानु से होता है, अपत्य से नहीं हो। 'वा' इसलिये है कि शेष भी बचा रहे। जैसे—उपवीरपत्यम् ॥१४३॥

प्राग्बीज्यतोऽयम् ॥१४४॥ —अ० ४।१।५३॥

(तेन बीज्यति०) इन मूल पर्याय 'अयम्' प्रत्यय का अधिकार करते हैं। यहाँ से आगे जो जो विधान करेंगे, यहाँ यहाँ अपवाद किसी को छोड़ के अयम् ही प्रयुक्त होगा।

जैसे—(तस्यापत्यम्) यहाँ प्रत्यय विधान किया है, सो अधिकार के होने के अयम् ही होता है। जैसे—उपवीरपत्यम् शीपत्यः; आपत्यः इत्यादि ॥१४४॥

अश्वपत्यादिभ्यश्च' ॥ १४५ ॥ —अ० ४।१।५४॥

प्राग्बीज्यतीति यद्यपि, यद्यपि 'तेन बीज्यति०' इस मूल से पूर्व पूर्व जो जो पूर्व विधान किये हैं, उन उन में अश्वपति आदि प्रातिपदिका में अयम् ही होवे। जैसे—आश्वपत्यम्; शालपत्यम्; शालपत्यम्; शालपत्यम् इत्यादि ॥१४५॥

दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदान्पत्यः ॥ १४६ ॥

—अ० ४।१।५५॥

यहाँ भी प्राग्बीज्यतीति की अनुवृत्ति जारी है। और यह मूल अयम् का अपवाद है।

१. यदि किसी उपरण में हो उन प्रातिपदिकों में अपने मूल में वह प्रत्यय यहाँ है, उन का उत्तरान् अपवाद यह मूल है ॥

दिति अदिति आदित्य और वस्तुतत्त्वपद प्रातिपदिक से ब्राह्मी-व्यतीथ अर्थों में लङ्हितसंज्ञक रूप प्रत्यय होते । जैसे—दित्वाः; आदित्यः; आदित्यम् । वस्तुतत्त्वपद—वस्तुतत्त्वम्; वीनातत्त्वम् इत्यादि ॥ १४७ ॥

वा०—यमास्त्र ॥ १४९ ॥

ब्राह्मीव्यतीथ अर्थों में यम प्रातिपदिक से भी लङ्हितसंज्ञक रूप प्रत्यय होते । जैसे—याम्यम् ॥ १४९ ॥

वा०—वाक् पतिपितृमतां सत्यसुपसङ्कषणम् ॥ १५० ॥

ब्राह्मीव्यतीथ अर्थों में वाक् पति और पितृमत् प्रातिपदिकों से [वैदिक प्रयोग विषय में] लङ्हितसंज्ञक रूप प्रत्यय होते । जैसे—वाक्यम्; वात्यम्; पितृमत्यम् ॥ १५० ॥

वा०—पुत्रिष्वजा ज्ञाजो ॥ १५१ ॥

ब्राह्मीव्यतीथ अर्थों में पुत्रिषी प्रातिपदिक से ज और ज्ञ, प्रत्यय होते । जैसे—पुत्रिषा; पुत्रिषी^१ ॥ १५१ ॥

वा०—देवास्त्रज्जो ॥ १५२ ॥

ब्राह्मीव्यतीथ अर्थों में देव प्रातिपदिक से ज् और ज्ञ, प्रत्यय होते । जैसे—देव्यम्; देवम् ॥ १५२ ॥

वा०—बह्विषष्टिलोपश्च ॥ १५३ ॥

ब्राह्मीव्यतीथ अर्थों में बह्विष् प्रातिपदिक से च्च प्रत्यय और उसके टि का लोप भी होते । अ : बह्विषेचो बह्विः ॥ १५३ ॥

१. यहाँ ज् और ज्ञ, प्रत्ययों के प्रत्यय होने के कि ज्ञान्य से लोप प्रत्यय नहीं, और बह्विष से लोप ही प्रत्यय है ॥

वा०—ईकम् च ॥१५४॥

प्राचीनग्रन्थों में बहिष् प्रातिपदिक से ईकम् प्रत्यय और उनके हि का लोप भी होते । जैसे—बाहीकः ॥ १५४ ॥

वा०—ईकञ्छ छन्दसि ॥१५५॥

प्राचीनग्रन्थों में वैदिक प्रयोगविषयक बहिष् प्रातिपदिक से ईकञ्छ अक्षर और छन्द के हि का लोप भी होते । जैसे—बाहीकः ॥ १५५ ॥

वा०—स्थाम्नोऽकारः ॥ १५६॥

प्राचीनग्रन्थों में स्थामन् अन्तान् प्रातिपदिक से अकार प्रत्यय होते । जैसे—मस्थायामः ॥ १५६ ॥

वा०—लोम्नोऽत्येषु बहुषु ॥१५७॥

बहुत अल्प वाक्य हों, तो लोम्न् अन्तान् प्रातिपदिक से अकार प्रत्यय हो जाये । जैसे—लहुलोम्नोऽत्येषानि लहुलोमाः; लरलोमाः इत्यादि ।

यहाँ 'बहुत अल्प' बहुत इत्यर्थे है । अ-लहुलोम्नोऽत्येषम् लोहलोमिः; लारलोमिः, यहाँ अकार प्रत्यय न होते ॥ १५७ ॥

वा०—सर्वेय गोरजादिप्रसङ्गे यत् ॥१५८॥

नवेय अर्थात् प्राचीनग्रन्थों में वो प्रातिपदिक से यत् यादि अजादि प्रत्ययों को प्राति से यत् प्रत्यय ही होते । जैसे—वज्रम् ।

१. पूर्व प्रातिपदिक से ईकम् और यहाँ ईकञ्छ इन दो प्रत्ययों में केवल स्वर का ही भेद है । अर्थात् लोप के ध्वनीदास और वेद में बाधुदास स्वर होता है ॥

वहाँ 'अत्रादिप्रसंग' इसलिये कहा है कि—नीकम्पन्ः
सोमजम्, इत्यादि में यत् न होवे ॥ १४८ ॥

उरत्रादिभ्योऽञ् ॥ १४९ ॥ —अ० ४ । १ । ८६ ॥

ब्राह्मीवर्तीय वर्णों में उरत्र आदि प्रातिपदिकों से लङ्लसंज्ञक
अप् प्रत्यय होवे । जैसे—घोरत्रः; प्रोदधानः, बैकरः इत्यादि ।

एव घोर उस के अत्रवादों का भी यह सूच बनवार
है ॥ १४९ ॥

स्त्रीषु साभ्यां नञ् स्नञी भवनात् ॥ १५० ॥

—अ० ४ । १ । ८७ ॥

(साभ्यानां भवने०) इस सूच के पूर्व पूर्व सब वर्णों में स्त्री
घोर पुंन् प्रातिपदिकों से यथासंशय करके नञ् घोर स्नञ्
प्रत्यय हों ।

जैसे—स्त्रीषु भवञ् स्वेयम्; पीस्नम् । स्त्रीभ्य आगतम्
स्वेयम्; पीस्नम् । स्त्रिया प्रोक्तम् स्वेयम्; पीस्नम् । स्त्रीभ्यो
हितम् स्वेयम् ; पीस्नम् इत्यादि ॥ १५० ॥

द्विगोर्लु वनपरये ॥ १५१ ॥ —अ० ४ । १ । ८८ ॥

द्विगु का सम्बन्धी निमित्त, यथात् जिसकी मातृके द्विगु
किया हो, उस अपत्यवर्जित ब्राह्मीवर्तीय लङ्लसंज्ञक प्रत्यय का
सूच होवे । जैसे—पञ्चनम् कथानेषु संतुलतः पुरोडाशः पञ्चकपालः;
दशकपालः; द्वी वेदावर्धते द्विवेदः; त्रिवेदः ।

[वहाँ 'वनपरय' कह्य इसलिये है कि—द्विवेदवर्धतेः]
इत्यादि में लुक् न हो ॥ १५१ ॥

गौडोत्सुगाधि ॥१६२॥ —प० ४ । १ । ५९ ॥

जो (ब्रह्मादिभ्यो गोचरे) इत्यादि सूत्रों से बिन गोचर प्रत्ययों का लुक् कह चुके हैं सो न हो, प्राग्दीर्घादीय अजादिप्रत्यय परे होंगी । जैसे—गर्गाद्याः अजाः पार्श्वीयाः; बालीयाः; आनेरीयाः; सात्वाक्यीयाः ।

यहाँ 'गोच' [इहय] इसमिये है कि—कीकतम्, बादरम्; यहाँ निषेध न हो । और 'अच्' ग्रहण इसमिये है कि—गर्गेभ्य आगतं चर्कस्थम्; गर्गमयम्, यहाँ इत्यादि प्राग्दीर्घों के परे लुक् ही आये ॥ १६२ ॥

यूनि लुक् ॥१६३॥ —प० ४ । १ । ६० ॥

जब प्राग्दीर्घादीय अजादि प्रत्यय की विवक्षा होवे, तब सुवापरय अर्थ से विहित जो लङ्निमित्तक प्रत्यय उनका लुक् ही, फिर तब प्रकृति से जो प्रत्यय प्राप्त हो सो होवे ।

जैसे—काष्ठाद्भुजकापरत्वं काष्ठाद्भुजिः । तस्य सुवापरयम्, यहाँ (काष्ठाद्भुतिमित्) इत्ये सुवापरय में लु होकर—काष्ठाद्भुतः । काष्ठाद्भुतस्य यूनरक्षायाः इस अर्थ की विवक्षा होती ही सुवापरय का लुक् होते उस इङ् प्रत्ययान्त काष्ठाद्भुति प्रानिबदिक से (इजम्ब) इस सूत्रसे अधिक जम् प्रत्यय ही आता है—जैसे—काष्ठाद्भुताः ।

तथा भगवित्तरकापरत्वं भागवितिः, यहाँ प्रथम गोच में इङ् । तस्य भागवित्तरकस्य भागवकी भागवित्तिका, यहाँ सुवापरय में लुक् हुमा है भागवित्तरकस्य यूनरक्षायाः, इस अर्थ की विवक्षा में यहाँ भी पूर्व के समान पुनः प्रत्यय लुक् की निवृत्ति होकर इजन्त से भङ् हो जाता है—जैसे—भागवित्ताः । [त्रिकस्यपरत्वं

लैकायनिः । तस्य] लैकायनेरपरत्वं मासकः लैकायनीयः । लैकायनीयस्य पुनश्छायाः लैकायनीयाः, यहाँ पुनः प्रत्यय छ की विभक्ति में चिद्, प्रत्ययान्त लैकायनि वृद्ध प्रातिपदिक से छ प्रत्यय हुआ है, इत्यादि ।

यहाँ 'छायादि के चरे लोप' इसलिये कहा है कि—कृष्ण-हृतस्यम्; कृष्णहृतस्यम्, यहाँ लुक् न हो । प्राग्बीभ्यनीय सभी के लोप होता है, सम्भव नहीं—भावरितिकार हित् भावरितिकीयम्, यहाँ न हो ॥ १६३ ॥

कक्किणोरग्यतरस्याम् ॥ १६४ ॥ —अ० ४ । १ । ११ ॥

जो प्राग्बीभ्यनीय अर्धवाची भज्यादि प्रत्यय परे हों, तो कक् कीर चिद्, पुनःप्रत्ययों का लुक् विकल्प करके होंगे ।

जैसे—गर्वस्यापरत्वं गार्म्यः (गर्व शब्द से कर्, तस्य मुवापरत्वं (तदन्त से कक्)=गार्म्यधियाः, तस्य छायाः, इस विवेक्षा में कक् का लुक्=गार्मीयाः । और जिस पक्ष में लुक् न हुआ यहाँ गार्म्यविनीया; वात्सीयाः, वात्स्यायनीयाः इत्यादि । चिद्—यसकस्यावत्यम् (शिवादिकों से यच्) वात्स्यः, तस्य मुवापरत्वं (अगन्त इ यच् प्रातिपदिक से चिद्) वात्सकायविततरस्य छायाः, इस विवेक्षा में चिद् का विकल्प से लुक्=वात्सीयाः, वात्सकायनीयाः इत्यादि ॥ १६४ ॥

तस्यापत्यम् ॥ १६५ ॥ —अ० ४ । १ । १२ ॥

उभयों में प्रत्यय कण्ठीरुमर्ध प्रातिपदिक से अक्षरव अर्ध में यच् आदि प्रत्यय विकल्प करके होंगे । जैसे—उभगोरपत्यम्

धीमगवः; आश्वपतः; दैत्यः; भीतः; रवेणः; पीनः
इत्यादि ॥ १६४ ॥

और्ध्वः ॥ १६५ ॥ —अ० ६।४। १४५ ॥

जो तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हो, तो उपस्थित भसंज्ञक अङ्ग
को गुण हो। जैसे—उपनीरगत्यम् और्ध्वः इत्यादि ॥ १६५ ॥

तद्धितेष्वन्त्यानाद्यैः ॥ १६७ ॥ —अ० ७।२। १६७ ॥

जो द्विद्, त्रिद्, चौर, किल् तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हों, तो
अर्धों के बीच में जो आदि अन्त्य इसके स्थान में बुद्धि हो।
जैसे—धीमगवः; आश्वपतः; मान्दव्यः इत्यादि ॥ १६७ ॥

वस्येति च ॥ १६८ ॥ —अ० ६।४। १४८ ॥

जो तद्धितसंज्ञक प्रत्यय और ईकार परे हों, तो भसंज्ञक
इवर्ण और अवर्ण का लोप होवे। जैसे—ईकार—दाक्षी;
प्लाक्षी। तद्धित में इवर्ण का लोप—दोलेयः; बालेयः; धालेयः
इत्यादि। अवर्ण का लोप—कुनारी; कियोरी; दैत्यः; आश्वपतः;
भीतः; रवेणः; पीनः इत्यादि ॥ १६८ ॥

एको गोत्रे ॥ १६९ ॥ —अ० ४।१। १२ ॥

गोत्र अर्थ में एक ही प्रत्यय होने, अर्थात् द्वितीय प्रत्यय न
हो। अथवा प्रकृति का निश्चय करना चाहिये कि जहाँ गोत्रांतरण
की विवक्षा हो, वहाँ एक ही प्रत्यय मुख्य जिससे अपत्यधिकार
में कोई प्रत्यय न हुआ हो, उसी प्रत्यय की उत्पत्ति हो। जैसे—
गान्धेयः; नाकायनः इत्यादि ॥ १६९ ॥

गोत्राद्युत्पत्तिप्रमाणम् ॥ १७० ॥ — अ० ४ । १ । १४ ॥

घोर जब युवावस्था की विवक्षा ही, तब गोत्रप्रत्ययान्त प्रकृति ही से दूसरा प्रत्यय होने । जैसे—गार्ग्यस्य युवावस्थं गार्ग्यायणः; वात्स्यायनः; दाक्षायणः; प्लाक्षायणः; यहाँ युवावस्था में 'कङ्' और घीमन्निः; गार्गायनिः; यहाँ युवावस्था में 'इङ्' हुआ है ।

यहाँ 'स्त्री का निषेध' इसलिये है कि—दाक्षी; प्लाक्षी, यहाँ गोत्रप्रत्ययान्त से स्त्रीप्रत्यय हुआ है ॥ १७० ॥

अत इङ् ॥ १७१ ॥ — अ० ४ । १ । १५ ॥

जो समर्थों का प्रथम पक्षीसमर्थ प्रकारान्त प्रातिपदिक है, उससे अतएव अर्थ में इङ् प्रत्यय विकल्प करके होने । जैसे—इक्ष्मण्यस्य मातृवकी दाक्षिः, दाक्षरिभिः ।

यह सुम अन्त का अपवाद है । यहाँ 'तत्परकारण' इसलिये है कि—बुधमाः; कीलालमाः; इत्यादि से 'इङ्' न हो, अर्थात् प्रकारान्त से निषेध हो जाय ॥ १७१ ॥

बाह्यादिभ्यश्च ॥ १७२ ॥ — अ० ४ । १ । १६ ॥

समर्थों के प्रथम पक्षीसमर्थ बाहू आदि प्रातिपदिकों से अतएव अर्थ में इङ् प्रत्यय विकल्प करके होने । जैसे—बाह्विः; घीमङ्गुलिः इत्यादि ॥ १७२ ॥

सुधारतुरकङ् च ॥ १७३ ॥ — अ० ४ । १ । १७ ॥

समर्थों के प्रथम पक्षीसमर्थ सुधारतु प्रातिपदिक से इङ् प्रत्यय विकल्प करके और उसकी अकङ् आदेश भी हो । जैसे—सुधारतुत्त्वत् सीधार्त्तकिः ॥ १७३ ॥

वा०—व्यासवह्निनिषादवह्नालविम्वानामिति वक्तव्यम्
॥१७४॥

व्यास, वह्नि, निषाद, वह्नाल और विम्व प्रातिपदिकों से
इस अन्वय होने । जैसे—व्यासस्यापत्यं माणवको वेमासकिः;
वाहककिः; वैषादकिः; वाग्वाहकिः; वेम्वाकिः^१ इत्यादि ॥१७४॥

गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्चकम्^२ ॥१७५॥

— वा० ४।१।१८॥

यह सूत्र दम् का अन्वय है । गोत्रसंज्ञक अन्वय सर्व में^३
इयम प्रकृति कुञ्ज यादि प्रातिपदिकों से क्कम् प्रत्यय हो । जैसे—
कुञ्जस्य गोत्रस्य कौञ्जायम्बः, कौञ्जायम्बी, कौञ्जायनाः;
वाग्नायम्बः, वाग्नायम्बी, वाग्नायनाः इत्यादि ।

यहां 'गोत्र' इसलिये कहा है कि—कुञ्जस्यमाकन्तरापत्यं
कौञ्जः, यहां अन्तरापत्य में क्कम् न हो । गोत्र का अधिकार
(विवादिक) इस सूत्रपर्यन्त जानना चाहिये ॥ १७५ ॥

१. इन व्यास यादि प्रातिपदिकों से मन्त्रों के होने से दम् जो हो जाता,
वर मक्क, यादिभ होने के लिये यह प्रातिपद पडा है ॥
२. यहां क्कम् अन्वय में अकार का अनुसन्ध (वाक्वाहक्योः) जो सूत्र में
सम्बन्ध होने के और अकार वृद्धि के लिये है । और इन क्कम्
अन्वयान्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में क्कम् अन्वय हो जाता है । उक्त
क्कम् अन्वय की लक्षणसंज्ञा होने से बहुवचन में क्कम् हो जाता है ॥
३. विस्तृत, कथनों का अन्वय इस ही का अधिकार छः पाद में, और
लङ्घितसंज्ञा का अधिकार पंचमात्म्या अर्थात् तथा कहील्लभ्य का
अधिकार इसी पाद में जाता है । भी इन सूत्र का प्रतिपुत्र में सम्बन्ध
संभ्रमना चाहिये, अब बार बार नहीं लिखेंगे ॥

नडादिभ्यः कच् ॥ १७६ ॥ —स० ४। १। १९ ॥

यह सूत्र भी इच् का अपवाद है । नडा आदि प्रातिपदिकों से गोवाच्यत्व सर्व में कच् प्रत्यय होवे । जैसे—नडाच्य गोवाच्यं नाडाचनः; चाराच्यः इत्यादि ।

यहां भी शेष को अनुवृत्ति आने से अकन्तराच्य में नाडिः, [यहां] कच् नहीं होता, किन्तु इच् हो जाता है ॥ १७६ ॥

हरितादिभ्योऽङाः^१ ॥ १७७ ॥

—स० ४। १। १०० ॥

यह भी सूत्र इच् का ही अपवाद है और जो शब्द हरितादिकों में अदन्त न हों उनसे अच् का अपवाद समझना चाहिये ।

जो विदाच्यन्तगत अदन्त हरितादि प्रातिपदिक हैं, उनसे मुवाच्यत्व सर्व में कच् प्रत्यय हो । जैसे—हरितच्य मुवाच्यं हरिताचनः; वेदाच्यः इत्यादि ॥ १७७ ॥

यञिञोश्च ॥ १७८ ॥ —स० ४। १। १०१ ॥

मुवाच्यत्व सर्व में अजन्त और इजन्त प्रातिपदिकों से कच् प्रत्यय हो । जैसे—अजन्त -याम्यश्च मुवाच्यं याम्यश्चिः; चारश्च्यः । इजन्त से—आद्याच्यः; आद्याच्यः इत्यादि ।

यह सूत्र अजन्त से इच् का और इजन्त से अच् का वाच्यत्व समझना चाहिये ॥ १७८ ॥

१. इस सूत्र में गोवाच्यत्व की विवक्षा को नहीं है कि हरितादिकों से प्रथम गोवाच्यत्व में कच् प्रत्यय है, फिर दूसरा प्रत्यय गोवाच्यत्व में नहीं हो सकता, किन्तु मुवाच्यत्व में ही होता है ।

सारद्वन्द्वमनकवर्धनि भृगुवत्साध्याययोः ॥१७९॥

—अ० ४ । १ । १०३ ॥

जो गोवापत्य वर्ष में भृगु, बल, साध्यायन ये अथवा विशेष वर्ष वाक्य हों, तो मन्दासयन करके अथवा शुनक और वर्ष प्रातिपदिक से फल उत्पन्न हो ।

जैसे—सारद्वन्तामनः, जो भृगु का गोत्र हो, वहीं तो सारद्वन्तः । गोत्रकायनः, जो बल का गोत्र हो, वहीं तो गोत्रकः । वार्धकियः, जो साध्यायन का गोत्र हो, नहीं तो वार्धकः ।

यह भी सूत्र अथ और इत्र, दोनों का अर्थवाद है ॥ १७९ ॥

द्रोणपर्वतजीवन्तावन्यतरस्याम् ॥१८०॥

—अ० ४ । १ । १०३ ॥

द्रोण पर्वत और जीवन्त प्रातिपदिक से फल उत्पन्न निकाल करके होवे ।

यह सूत्र इत्र का ही अर्थवाद है । और एक विजय कहा ही जाता है, दूसरा अर्थ इसलिये है कि—यस में इत्र उत्पन्न भी हो जावे । और यह पञ्चांग विभाषा समझनी चाहिये । जैसे—द्रोणवत् गोवापत्य द्रोणायनः, द्रोणिः, पार्वतायनः, पार्वतिः; जैवन्तायनः, जैवन्तिः ॥ १८० ॥

अनुष्वानन्तर्ये विद्यादिभ्योऽन् ॥१८१॥

—अ० ४ । १ । १०४ ॥

१. इस अक्षर में अन्तर्य तीन प्रकार के अर्थवासे चाहिये—अन्ती गोवापत्य, शुक्रायन और अन्तर्याम्य । हमारे में गोवापत्य और शुक्रायन का जाने लगी प्रकरण में व्याख्या किया है । अन्तर्याम्य विद्या की

गोत्रावस्थान् अर्थ में विद आदि प्रातिपदिकों से अत्र् प्रत्यय होते । जैसे—विदस्य गोत्रावस्थान् वेदः; गोत्रैः इत्यादि ।

परन्तु विदादिपद में जो अतिवाची से विद पुन आदि प्रत्यय पड़े हैं, उनसे अन्तरावस्थान् अर्थ ही में अत्र् प्रत्यय होते । जैसे—गोत्रः; गोत्रिणः; नानान्त्रः इत्यादि ।

यह सूत्र भी इत्र् आदि प्रत्ययों का व्यवहार है ॥ १८१ ॥

मर्षादिभ्यो यञ् ॥ १८२ ॥ -य० ४ । १ । १०३ ॥

यह सूत्र भी अत्र् आदि प्रत्ययों का ही व्यवहार है ।

गोत्रावस्थान् अर्थ में अर्ग आदि प्रातिपदिकों से अत्र् प्रत्यय होते । जैसे—गार्ग्यः; गार्गस्यः; गार्गावस्थान् इत्यादि ॥ १८३ ॥

मधुबन्धोर्वाह्यकीशिकयोः^१ ॥ १८३ ॥

—य० ४ । १ । १०६ ॥

ब्राह्मण और कीशिक गोत्रावस्थान् अर्थ वाच्य हैं, तो मधु और बन्धु प्रातिपदिकों से अत्र् प्रत्यय होते । जैसे—मधोर्वावावस्थान्

कीशिक में पुन की कहने है कि जिसमें कुछ अन्तर नहीं होता । तो इस विदादिपद में जो अतिवाची प्रातिपदिक है, वही से गोत्रावस्थान् है, अन्य प्रातिपदिकों से अन्तरावस्थान् में अत्र् होता है ॥

१. यह सूत्र अत्र् का व्यवहार है । और मधु, मन्त्र मर्षादि के अन्तर्गत कोटिल्लिकयो से कहा है, वही पढ़ने से इससे स्त्रील्लिक से एव प्रत्यय ही जाता है । जैसे—मधुबन्धवाची । और इस सूत्र में इस मधु, मन्त्र का पाठ नियमात् है कि कीशिक गोत्र में ही मन्त्र प्रत्यय हो, अन्यत्र नहीं ॥

माधवः; जो बाह्य होवे, नहीं तो माधवः। बाधवः; जो कोटिक होवे, नहीं तो बाधवः ॥ १८३ ॥

कविबोधादाङ्गिरसे ॥ १८४ ॥ — अ० ४ । १ । १०० ॥

आङ्गिरस गोत्रात्म्य विशेष शब्द में कवि और बीच प्रातिपदिक से मन्त्र होवे। जैसे—कोत्रोत्रात्म्य काव्यः; बोध्यः, जो आङ्गिरा का गोत्र होवे। नहीं तो काव्यः; बोधिः, यहाँ कन् और इन् प्रत्यय हो जाते हैं।

और इन्ही दोनों का यह अर्थवाद भी है ॥ १८४ ॥

वतम्बराद्यम् ॥ १८५ ॥ — अ० ४ । १ । १०० ॥

आङ्गिरस गोत्रात्म्य विशेष शब्द में वतम्ब प्रातिपदिक से मन्त्र आत्यय होवे। जैसे—वतम्बराद्यम् गोत्रात्म्य वतम्बराद्यः, यहाँ भी जो आङ्गिरा का गोत्र होवे। नहीं तो वतम्बः, यहाँ अन् हो जाता है।

और अन् का ही अर्थवाद यह सूत्र भी है ॥ १८५ ॥

लुक् सिध्दान् ॥ १८६ ॥ — अ० ४ । १ । १०१ ॥

यहाँ आङ्गिरसी रबीकात्म्य रहे, यहाँ वतम्ब शब्द से विहित मन्त्र आत्यय का लुक् होवे।

जब लुक् हो जाता है, तब आङ्गिरसादि मन्त्र में पहले से हीन् प्रत्यय हो जाता है। जैसे—कतम्बी, जो आङ्गिरा के गोत्र की रबी

होवे । नहीं तो वातप्लघावनी^१ यहाँ एक प्रत्यय हो जाता है ॥ १८६ ॥

अथवादिभ्यः फञ् ॥ १८७ ॥ — अ० ४ । १ । ११० ॥

यह मूत्र अण् और इञ् का ही वाचक है ।

गोषापत्य अर्ध में अण् आदि प्रातिपदिकों से फञ् प्रत्यय होवे । जैसे—अण्वस्य गोषापत्यम् आश्वासनः; आनवावनः; साश्वासनः इत्यादि ॥ १८७ ॥

अर्गत् वैगर्त् ॥ १८८ ॥ — अ० ४ । १ । १११ ॥

यह केवल इञ् का ही अस्वाद है । अर्ध प्रातिपदिक से गोषापत्य वैगर्त् अर्ध में फञ् प्रत्यय होवे । जैसे—अर्गस्य गोषापत्यं भार्गविकः; जो चिगर्त् का मोत्र हो । नहीं तो आर्गिः [वह] इञ् प्रत्यय हो जावे ॥ १८८ ॥

शिवादिभ्योऽण् ॥ १८९ ॥ — अ० ४ । १ । ११२ ॥

यहाँ से मोत्र की निवृत्ति हो गई । अब सामान्यापत्य में प्रत्ययप्रधान करने । यह मूत्र इञ् आदि का अस्वाद वधाशेष समझना चाहिए ।

१. यह वातप्लघाव अर्धों के अन्तर्गत चोदितारिकों में पड़ा है, इस कारण इसके लघोदीय में एक प्रत्यय होते यह प्रयोग होता है । और वातप्लघाव अर्ध निवर्तित्व में भी पड़ा है, इससे लघोदिप्लु में वातप्लघो प्रयोग होता है ॥

अथ च यं किं चित्वाति प्रातिपदिको वे चम् अथवा होवे
जैसे—शिवस्य गोपालस्य तैः; प्रीष्टः; प्रीष्ठिकः^१ इत्यादि ॥१८५॥

अबुद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तत्प्रामिकाभ्यः ॥१९०॥

—स० ४ । १ । ११३ ॥

यह सूत्र इह अथवा का अथवा है । अथवा अर्थ में अबुद्ध
नदी मानुषीवाचक तत्प्रामिक प्रातिपदिकों से चम् प्रत्यय होवे ।
जैसे—वसुनद्या अथवा वामुनः, दरावत्या अथवा देरावतः;
वैतस्तः; नार्मेरः इत्यादि ।

यहाँ 'बुद्ध से निषेध' इसलिए है कि—वाल्हवाभावाया अथवा
वाल्हवाभेदः, वाल्हवदत्तः, इत्यादि में चम् न हुआ । 'नदी
मानुषी' इसलिए कहा है कि—लोषर्णेः; वैतरेः, यहाँ चम् न
होवे । और 'तत्प्रामिका' कह्य इसलिए है कि—लोभनाया अथवा
लोभनेः, यहाँ भी न ही ॥१९०॥

अध्यक्षकवृत्तिपुरुषभ्यश्च ॥१९१॥

—स० ४ । १ । ११४ ॥

१. तन्मन् प्रत्ययविचारिक में कहा है, उसमें (उदीपानिम्) इस
प्रामाणी रूप से उत्तरदेहीन आवापों के मत के चम् प्रत्यय है, उसका
वाचक होने के लिए । परन्तु यह प्रत्यय का वाचक नहीं होता । जैसे—
तावतः; तावतः । और वाङ्मा प्रत्यय इस रूप में कहा है, यहाँ उसमें
चम्, तिकादि होने से चित् और बुद्धादिरूप में नहीं से चम् प्रत्यय हो
जाने है । इस प्रकार तीन प्रयोग होने है । जैसे—वाङ्मा, वाङ्माजिः;
वाङ्मा । तथा विधाना तथा यहाँ और बुद्धादिरूप में भी कहा है,
उसमें उसमें दो प्रयोग होने है । जैसे—वैपाकः, वैपाकाभ्यः ॥

यह सूत्र तत्र का अन्वय है । अथर्व शर्त में अग्निवाची वसिष्ठ आदि तथा अन्तरिक्ष वृष्णि कुम्भवंशवाची प्रातिपदिकों के अणु अन्वय ही ।

जैसे—[अग्निः—] वसिष्ठस्याऽथर्वं प्रातिष्ठः; वैश्वामित्रः । अन्तरिक्षः—आपस्तम्बः; रान्तरिक्षः । वृष्णिः—वामुदेवः; प्रातिपदः । कुम्भः—नाबुलः; मातृदेवः^१ इत्यादि ॥१९१॥

मानुस्संज्ञासम्भद्रपूर्वाद्याः ॥ १९२ ॥

—अ० ४ । १ । ११५ ॥

इस मानु प्रातिपदिक में अणु तो प्राप्त ही है, अन्तरिक्ष होने के लिए यह सूत्र है ।

अथर्व शर्त में संज्ञा, सम् और भद्रपूर्वक मानुशब्द की उक्त आदेश और अणु प्रत्यय भी होंगे । जैसे—इन्द्रोर्मोर्गोरप्रत्यं ईमानुरः; वैमानुरः; वाम्मानुरः; साम्मानुरः; आद्रमानुरः^२ ।

यहाँ 'संज्ञा आदि' का अर्थ इसलिये है कि—सीमानः, यहाँ केवल अणु ही हुआ है ॥१९२॥

१. यहाँ संज्ञा होता है कि जन्म की शिखा है, फिर अन्तरिक्ष आदि वनों के आन्तर्य से इसका व्यापकता बड़ी बन सकता है, क्योंकि संज्ञा तो अनित्य है । (उत्तर) प्रवाहुरूप से मानुशब्दात्त सृष्टि की शिखा है, और अन्तरिक्ष आदि अधिकारी शब्द है कि इस प्रकार के रूप का नाम अन्तरिक्ष होना चाहिए, भी अन्तरिक्ष आदि वंश प्रतिकल्प में अन्तरिक्ष बने आते हैं । इन प्रकार इन अन्तरिक्ष आदि शब्दों का संज्ञा के साथ अन्तरिक्ष सम्बन्ध बना हुआ है, यही नवीन नहीं हुआ ॥

२. विमानु शब्द कुम्भारिण्य में भी पाया है, उसमें वैमानः यह भी प्रतीय होता है ॥

कम्पायाः कानीन च ॥१९३॥ — अ० ४ । १ । ११५ ॥

यह मूत्र इक् का अपवाद है । अपत्य एवं में कम्पा शब्द से अण् प्रत्यय और उसको कनीन कावेस भी होते । जैसे—कम्पाया अपत्य कानीनः^१ ॥१९३॥

विकर्णशुद्धचक्षणलाहसभरद्वाजाऽविष्णु ॥१९४॥

—अ० ४ । १ । ११७ ॥

यह मूत्र इक् का अपवाद है । यथासंभव करके वस्तु भरद्वाज और अवि विकर्ण अपत्य काश्च हो, तो विकर्ण शुद्ध और चक्षण प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय हो ।

जैसे—विकर्णस्यापत्य विकर्णः, जो वस्तु का शीघ्र हो, नहीं तो विकर्णः । शीघ्रः, जो भरद्वाज का शीघ्र हो, नहीं तो शीघ्रः । चक्षणः, जो कावेस का शीघ्र हो, नहीं तो चक्षणिः । यहाँ सर्वत्र पक्ष में इक् प्रत्यय होता है ॥१९४॥

पीलाया वा ॥१९५॥ — अ० ४ । १ । ११८ ॥

इषक् पीला प्रातिपदिक से इक् प्राप्त है, उसका यह अपवाद है । और पक्ष में इक् भी होता है । और इसको यत्रापि विधाया समझना चाहिए, क्योंकि अण् किसी से प्राप्त नहीं है । अपत्य

१. विचार यह है कि कम्पा कितना विनाह न हो उसको कहते हैं, उसका अर्थन वैसे ही सकता है । यथाभावे में इसका समाधान किया है कि जो विनाह होने से प्रथम ही प्रयत्न होकर किसी पुरुष के साथ व्यवहार से संबंधी हो जाये, उसका पुत्र हो उसकी 'कानीन' कहना चाहिए ॥

धर्म में पीला प्रातिपदिक से धन् प्रत्यय होने, जैसे—पीलाया अपत्यं पैलः; पक्ष में इङ्—पैलेयः ॥१९५॥

इङ् वा मण्डूकात् ॥ १९६ ॥—अ० ४।१।११९ ॥

यह सूत्र इङ् का अपवाद है। अपत्य धर्म में मण्डूक प्रातिपदिक से इङ् प्रत्यय हो, और चकार से धन् विकल्प करके होने, पक्ष में इङ् भी हो जावे। जैसे—माण्डूकस्यापत्यं माण्डूकेयः, माण्डूकः, माण्डूकिः ॥१९६॥

स्त्रीभ्यो इङ् ॥ १९७ ॥—अ० ४।१।१२० ॥

यह सूत्र धन् और उसके अपवादों का भी अपवाद है। अपत्य धर्म में स्त्रीभवि स्त्रीप्रात्ययान्त प्रातिपदिकों से इङ् प्रत्यय विकल्प करके होने ॥१९७॥

आयनेयोनीयिवः कङ्-लङ्-यां प्रत्ययादीनाम् ॥१९८॥

—अ० ४।१।१२१ ॥

जो प्रात्यय के आदि कङ् लङ् या और य हैं, उनके स्थान में वधासंज्ञा करके आयन्, एय्, ईन्, ईय्, और इय् आदेश हों। जैसे—क—आशयनः; ड—सीपर्थयः, पैलेयः; ल—कुपीनः; लङ्—आसीयः, पैतृयस्त्रीयः; य—कुशियम् इत्यादि ॥१९८॥

वा०—वदनाया वृधे^१ वाध्वे ॥ १९९ ॥

१. यद्यपि वदना शब्द घोड़ी का भी वाचक है, तथापि वहा बहुधा शब्द से वलित की वृत्त पड़ता है, क्योंकि वदना शब्द केवल घोड़ी का ही वाचक नहीं, किन्तु वाहनी शब्द कुम्हवाली तथा धान्य की स्त्रीवाति का वाचक है। अतथा—

कहवा प्रातिपदिक से बोल अपत्य प्राप्त हो, तो इक् प्रत्यय होवे । जैसे—कहवाया अपत्य नुची काटयेयः ॥१९९॥

वा०—घञ् कृञ्चाकोकिलस्तमृतः ॥२००॥

शामान्यापत्य में कृञ्चा और कोकिला शब्द से इक् का आश्रय घञ् प्रत्यय होवे । जैसे—कृञ्चाया अपत्य कोकिलः; कोकिलाया अपत्य कोकिलः ॥२००॥

इधञः ॥२०१॥ —घ० ख । १ । १२१ ॥

नदी और मानुषीवाची से जो घञ् प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह अपवाद है ।

अपत्यार्थ में टाबादि तृतीप्रत्ययान्त इधञ् प्रातिपदिक से इक् प्रत्यय होवे । जैसे—इलाया अपत्य इलायः; गोपेयः इत्यादि ।

यहाँ 'इधञ्' कह्युन इसलिए है कि—कमुनाया अपत्य कामुनः, यहाँ इक् न होवे ॥२०१॥

इलहञ-विभः ॥२०२॥ --घ० ख । १ । १२२ ॥

नीचो नरके घरे कहवा द्विजघोषितः ।

अथावा कुम्भघामा न गरीजात्वन्तरेषि च ॥

—इति भाष्यश्रीशकार संप्रदायः ॥

यह शब्द से बीबीकाय् शब्द का बहुत भी कथने है, जैसे—बुबी बीबायवाः । हेन पार्सेन विशेषविहितेनपत्यमसमोऽर्थो उच्ये कथ्यते । हेनपत्ये वाचन इति धरति । उलपद्य मेंकहवा शब्द से घोड़ी का बहुत करबुध शब्द से पुकीक प्रकार वाच्य अपत्य उभयभवा बाहिर ॥

यह सूत्र सामान्य अणु का अपवाद है। अपत्यार्थ में इम् प्रत्ययान्ताभिन्न इकारान्त प्रातिपदिक से उक्त प्रत्यय होवे। जैसे—
अनेरपत्यं वार्धेयः; नैधेयः; बाल्येयः; कानेयः इत्यादि।

यहां 'इकारान्त' इसलिये कहा है कि—दाक्षिः; प्लाक्षिः।
'इम् भिन्न' इसलिये कहा है कि—दाक्षायणः; प्लाक्षायणः, यहां
इकन्त से उक्त न होवे। और 'इभ्यन्' की अनुवृत्ति इसलिये है
कि—मरीचेरपत्यं मारीचः, यहां उक्त की बाध के अणु हो
जावे ॥ २०२ ॥

गुञ्जादिभ्यश्च ॥ २०३ ॥ —अ० ४। १। १२३ ॥

यह सूत्र इम् आदि का पञ्चाशोम्य अपवाद समझना चाहिये।
अपत्यार्थ में गुञ्ज आदि प्रातिपदिकों से उक्त प्रत्यय होवे। जैसे—
गुञ्जस्मात्पत्यं वार्धेयः; नैधपुरेयः इत्यादि ॥ २०३ ॥

विकर्णकुशीलकाल् काश्यपे ॥ २०४ ॥ —अ० ४। १। १२४ ॥

यह सूत्र इम् का अपवाद है। [काश्यप] अपत्य अर्थ में
विकर्ण और कुशीलक प्रातिपदिकों से उक्त प्रत्यय हो। जैसे—
विकर्णस्यापत्यं वैकर्णेयः; कुशीलकेयः।

यहां 'काश्यप' यहम् इसलिये है कि—वैकर्णिः; कुशीलकिः,
यहां उक्त न होवे ॥ २०४ ॥

-
१. इस प्रकार से इन गुञ्जादिभ्य की आङ्गितिक समझना चाहिये, कि
जिसमें [वार्धेयः] पाण्डुरेयः, रामादि अनन्त कालों में भी उक्त प्रत्यय
हो जावे ॥

अथो वृक् च ॥ २०५ ॥ —अ० ४ । १ । १२२ ॥

यह अथ का अन्वय है । अथवा अर्थ में अथ प्रातिपदिक से वृक् प्रत्यय और इसको वृक् का आगम भी हो । जैसे—
अथोऽन्वयः प्रीत्येयः ॥ २०५ ॥

कल्याण्योनामिनङ् च ॥ २०६ ॥

—अ० ४ । १ । १२३ ॥

अथवा अर्थ में कल्याणी आदि प्रातिपदिकों से वृक् प्रत्यय और इसको इनङ् आदेश भी होवे । जैसे—कल्याण्या अथर्व
कल्याण्येयः; अविष्टेयः; कानिष्टेयः^१ इत्यादि ॥ २०६ ॥

हृदमनसिष्ठन्ते पूर्वपदस्य च ॥ २०७ ॥

—अ० ७ । १ । १२४ ॥

जो अित् अित् और अित् लङ्गित प्रत्यय बरे हों, तो हृद् भव
और मन्थु अिनके अन्त हों, वृक् प्रातिपदिकों के पूर्व और अन्त-
पदों में अर्थों के आदि अथ को वृद्धि होवे । जैसे—मुभयाया
अथर्व सीमागिनेयः; दीर्घागिनेयः; सीहार्दम्; दीहार्दम्; मावतु-
सीधवः इत्यादि ॥ २०७ ॥

कुलटाया वा ॥ २०८ ॥ —अ० ४ । १ । १२५ ॥

यहाँ इनङ् आदेश की अनुवृत्ति पत्नी आती है ।

अथवा अर्थ में कुलटा प्रातिपदिक से वृक् प्रत्यय और इसको
[विकल्प से] इनङ् आदेश होवे । जैसे—कुलटाया अथर्व
कीलटिनेयः, कीलटेयः ॥ २०८ ॥

१. यहाँ सर्वप्रारम्भिक प्रातिपदिकों से वृक् प्रत्यय तो ही ही जाता, फिर वह
वृक् इनङ् आदेश होने के लिये है ।

चटकाया ऐरक् ॥ २०९ ॥ — अ० ४ । १ । १२० ॥

यह मूल शब्द का अर्थवाद है । अथवा अर्थ में चटका शब्द से ऐरक् प्रत्यय हो । जैसे—चटकाया अथवा चाटकीर ॥ २०९ ॥

वा०—चटकाच ॥ २१० ॥

यह वाचिक शब्द का अर्थवाद है । चटक प्रातिपदिक से ऐरक् प्रत्यय होवे । जैसे—चटकस्याप्रत्यय चाटकीर ॥ २१० ॥

वा०—स्त्रियामचत्ये लुक् ॥ २११ ॥

स्त्री अत्यय होवे तो ऐरक् अत्यय का लुक् हो जावे । जैसे—चटकाया अथवा स्त्री चटका ॥ २११ ॥

गोधाया इक् ॥ २१२ ॥ — अ० ४ । १ । १२१ ॥

यह भी शब्द अर्थवाद है । अथवा अर्थ में गोधा प्रातिपदिक से इक् प्रत्यय होवे । जैसे—गोधाया अथवा गोधेरः ।

बुध्नादिग में गोधा शब्द चढ़ा है, इस कारण गोधेरः, यह भी प्रयोग हो जाता ॥ २१२ ॥

आरमुदीचाम् ॥ २१३ ॥ — अ० ४ । १ । १२२ ॥

गोधा की अनुवृत्ति जाती है । अथवा अर्थ में गोधा प्रातिपदिक से आरक् प्रत्यय होवे, उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में । जैसे—गोधाया अथवा गोधारः^१ ॥ २१३ ॥

१. रक् प्रत्यय के चढ़ने से गोधारः प्रयोग चल ही जाता, फिर आचार्यशब्द से यह अत्यय होता है कि अन्त प्रातिपदिकों से भी 'आरक्' प्रत्यय होता है । जैसे - आधारः, आचारः, आचारि ॥

क्षुद्राभ्यो वा' ॥ २१४ ॥ — अ० ४ । १ । १३१ ॥

यह भी इक् का अन्वय है । और पूर्वसूत्र से इक् की अनुवृत्ति पाली है ।

अपत्य शब्द में क्षुद्रा आदि प्रातिपदिकों से इक् प्रत्यय होने, पद्य से इक् ही । जैसे काशेरः, काशेयः, दाशेरः, दाशेयः इत्यादि ॥ २१४ ॥

वितृष्वसुरक्षन् ॥ २१५ ॥ — अ० ४ । १ । १३२ ॥

यह सूत्र सन् प्रत्यय का वाचक है । अपत्य शब्द में वितृष्वसु प्रातिपदिक से सन् प्रत्यय होने । जैसे वितृष्वसुरक्षन् वितृष्वस्रीयः ॥ २१५ ॥

इकि लोपः ॥ २१६ ॥ — अ० ४ । १ । १३३ ॥

अपत्य शब्द में जो इक् प्रत्यय पड़े हो, तो वितृष्वसु शब्द के अन्त का लोप होने । जैसे—वितृष्वस्येयः ॥ २१६ ॥

मानृष्वसुरक्ष ॥ २१७ ॥ — अ० ४ । १ । १३४ ॥

यह भी सन् का अन्वय है ।

अपत्य शब्द में मानृष्वसु शब्द से सन् प्रत्यय और इक् के पड़े मानृष्वसु शब्द के अन्त का लोप भी होने । जैसे मानृष्वसुरक्षन् मानृष्वस्रीयः, मानृष्वस्येयः ॥ २१७ ॥

१. क्षुद्रा जब विषयों को कहते हैं जो वाङ्मय में, शर्म से घोर सन्ने अन्वय में रहित होवें ॥

२. यहा इक् प्रत्यय के पड़े जो लोप कहत है, जो इसी अन्वय में वितृष्वसु शब्द से इक् प्रत्यय होता है ॥

अनुष्णाद्भ्यो इञ् ॥ २१८ ॥ — अ० ४ । १ । ११४ ॥

यह अञ् आदि का अन्वयाद है ।

अन्वयार्थ में अनुष्णाद्वाची प्रातिपदिकों से इञ् प्रत्यय होवे । जैसे—अममन्त्रयेमः; अमन्त्रिष्यहेमः; ममिषः; माहिष्येमः; वीरयेमः इत्यादि ॥ २१८ ॥

गृष्ट्वादिभ्यश्च ॥ २१९ ॥ — अ० ४ । १ । ११५ ॥

यह सूत्र केवल अञ् का ही अन्वयाद है ।

अन्वयार्थ में गृष्टि आदि प्रातिपदिकों से इञ् प्रत्यय होवे । जैसे—गृष्ट्वा अन्वयः शार्दूलः; हृष्ट्येयः; हृष्ट्येमः; वृष्ट्येमः; वैश्येयः इत्यादि ॥ २१९ ॥

राज्यस्वशुदास्तु ॥ २२० ॥ — अ० ४ । १ । ११६ ॥

यह अञ् और इञ् दोनों का आश्रक है । अन्वयार्थ में राज्य और स्वशुद प्रातिपदिकों से अञ् प्रत्यय हो । जैसे—राज्योऽन्वयः राज्यः; स्वशुध्यैः ॥ २२० ॥

वा०—राज्योऽन्वये जातिग्रहणम् ॥ २२१ ॥

सूत्र में जो राज्य शब्द से अञ् कड़ा है, जो जातिवाची राज्य शब्द का ग्रहण सम्भविता न्हाहिये । जैसे—राज्यः, जो क्षत्रिय होवे, नहीं तो राजनः ॥ २२१ ॥

क्षत्राञ् चः ॥ २२२ ॥ — अ० ४ । १ । ११८ ॥

यह सूत्र इञ् का आश्रक है । अन्वयार्थ में क्षत्र प्रातिपदिक से च प्रत्यय होवे । जैसे—क्षत्रियः, यहाँ भी जाति ही सम्भवी

चाहिये; क्योंकि जहाँ जाति न हो वहाँ धर्म, इत्यन्त प्रयोग होने ॥ २२२ ॥

कुलात् वाः ॥ २२३ ॥ अ० ४ । १ । ११५ ॥

इह भी वस्त्र का ही अन्वय है । अन्वय धर्म में कुल शब्द से यह प्रत्यय हो । उत्तरार्द्ध ने पूर्वपद ग्रहण करने से इस सूत्र में पूर्वपदरहित और केवल का भी ग्रहण होना है । जैसे — श्रीविष्णुलीनः, आद्यपकुलीनः, कुलीनः इत्यादि ॥ २२३ ॥

अपूर्वपदादन्यतरस्यां यद्वृकजौ ॥ २२४ ॥

—अ० ४ । १ । ११६ ॥

अन्वयार्थ में पूर्वपदरहित कुल शब्द से वस्त्र और वृकज् प्रत्यय विकल्प करके होने । जैसे — कुलः, कीलेयकः, कुलीनः ।

यहाँ 'पद' ग्रहण इत्यन्तिवे है कि यद्वृक् पूर्वपद हो तो भी यह प्रत्यय ही आवे । जैसे — यद्वृकजः, यद्वृकीलेयकः, यद्वृकुलीनः ॥ २२४ ॥

महाकुलादङ्गुली ॥ २२५ ॥ अ० ४ । १ । ११७ ॥

यहाँ विकल्प की अनुवृत्ति आती है ।

अन्वयार्थ में महाकुल आतिथदिक से अङ्गु और अङ्गु प्रत्यय विकल्प करके होवे, यत्र में यह होवे । जैसे — आहाकुलः, माहाकुलीनः, महाकुलीनः ॥ २२५ ॥

१. यह अन्वयविभागा इत्यन्तिवे है कि कुल शब्द से वस्त्र और वृकज् प्रत्यय किसी से प्रत्यय नहीं है ॥

दुष्कुलाद् ठक् ॥२२६॥ —सं. ४। १। १४० ॥

अपत्यार्थ में दुष्कुल शब्द से ठक् प्रत्यय विकल्प करके हो, पञ्च में ख हो जावे । जैसे—दीपकुलियः; दुष्कुलीनः ॥२२६॥

स्वमुत्पत्तः ॥२२७॥ —सं. ४। १। १४१ ॥

अपत्य अर्थ में स्वम् प्रातिपदिक से छ प्रत्यय हो । जैसे—स्वमुत्पत्त्यं स्वस्वीयः । यह अप् का वाचक है ॥२२७॥

आतृष्यस्व ॥२२८॥ —सं. ४। १। १४२ ॥

यह सूत्र भी अप् का अपवाद है । अत्रत्यार्थ में आतृ शब्द से व्यत्, और चकार से छ प्रत्यय भी होवे । जैसे—आतृष्यः; आतृष्यः ॥२२८॥

व्यन् सप्तमे^१ ॥२२९॥ —सं. ४। १। १४३ ॥

अपत्य अर्थात् सप्त वाच्य हो, तो आतृ प्रातिपदिक से व्यन् प्रत्यय हो । जैसे—वाप्तना आतृष्येणा; आतृष्यः कण्ठकः ॥२२९॥

देवत्यादिभ्यष्ठक् ॥२३०॥ —सं. ४। १। १४४ ॥

यह सूत्र ठक् आदि का अपवाद है । अपत्यार्थ में देवती आदि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो । जैसे—देवत्या अपत्यं देवतिकाः; आत्मवानिकाः; वाणिज्यानिकाः इत्यादि ॥२३०॥

१. यहाँ अत्रत्यार्थ भी विकल्प नहीं है, क्योंकि अत्रत्य का पुत्र सन् नहीं हो सकता, और इसी कारण आतृ शब्द का प्रत्ययार्थ यहाँ प्रधान नहीं रहता है, किन्तु अत्रत्यार्थ ही सन् है, यही प्रधान रहता है ॥

गोत्रविप्रयाः कुलमे न च ॥२३१॥

—अ० ४।१।१५५॥

यह इच्छा का प्रपञ्च है। निम्निल सुवाच्य शब्दों में गोत्रसंज्ञक स्त्रीवाची प्रालिप्यिक से न, और अकार से इच्छा प्रपञ्च होवे। जैसे—वाच्यो वपत्य वाच्यो वाच्यः, वाचिकः; मनुचुकायन्वा वपत्य मनीचुकायनः, मनीचुकायनिकः।

यहां 'गोत्र' शब्द इसलिये है कि—कारिकेकी वाच्यः, यहां कारिका शब्द गोत्रप्रत्ययान्त नहीं है। 'स्त्रीवाची' इसलिये है कि—प्रोपगविर्वाच्यः, यहां न होवे। 'कुलमे' इसलिये है कि—वाच्यो भाष्यकः, यहां चिन्ता के न होने से अक्षर्य इच्छा हो गया, किन्तु न और इच्छा नहीं हुई ॥२३१॥

वृद्धाष्टुक् सौवीरेषु बहुसम् ॥२३२॥

—अ० ४।१।१५६॥

यहां कुलमे पर की वस्तुवृत्ति छाती है। वपत्य और कुलमे शब्दों में वृद्धसंज्ञक सौवीर गोत्रवाची प्रालिप्यिक से इच्छा प्रपञ्च करके हो। जैसे भागवित्तुकायनं भागवित्तकः; लार्पविन्दवस्य वृद्धाष्टुक् लार्पविन्दविकः। यहाँ में वप्य और इच्छा हो जाते हैं—भागवित्तायनः; लार्पविन्दविकः।

यहां 'वृद्ध' शब्द स्त्री की वस्तुवृत्ति के लिये है। 'सौवीर' शब्द इसलिये है कि—प्रोपगविः, यहां न होवे। और 'कुलमे' की वस्तुवृत्ति इसलिये है कि—भागवित्तायनो भाष्यकः, यहां भी इच्छा न होवे ॥२३२॥

कोरुण च ॥२३२॥ — अ० ४ । १ । १४५ ॥

कुरुष्वन् धोर सोवीर पदों की अनुवृत्ति जाती है । अथवाच्य में चिह्नित सोवीर मोक्षवाची प्रान्तिवदिक से छः धोर बकार से ठक् प्रत्यय भी होते हैं । जैसे—यामुन्दावनीयः, यामुन्दावनिः ।

यहां 'कुरुष्वन्' बहुवच इत्यलिये है कि—यामुन्दावनिः, यहा यन् का लुक् हो गया है । 'सोवीर' इत्यलिये है कि—सैकावनिः, यहा अ न होते हैं ॥२३३॥

काष्ठाहृतिमिमताभ्यां वाकिञी ॥२३४॥

—अ० ४ । १ । १४६ ॥

सोवीर पद की अनुवृत्ति यहा जाती है, धोर कुरुष्वन् पद की निवृत्ति हुई । धोर यह सूत्र फक् प्रत्यय का आवाद है ।

अथवाच्य में सोवीर मोक्षवाची काष्ठाहृति धोर विमत प्रान्तिवदिकों से च धोर चिह्न प्रत्यय होते हैं । जैसे—काष्ठाहृते-रत्नं काष्ठाहृतः, काष्ठाहृतावनिः मैमन्, मैमतावनिः ।

यहां 'सोवीर' का बहुवच इत्यलिये है कि—काष्ठाहृतावनिः; मैमतावनिः, यहां च धोर चिह्न न हुए ॥२३५॥

कुर्वादिभ्यो ष्यः ॥२३६॥ — अ० ४ । १ । १४७ ॥

यह भी इज् आदि का वाचक वचाद्योष्प सम्यक्ता चाहिये ।

अथवाच्य में कुक् आदि प्रान्तिवदिकों से ष्य प्रत्यय हो । जैसे—कुरीरत्नं कुरीरव्यः; वार्धः; माङ्कुष्यः; आलमारव्यः इत्यादि ॥२३७॥

तेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च ॥२३८॥

—अ० ४ । १ । १४८ ॥

यह सूत्र इहम् का अन्वयार्थ है । अन्वयार्थ में सेवान्त लक्षण खीर कारि वर्गान् कुम्हार आदि कारीगरवाची प्रातिपदिकों से यह प्रत्यय होवे । जैसे- सेवान्त - भीमसेनस्वाम्यर्थं भीमसेनः^१; कारिवेभ्यः; हारिवेभ्यः; वीर्यवेभ्यः; भीमवेभ्यः इत्यादि । लक्षण - लाक्षण्यः । कारि- नान्मुखायः; कौम्भकार्यैः इत्यादि ॥२३६॥

उदीच्यामिञ् ॥२३७॥ - अ० ४ । १ । १२३ ॥

यही सेवान्त आदि की अनुबृत्ति वाली है ।

अन्वयार्थ उत्तरदेशीय भाषाओं के मत में सेवान्त लक्षण खीर कारिवाची प्रातिपदिकों से इहम् प्रत्यय होवे । जैसे- भीमसेनस्वाम्यर्थं भीमसेनिः; हारिवेभिः; लाक्षनिः; तान्मुखाभिः, कौम्भकारिः; नापितिः इत्यादि ॥२३७॥

लिकादिभ्यः क्किञ् ॥२३८॥ - अ० ४ । १ । १२४ ॥

यह भी लयायोग्य इहम् आदि का वाचक है ।

अन्वयार्थ में लिक आदि प्रातिपदिकों से क्किञ् प्रत्यय होवे । जैसे- लिकवापत्यं लिकादनिः, कौतवादनिः; शास्त्रादनिः इत्यादि ॥२३८॥

कीलस्यकार्त्तव्याभ्यां च ॥२३९॥

- अ० ४ । १ । १२५ ॥

यह इहम् प्रत्यय का वाचक है । अन्वयार्थ में कीलस्य खीर कार्त्तव्य वाच्यों से क्किञ् प्रत्यय हो । जैसे- कीलस्यस्वाम्यर्थं कीलस्यादनिः; कार्त्तव्यादितिः ॥२३९॥

१. यद्यपि इहवाची होने से भीमसेन नाम से यह प्राप्त है तो भी वदन्तिविशेष के यह ही होता है ।

वा०—किञ्चकरणे दनु कोसल कमीर क्षण क्षीर दधु
च ॥२४०॥

किञ्च प्रकरण में दनु कोसल कमीर क्षण क्षीर दधु
प्रातिपदिकों से किञ् प्रत्यय और प्रत्यय की मूर्त् का आगम होवे ।
जैसे—दाक्षायणिः, कौसल्यायनिः, कामार्यायणिः, क्षमायानिः,
वाय्यायणिः ॥२४०॥

अथो दध्यधः ॥२४१॥ — अ० ४। १। १२६ ॥

यह मूच इज् प्रत्यय का अन्वय है । अन्वयार्थ में अन्वय
दध्यध् प्रातिपदिक से किञ् प्रत्यय हो । जैसे— काश्चायान्त
काश्चायनिः, हाश्चायनिः, वाश्चायनिः इत्यादि ।

यहाँ 'अन्वय' इसलिये है कि— दाक्षायण, यहाँ न हो ।
और 'दध्यध्' इसलिये कहा है कि— दध्यधनिः, यह भी किञ्
न होवे ॥२४१॥

वा०—त्यादादीनां वा किञ् चत्तम्यः ॥२४२॥

अन्वय अर्थ में त्यादादि प्रातिपदिकों से किञ् प्रत्यय विकल्प
करके होवे । जैसे—त्यादायनिः, त्यादः, वादायनिः, वादः,
तादायनिः, तादः इत्यादि ॥२४२॥

उद्योथां वृद्धादगोत्रात् ॥२४३॥ — अ० ४। १। १२७ ॥

यह भी इज् आदि का आशय है । अन्वयार्थ में गोत्रभिन्न
वृद्धादगोत्र प्रातिपदिक से उत्तरदेसीय आचार्यों के मत में किञ्

1. यह प्रातिपद अन्वय का आशय है । और इसमें अन्वयविभाषा है,
क्योंकि किञ् किसी मूच प्रातिपद से अन्वय नहीं । किञ् के विकल्प
से यहाँ भी हो जाता है ॥

प्रत्यय होते । जैसे—आत्मगुणस्वापरय आत्मगुणावनिः; आत्मगुणा-
वनिः; आत्मरसावनिः; नापितावनिः इत्यादि ।

यहाँ 'उत्तरदेशीय आचार्यों का मत' इसलिये कहा है कि—
आत्मगुणः यहाँ चिद् न होते । 'बुद्ध संज्ञक' इसलिये है कि—
मात्रज्ञः, यहाँ भी न हो । और 'गोच का निषेध' इसलिये है
कि—गोचरविः, यहाँ भी न होते ॥२४३॥

वाकिनादीनां कुक् च ॥२४४॥ —अ० ४।१। १२५॥

उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में स्वपरय स्वयं में वाकिन्
आदि प्रातिपदिकों के चिद् प्रत्यय, और इनकी कुक् का आगम
भी होते । जैसे—वाकिनस्वापरय वाकिनकावनिः; वक्ष में
वाकिनिः; गारेयकावनिः, गारेयिः इत्यादि ।

यद् यन् और इज् दोनों का अपवाद है ॥२४४॥

पुषान्तादभ्यन्तरस्याम् ॥२४५॥ अ० ४।१। १२६॥

यद् यन् का अपवाद और इसमें अप्राप्तविभावा है ।

उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में पुषान्त प्रातिपदिक से चिद्
प्रत्यय और इनकी कुक् का आगम विकल्प करके होते ।
जैसे गार्गीपुत्रस्वापरय गार्गीपुत्रकावनिः, गार्गीपुत्रावनिः,
गार्गीपुत्रिः; वात्सीपुत्रकावनिः, वात्सीपुत्रावनिः, वात्सीपुत्रिः
इत्यादि ॥२४५॥

१. यद् (उच्चीना वृद्धा) इसके चिन्, वायव्य तो हो ही जाय, फिर
फिर 'कुक्' का आगम विकल्प से होने के लिये यद् यन् है । एक कुक्
के आगम का विकल्प, और उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में चिन्,
या विकल्प एवं दो विकल्पो से शेष प्रयोग होते हैं ॥

प्राचामवृद्धात् किन् बहुलम् ॥२४६॥

—अ० ४।१।१५०॥

अपत्यार्थे और प्राचीन प्राचावों के मत में बृद्धसंज्ञारहित प्रातिपदिक से किन् प्रत्यय बहुल करके हो जावे । जैसे—
मनुकसमापत्यं मनुकपतिः, अक्षिबुम्बकापतिः ।

यहाँ 'प्राचीनों का बहुल इसलिये है कि—श्लोचुकिः, साक्षिबुम्बकिः, यहाँ इक् ही जाता है । और 'बृद्ध का निषेध' इसलिये किया है कि—राजपतिः, यहाँ किन् न होवे ॥ २४६ ॥

मनोर्जातावज्यती शुक् च ॥२४७॥

—अ० ४।१।१५१॥

जाति कार्ये हो, तो मनु शब्द से अच् और यत् अवयव और मनु शब्द की शुक् का आगम हो जावे । जैसे—मानुषः, मनुष्यः ।

यहाँ प्रकृति और प्रत्यय के समुदाय से जाति का बोध होता है । यहाँ अपत्य कार्ये की विवक्षा नहीं है । और यहाँ अपत्य कार्ये विवक्षित होता है, यहाँ अच् ही हो जाता है । जैसे—मनोरपत्यं मानवी प्रजा ॥ २४७ ॥

का०—अपत्ये कुत्सिते मूर्धे मनोरीत्यसिगुः स्मृतः ।

नकारस्य च मूर्द्धन्यस्तेन सिध्यति मागवः ॥२४८॥

मूर्द्ध निन्दिता अपत्य कार्ये में मनु प्रातिपदिक से औत्सर्गिक अच् प्रत्यय का स्वरण करना चाहिये । अर्थात् मन् प्रत्यय हो जावे और मनु शब्द के नकार की वस्त्व होवे । जैसे—मनोरपत्ये कुत्सितो मूर्धो मागवः ॥ २४८ ॥

अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् ॥२४६॥

—अ० ४।१।१६२१॥

जो पौत्रप्रभृति अर्थात् नाती में आदि लेकर अन्ततः नाम सन्तान होता है, वह गोत्रसंज्ञक होवे। जैसे—अन्ततःप्राप्तत्वं पौत्रप्रभृति वार्त्थः; आत्सवः।

यहाँ 'पौत्रप्रभृति' इत्यादि कहा है कि—अन्ततःप्राप्तत्वं अर्थात् पुत्र आदि में गोत्र का प्रत्यय न होवे। जैसे—कीञ्जिः; गार्गीः^१ इत्यादि ॥ २४६ ॥

जीवति तु वंश्ये पुत्रा ॥२४७॥ —अ० ४।१।१६२२॥

जो जीवति का प्रत्यय है सो वंश, और जो इस वंश में होवे वह वंश्य कहलाता है।

जब तक पिता आदि कुटुम्ब के वृद्ध पुरुष जीवते हों, तब तक जो पौत्र आदि सन्तानों के अन्ततः है, वे सुवसंज्ञक होंगे।

यहाँ तु शब्द निश्चयाय है कि उस समय सुवसंज्ञ ही हो, गोत्रसंज्ञा न हो। जैसे—गार्गीश्वरः; आत्सवायनः इत्यादि ॥२४७॥

आतुरि च ज्येष्ठसि ॥२४८॥ —अ० ४।१।१६२३॥

जो बड़ा भाई जीता हो और पिता आदि मर भी गये हों, जो छोटे भाई को सुवसंज्ञा जाननी चाहिए। जैसे—गार्गीश्वरः; आत्सवायनः; आत्सवायनः इत्यादि ॥२४८॥

१. यहाँ गोत्र में कुल्लु शब्द में -ञ्जि, और वंश शब्द में -गर्, विहित है, जो वही होते। अन्ततःप्राप्तत्वं में -गर्, ही जाता है ॥

वाञ्छन्विषन् सविष्टो ह्यविरतरे जीवति' ॥२५२॥

जो आत्मा वे समय सात पीढ़ी में पाचा दादा भादि अधिक व्यवसायाने बुद्धि जीते हों, तो भी बीचप्रभृति के समयों की विकल्प करके सुखसंज्ञा होवे । जैसे—गर्भसमाप्तायं शार्ङ्गो वा शार्ङ्गविषः, वारस्यो वा वारसमापनः, दाक्षिर्वा दाक्षायजः इत्यादि ॥ २५२ ॥

वा०—बुद्धस्य च पुत्राद्याम् ॥२५३॥

बुद्ध सर्वात् जिस प्रसक्तिन की बुद्धसंज्ञा विधान की है, तो भी पुत्रा आदि में विकल्प करके सुखसंज्ञा होवे जैसे—तन्मभवान् शार्ङ्गविषः, शार्ङ्गो वा; तन्मभवान् वारसमापनः, वारस्यो वा; तन्मभवान् दाक्षायजः, दाक्षिर्वा इत्यादि ।

यहां पुत्राग्रहण इसलिये है कि—शार्ङ्गः, यहां सुखसंज्ञा न ही ॥ २५३ ॥

वा०—पुनश्च कुत्सायाम् ॥२५४॥

कुत्सा नाम निन्दा सर्ष में पुत्रा की सुखसंज्ञा विकल्प करके होवे । जैसे—शार्ङ्गो वारजः, शार्ङ्गविषो वा; वारस्यो

१. यहा जीवति शब्द की अनुवृत्ति (जीवति पु०) इस पूर्व वृत्त में कभी आती, फिर जीवति शब्द का बहुत इसलिये है कि वही का विशेषण न हो जीवति होवे । और पूर्व का ही जीवति है, वह सर्षण का विशेषण समझता चाहिये ॥

२. (बुद्धस्य च०) और (पुनश्च०) ये दोनों सर्षणवादि आदि पुत्रादी में श्रुत करके निम्न और व्याख्यात भी है, वस्तु महाभाष्य में आतिशयोक्त हो इनका व्याख्यान किया है, इसलिये यहा आतिशय ही मिले है ॥

जलनः; आरुणामनी वा; दक्षिणीत्यः, दक्षिणायी वा इत्यादि ॥ २५४ ॥

जनपदसम्बन्धात् क्षत्रियसम्बन्धः ॥ २५५ ॥

—म० ४।१।१९८ ॥

जो क्षत्रियवाची जनपद शब्द हो, तो उससे भण्यार्थ में शत्रु प्रत्यय होवे। जैसे - राज्यालः; ऐश्वर्यः; वैदेहः इत्यादि।

यहां 'जनपद शब्द से' इसलिये कहा है कि—इन्द्रोत्तराय द्रोह्यः; पीरय, यहाँ शत्रु न होवे। 'क्षत्रियवाची' का ग्रहण इसलिये है कि—वाङ्मनस राज्यालसमाश्रयं राज्यालः; वैदेहः, इत्यादि में भी शत्रु प्रत्यय न होवे ॥ २५५ ॥

वा०—क्षत्रियसम्बन्धसम्बन्धात् जनपदसम्बन्धात् तस्य राजन्या-
पत्यवत् ॥ २५६ ॥

जो क्षत्रिय के तुल्य जनपदवाची शब्द है, उससे राजा के सम्बन्ध में अपत्य के तुल्य प्रत्यय होवे। जैसे—पञ्चालाना राजा पञ्चालः; वैदेहः, मागधः इत्यादि ॥ २५६ ॥

१. यह जनपद शब्द मुख्य देश का पर्यायवाची है, जो इससे देशविशेष पञ्चाल आदि का ग्रहण होता है। वे पञ्चास आदि शब्द क्षत्रिय और देशविशेष के नाम एक ही से आये रहते हैं ॥

२. यह एक अपवाधित्वार केवल बात आता है। जब जो देशविशेष और क्षत्रियविशेष के नाम पञ्चास आदि शब्द हैं, उन देश के नामों से तद्वत् भवति उन देशों का राजा इस भवे में, और क्षत्रियवाची जगदी ने अपत्य भवे में वहाँ से बाद के अन्त पर्याप्त अपत्यविशेष समझना चाहिए ॥

३. इन पञ्चास आदि शब्दों के तद्वत् भवे में (समुदायि०) इस मूल से अधिक मूल प्रत्यय आता है, उनका अपवाद वहाँ मूल निगल है ॥

सास्त्रेयगान्धारिभ्यां च ॥२३७॥

—यज० ४।१।१५५॥

यह ब्रह्ममाण्यं शब्द प्रत्यय का अर्थवाद है ।

अपरम और तद्वाज्य अर्थ में सास्त्रेय और गान्धारि इन अर्थों से यह प्रत्यय होवे । जैसे—सास्त्रेयानामपरमं तेषां राजा वा सास्त्रेयः, गान्धारः ॥ २३७ ॥

दृग्मन्मण्यकलिङ्गसूरमसाद्यन् ॥२३८॥

—यज० ४।१।१५६॥

अपरम और तद्वाज्य अर्थ में क्षत्रियवाची दो स्वर वाले शब्द मण्य कलिङ्ग और सूरमस प्रातिपदिकों से शब्द प्रत्यय होवे । जैसे—दृक्मानामपरमं तेषां राजा वा दृक्मन्, कलिङ्गः, सूरमसः, माण्यः, कलिङ्गः, सूरमसः इत्यादि ॥ २३८ ॥

बृद्धेत्कीललाजादाज्य्यङ् ॥२३९॥

—यज० ४।१।१५७॥

अपरम और तद्वाज्य अर्थ में जनपद क्षत्रियवाची बृद्धसंज्ञक इकारान्त कीलल और लाजाद प्रातिपदिक से शब्द प्रत्यय होवे ।

यह बृद्ध शब्द का अर्थवाद है । जैसे बृद्ध आम्बोष्ठानाम्-अर्थ तेषां राजा वा आम्बोष्ठ्यः, सीवीर्यः । इकारान्त—आज्य्यङ्, कील्यः । कील्यः, लाजादः^१ ॥ २३९ ॥

१. यहाँ इकार में 'अपरमपरम' इत्यभिप्रेत है कि जो कुसारी जनपद शब्द सील ईकारान्त है उस में शब्द प्रत्यय न होवे, किन्तु यज० प्रत्यय हो जाने । जैसे—कील्यः ।

**आ०—वाण्डोर्जनपदशब्दात् क्षत्रियशब्दाद् दधन्
वक्तव्यः ॥२६०॥**

यो जनपदवाची वाण्डु क्षत्रिय शब्द है, उससे यथाय धीर
तद्वाज शब्द में दधन् प्रत्यय होते । जैसे—वाण्डुनामकर्तृ तेषां
राजा वा वाण्डयः ॥ २६० ॥

कुरुनादिभ्यो ऋः ॥२६१॥ --स० ४ । १ । १०२ ॥

अथय धीर तद्वाज शब्द में जनपद क्षत्रियवाची कुरु धीर
नकारादि प्रातिपदिकों में ऋ प्रत्यय होते । यह सन् धीर सन्
का अन्वय है । जैसे—कुरुनामकर्तृ तेषां राजा वा कीरयः ।
नकारादि नैवध्यः, नैवध्यः इत्यादि ॥ २६१ ॥

साहवाचयप्रत्ययकलकुटाममकादिभ्यः ॥२६२॥

--स० ४ । १ । १०३ ॥

यह सूत्र सन् का अन्वय है । यथाय धीर तद्वाज शब्द में
साहवाच देशविशेष के अथय प्रत्यय कलकुट धीर अथय
प्रातिपदिक से इत् प्रत्यय होते । जैसे—सौमुन्धरिः, तैलशलिः,
माद्वन्धरिः, वीगन्धरिः, भोलिङ्गिः, कारदन्धिः, प्रायस्वधिः,
कासकुटिः, पातमकि, इत्यादि ॥ २६२ ॥

ते तद्वाजाः ॥२६३॥ --स० ४ । १ । १०४ ॥

(जनपदशब्दात्) इस सूत्र से लेके वहाँ तक जो जो अथय
कहे हैं, वे तद्वाजसंज्ञक होते हैं । इसका यह प्रकीर्णन है कि
सहस्रचक्र में सुक्त होनाये । जैसे—वाञ्जवाल्, वाञ्जवाली, वाञ्जवाला,
इत्यादि ॥ २६३ ॥

कम्बोजास्तुक् ॥२६४॥ — अ० ४ । १ । १७३ ॥

अथर्व और तद्राज धर्म में कम्बोज शब्द से विहित जो शब्द प्रत्यय उसका तुक् ही । जैसे—कम्बोजस्यापत्यं तेषां राजा वा कम्बोजः ॥ २६४ ॥

वा०—कम्बोजादिभ्यो लुक्प्रत्ययं चोलाद्यर्थम् ॥२६५॥

कम्बोज शब्द से जो तुक् कहा है, सो कम्बोज आदि से कहना चाहिये । जैसे—कम्बोजः; चीलः; केरलः; उरुः; वयनः ॥ २६५ ॥

सिन्ध्यामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च ॥२६६॥

—अ० ४ । १ । १७६ ॥

जो स्त्री अथर्व वा राज्ञी अवन्तिकुन्ति और कुरु शब्द के जो लुक्प्रत्यय तद्राजसंज्ञक प्रत्यय उसका तुक् ही । जैसे—अवन्तीनामपत्यं तेषां राज्ञी अवन्ती; कुन्ती; कुरुः ।

यहां 'स्यी' ग्रहण इसलिये है कि—आवन्त्यः; वीन्त्यः; कीरव्यः, यहाँ तुक् न होवे ॥ २६६ ॥

अतश्च ॥२६७॥ — अ० ४ । १ । १७७ ॥

१. यहाँ अवन्ति और कुन्ति शब्द में अन्त्यशब्द के होने से (बुद्धिपूर्वीक) इस से अवन्, और कुरु शब्द के पराशब्द (कुरुता=) इस शब्द रूप से हो जाते हैं ॥
२. इस सूत्र में तदन्तविधि धर्मात् अन्ताशब्द प्रत्यय वा तुक् इसलिये नहीं होता कि पूर्व सूत्र में अवन्ति आदि शब्दों से तुक् कहा है, वही शास्त्र है । जो यहाँ अवन्त का तुक् होने, जो पूर्व सूत्र में तुक् शब्द हो जावे ॥

जो स्वीयाभ्य ही, जो नद्राजसंज्ञक अकार प्रत्यय का लुक् होवे । जैसे—मद्राजामयत्वं नद्राजी का यत्नी; कूरसेनी इत्यादि ।

यहां प्रातिपदिकों से (जातेरसी०) इस करके लोप् प्रत्यय हो जाता है ॥ २५७ ॥

न प्राच्यभर्गादियौघेयादिभ्यः ॥ २५८ ॥

—अ० ४ । १ । १७८ ॥

प्राच्य पूर्वदेशों के विशेषण भर्गादि और यौघेयादि प्रातिपदिकों से विहित नद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् न होवे । जैसे—प्राच्य—पञ्चालामयत्वं नद्राजी का याञ्जी; याञ्जी; याचयी इत्यादि । भर्गादि—भर्गी; कर्कशी; कैकयी इत्यादि । यौघेयादि—यौघेयी; यौघयी, यौघेयी इत्यादि ॥ २५८ ॥

॥ इति प्रथमः पादः ॥

अथ द्वितीयः पादः—

तेन रक्तां रागात् ॥ २५९ ॥ —अ० ४ । २ । १ ॥

यहां समर्थों का प्रथम यादि लक्ष की धनुबुद्धि लगी जाती है ।

कृतीयामयं राज्ञवाची प्रातिपदिक से रंगा है, इस शब्द में जिस से जो प्रत्यय प्राप्त हो वह हो जाये । जैसे—कुमुम्भेन रक्तं बल्यं कीमुम्भम्; कायायम्, यात्रियधम् इत्यादि ।

यहां 'रंग वाची' का यहूय इसलिये है कि देवदत्तेन रक्तं बल्यम्, यहाँ उत्तर की उत्पत्ति न होवे ॥ २५९ ॥

साध्यारोचनादृक् ॥२७०॥ — घ० ४ । २ । २ ॥

यहां पूर्वभूत के सब पदों की अनुबृत्ति जती जाती है । साध्या और रोचन प्रातिपदिकों से दृक् प्रत्यय होवे । जैसे—
साध्या रक्तं वस्त्रं साक्षिकम् ; रोचनिकम् ।

व्यक्तिकार होने से घञ् प्रत्यय जाता है, उसका वाक्यक यह सूच है ॥ २७० ॥

वा०—शक्यकरणे शक्यकर्ममाभ्यामुपसंख्यानम् ॥२७१॥

घञ् का ही व्यवहार यह भी वातिक है । शक्य और कर्म प्रातिपदिकों से दृक् प्रत्यय होवे । जैसे—शक्येन रक्तं वाक्यिकम् ; कर्मिकम् ॥ २७१ ॥

वा०—नीत्या अन् ॥२७२॥

नीती प्रातिपदिक से घञ् प्रत्यय होवे । जैसे—नीत्या रक्तं नीतिकम् ॥ २७२ ॥

वा०—पीतादकन् ॥२७३॥

पीत प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय होवे । जैसे—पीतेन रक्तं पीतकम् ॥ २७३ ॥

वा०—हरिद्रामहाराजनाभ्यामञ् ॥२७४॥

हरिद्रा और महाराजना प्रातिपदिकों से मञ् प्रत्यय होवे । जैसे—हरिद्रया रक्तं हरिद्रम्^१, महाराजनम् ॥ २७४ ॥

१. 'हरिद्रा पुनःपुनः कर्म' हरिद्रा से रङ्गे हुए के समान धुई के पत्र है । इन प्रयोगों में उपमानवाची मात्र के घञ् प्रत्यय ही जाता है ॥

नक्षत्रेषु युक्तः कालः ॥२७५॥ — अ० ४।२।३॥

युक्त काल अर्थात् अधिकृत हो, तो तृतीयालम्भार्थं नक्षत्र-
विशेषवाची प्रातिपदिका से अणु प्रत्यय होवे । जैसे—पुष्येय युक्तः
कालः—पौषी राशिः, पौषमहः; माघी राशिः; माघमहः इत्यादि ।

यहां 'नक्षत्रवाची' का ग्रहण इसलिये है कि—कच्छमहा युक्ता
राशिः, यहाँ प्रत्यय न होवे ॥ २७५ ॥

सुखविशेषे ॥२७६॥ — अ० ४।२।४॥

यहाँ काल का व्यवयकरण कोई विशेष अर्थ विहित न हो,
यहाँ पूर्व सूत्र से जो विहित प्रत्यय उसका अनु हो जावे । जैसे—
पुष्येय युक्तः कालांश्च पुष्यः; अथ कृतिका; अथ रोहिणी ।

यहां 'पवित्रेय' इसलिये कहा है कि—पौषी राशिः, पौषमहः,
यहां अनु न होवे ॥ २७६ ॥

दृष्टं साम ॥२७७॥ — अ० ४।२।५॥

सामवेद का देखना; अर्थात् पढ़ना पढ़ाना विचारना अर्थ हो,
तो तृतीयालम्भार्थं प्रातिपदिका से अणु आदि अथा प्राप्त प्रत्यय होवे ।
जैसे—असिष्ठेन दृष्टं साम आसिष्ठम्; वैश्वामित्रम् देवेन दृष्टं
साम देव्यं देवं वा; जनापतिना दृष्टं साम आजापत्यम् इत्यादि
॥ २७७ ॥

वाः—सर्वप्राप्तिकलिभ्यां इक् ॥२७८॥

१. इन प्रातिपदिकों का कृतिका आदि पुनरावृत्ति से (सम्यक्) श्रुता अनु-
मिता है । फिर प्रातिपदिकों द्वारा ही निष्ठा है, तो महाभाष्य से निष्पन्न
होने का कारण अथवा उद्भवा जाहिर है ॥

यहाँ से पाये जिनसे प्राचीन्यनीय शब्द है, वे इस बार्तिक में सर्वत्र सम्यक् से विवक्षित हैं ।

प्राचीन्यनीय शब्दों में अग्नि और कनि प्रातिपदिकों से एक प्रत्यय होते हैं । जैसे—अग्निना दृष्टं सामान्येयम्, अग्नेरागतमा-
नेयम् ; अग्ने रजसाग्नेयम्, अग्निदेवताज्जसाग्नेयम् इत्यादि । इसी
प्रकार कनिना दृष्टं साम् कान्येयम्, इत्यादि भी समझो ॥२७८॥

का०—दृष्टे सामनि जाते च द्विरप् दिहा विधीयते ।

तीर्थादीकङ् न विद्याया योजनद्वयविध्यते ॥२७९॥

सामवेद के देखने शर्ष में अण् प्रात्यय विकल्प करके द्वित्-
संज्ञक होते हैं । जैसे—उमानया दृष्टं साम योजनमम्, योजनम् ।
यहाँ द्वित् पक्ष में दि का जोन हो जाता है ।

नया (तत्र ज्ञातः) इस सात्वामी प्रकरण में अपने समवाद का
अनवाद होके फिर विज्ञान किया अण् प्रात्यय विकल्प करके द्वित्
होते हैं । जैसे—शतभिषजि जातः शतभिषजः, शतभिषः । द्वित् का
प्रयोजन यहाँ भी पक्ष में दि जोन है । वहाँ ननभिषजम् नक्षत्रवाची
प्रातिपदिक से युक्त काल शर्ष में अण् प्रत्यय होकर उसका
अविशेष शर्ष में लुप् हो जाता है, पीछे अत्रिक जात शर्ष में अण्
का बाधक कालवाची से ठम् प्राप्ति होता है, फिर ठङ् का बाधक
(मग्निध्वेना०) इसमें अण् विज्ञान किया है ।

तीव्रप्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ईकङ् प्रत्यय होते हैं ।
जैसे—इतीषीकम् ; तल्लीषीकम् । और विद्यावाची तीव्रप्रत्ययान्त
प्रातिपदिकों से ईकङ् न होते हैं । जैसे—द्वितीया विद्या ; तृतीया
विद्या ।

घोर गीतवाची प्रातिपदिकों से मानवेद के देखने अर्थ में शङ्ख आदि अर्थों में जो प्रत्यय होते हैं, वे यहाँ भी होंगे । जैसे— (गीतचरणा०) इस सूत्र से गीतवाची अर्थों से शङ्ख अर्थ में शृङ् प्रत्यय होता है, जैसे ही यहाँ भी होंगे । जैसे—गार्ग्येय दृष्टं साम गार्ग्यकम्, वास्तककम्, शीपयवेन दृष्टं साम शीपयवकम्, काचटवकम् इत्यादि ॥ २३९ ॥

परिवृत्तो रथः ॥२८०॥ —स० ४ : २ : ९ ॥

जो परिवृत्त अर्थात् किसी चाम आदि से मड़ा रथ आदि मान अर्थ वाक्य हो, तो तृतीयाश्रयार्थ प्रातिपदिकों से अर्थ प्रत्यय होंगे । जैसे—चर्मणा परिवृत्तो रथश्चार्मेणः; काम्बजः; वारथः इत्यादि ।

यहाँ 'रथ' का यहाँ इसलिये किया है—रथेण परिवृत्तं शरीरम्, यहाँ प्रत्यय न होंगे ॥ २८० ॥

कीमाराशुर्वचने ॥२८१॥ —स० ४ : २ : १३ ॥

पूर्व श्रमिका किसी के साथ विवाहविषयक कवन भी न हुआ हो, उस अपूर्ववचन अर्थ में कुमारी शब्द से अर्थ प्रत्ययान्त कीमार निपातन किया है ॥ २८१ ॥

वा०—कीमारापूर्ववचन इत्युच्यतः स्त्रिया अपूर्वत्वे ॥२८२॥

स्त्री का अपूर्ववचन अर्थ हो तो स्त्री और पुल्लिङ्ग में कीमार शब्द निपातन किया है । जैसे—अपूर्ववति कुमारीमुपपन्नः कीमारी भवति; अपूर्ववतिः कुमारी पतिमुपपन्ना कीमारी आख्याः ॥ २८२ ॥

१. इस कालिका का अर्थक्य यह है कि अल्प विधान की कुमारी शब्द से ही होंगे, शङ्ख प्रत्ययान्त दोनों लिङ्ग में रहे । अपूर्ववचन अर्थ

तत्रोद्भूतममशेषः ॥२८३॥ — अ० ४ । २ । १३ ॥

उद्भूत अर्थात् रखने अर्थ में मन्त्रश्रीसमर्थ पात्रवाची प्रातिपदिकों से अर्थ प्राप्त होवे । जैसे—‘वज्रवक्त्रोद्भूत योदनः पञ्चकपालः’ अर्थात् उद्भूतः आराधः इत्यादि ।

यही ‘पात्रवाची’ का अर्थ इतलिये है कि—‘पात्रोद्भूत योदनः’, यही प्रत्यय न होवे ॥२८३॥

साक्षिभ्यो दीर्घमासीति ॥२८४॥ — अ० ४ । २ । २० ॥

साक्षिकरण अर्थ वाच्य होवे, तो दीर्घमासी विशेषवाची प्रातिपदिकों से यथाशायन प्रत्यय होवे । जैसे—‘पुत्रेण सुता दीर्घमासी दीधी, दीधी दीर्घमासी अस्मिन् माते त दीधी माताः दीधीर्द्धमाताः; दीधीः संवत्सरः । इस प्रकार—‘मयावशयेन सुता दीर्घमासी माधी, सास्मिन्मन्त्रेण इति माधी माताः पत्न्युनः; वैशः; वैशाखः; उदीरः; आषाढः; श्रावणः; भाद्रपदः; पश्चिमः; कालिकः; कार्त्तिकीर्षः ।

इस सूत्र में ‘इतिकरण’ से यथाशयन का प्रतीजन सूत्रकार का है ॥२८४॥

का सम्बन्ध कुमारी से साध हो रहे । जैसे—‘पूर्व जित का कोई पति नहीं था भी न हुआ हो, ऐसी कुमारी को प्राप्त हुआ पुत्रव शोभा, और वही ही कुमारी पति को प्राप्त हुई कीमती ॥

१. महा पञ्चकपाल मन्त्र में (द्वितीर्धमन्त्रावे) इस पूर्वनिर्दिष्ट सूत्र से प्राचीनकीय अन्वय प्राप्त का मुद् द्विपु मन्त्र के होने से ही जाता है ॥

वाः -साऽस्मिन् पीर्णमासीति संज्ञाग्रहणम् ॥२८५॥

(साऽस्मिन्) इस मूल में संज्ञाग्रहण करना चाहिये । यहाँ जहाँ प्रकृति प्रत्यय के मनुदाय में महीनों की संज्ञा प्रकट हो, वही प्रत्यय हीये । और—पीर्ण पीर्णमास्मिन् पञ्चदशराने, यहाँ प्रत्यय न ही ॥२८५॥

आग्रहायणशकत्वाद् ॥२८६॥ —अ० ४।२।२१॥

यह मूल पूर्वमूल के प्रत्यय शब्द का अन्वय है ॥

पीर्णमासी समानाधिकरण अग्रहायणी और अश्वत्थ प्रातिपदिकों के अधिकरण शब्द में ठक् अवयव होये । जैसे—आग्रहायणी पीर्णमास्मिन् नामे स आग्रहायणिकी मासः सर्वमासी वा; आश्वत्थिकः ॥२८६॥

विभाषा कात्तुनीश्वरणाकातिकीचैत्रीभ्यः ॥२८७॥

—अ० ४।२।२२॥

पीर्णमासी समानाधिकरण कात्तुनी श्वरणा' कातिकी और चैत्री प्रातिपदिकों के अधिकरण शब्द में विकल्प करके ठक् अवयव

१. आश्वत्थ आदि पुरुषों में संज्ञाग्रहण मूल में ही किया गया है, जो ठीक नहीं है, क्योंकि कातिक कहे से । और यह कथन में भी लिखा है कि—“संज्ञाग्रहणं पूर्वोक्तार्थमिति नातिस्मृत्यग्रहम्” ॥

२. इस मूल में अग्रहायणविभाषा दक्षिण है कि ठक् किसी से प्राप्त नहीं, शब्द प्राप्त है, उसी का यह अन्वय है ॥

३. अग्रहायणी श्वरणा काल से कुछ काल शब्द में (संज्ञायां श्वरणाः ४।२।२) इस मूल के प्रत्यय का मूल ही ज्ञात है, पीर्णमासी का विशेषण प्रत्ययार्थ बना रहता है ॥

हो, धोर पक्ष में अन् हो जाये । जैसे—काल्पुनी वीर्णमाम्यस्मिन् मासे स काल्पुनिको मासः, काल्पुनो मासः; आर्यविको मासः, आर्यो मासः; कालिको मासः, कालिको मासः; वैदिको मासः, वैदिको मासः ॥२८७॥

साजस्य देवता ॥ २८८॥ — अ० ४ : २ : १२ ॥

नेवकारक वाक्य हो, ती प्रथमात्मर्थ देवताविशेषवाची प्रातिपदिकों से वधायोग्य प्रत्यय हो । जैसे—प्रजापतिदेवताजस्य प्राजात्मन्वम्^१, इन्द्रो देवताजस्य ऐन्द्रं हविः, ऐन्द्रो मन्त्रः, ऐन्द्रो ऋक् इत्यादि ॥२८८॥

कस्येत् ॥ २८९॥ — अ० ४ : २ : १४ ॥

वही पूर्वपूष से अन् प्रत्यय हो हो जाता, फिर इकारादेश होने से लिए यह सूत्र है ।

देवता समानाधिकरण के प्रातिपदिक से अन् प्रत्यय और प्रकृति को इकारादेश भी होवे । जैसे—को देवताजस्य कामं हविः, कामो मन्त्रः, कामो ऋक् ।

वही 'इत् में लवरकरण' तत्काल का बोध होने के लिये है ॥२८९॥

वाय्वतुपिब्रुवसो यत् ॥ २९०॥ — अ० ४ : २ : १० ॥

प्रथमात्मर्थ देवता समानाधिकरण वायु ऋतु वितृ और उपस् प्रातिपदिकों से, बहरी के सर्व में अन् का बाधक यत् प्रत्यय

१. यह अन् का अधिकार भी है, क्योंकि इसको वायु वर (विलसिषा०) इस सूत्र से पञ्चमस्य प्रातिपदिक से भी प्रत्यय हो जाता है ॥

होवे । जैसे—वायुर्वैद्यताञ्जय वायव्यम्; ऋतव्यम्; निम्बम्;
उषस्वम् ॥२९०॥

द्यावापृथिवीशुनातीरमस्तवदन्वीषोमवास्तोष्पतिगृहमे-
घाच्छ च ॥२९१॥ —अ० ४ । २ । ११ ॥

यहाँ यन् की अनुवृत्ति पूर्वश्रुत से चली जाती है ।

प्रथमाश्रयदे देवता समानाधिकरण द्यावापृथिवी आदि
प्रातिपदिकों से, यच्छी के धर्म में छ और यन् प्रत्यय होवे । जैसे—
द्यावापृथिवी देवसे अन्व द्यावापृथिवीयम्, द्यावापृथिव्यम्;
शुनातीरयम्, शुनातीर्यम्; मस्तवतीयम्, मस्तवरयम्, दन्वी-
षीयम्, दन्वीषीयम्, वास्तोष्पतीयम्, वास्तोष्परयम्; गृह-
मेघीयम्, गृहमेघयम् ॥२९१॥

कालेभ्यो मवयत् ॥२९२॥ —अ० ४ । २ । १२ ॥

(लव भवः) इस अधिकार में जिस कालवाची प्रातिपदिक
से जो प्रत्यय प्राप्ति है, वही यहाँ देवता समानाधिकरण काल
विशेषवाची प्रातिपदिक से होवे । जैसे—संकलसरो देवताञ्जय
कालवृत्तिक; यहाँ सामान्य कालवाची से उत्पन्न है; मावत्
देवताञ्जय प्रावृत्तयः, यहाँ यः पीष्णो देवताञ्जय वेष्मम्, पीष्म
शब्द का उत्पत्तिवर्ती में पाठ होने से उत्पन्न होता है । इसादि
प्रकरण की योजना करनेकी चाहिये ॥२९२॥

महाराजप्रोष्ठवदाट्टम् ॥२९३॥ —अ० ४ । २ । १४ ॥

देवता समानाधिकरण महाराज और प्रोष्ठमद शब्दों से यच्छी
के धर्म में टट् प्रत्यय हो । जैसे—महाराजो देवताञ्जय
माहाराजिकम्, प्रोष्ठवदिकम् ॥२९३॥

वा०—ठञ् प्रकरणे तदस्मिन् वर्तते इति नक्षत्रादिभ्यः
उपसंख्यानम् ॥२६४॥

काम अधिकरण अधिष्ठेय होवे, तो नक्षत्रादि प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय होवे । जैसे—नक्षत्रोऽस्मिन् काले वर्तते नापयज्ञिकः पाकयज्ञिकः, इत्यादि ॥२६४॥

वा०—पूर्वमासाद्यम् ॥२६५॥

पूर्व मासिक से कालाधिकरण की अनुवृत्ति जाती है । कामाधिकरण वर्ष में पूर्वमास प्रातिपदिक से अणु प्रत्यय हो । जैसे—पूर्वमासोऽस्मिन् काले वर्तते इति पूर्वमासी तिथिः, यहाँ अपने अपनेवाद ठञ् की बाध के अणु है ॥२६५॥

पितृभ्यमातुलमातामहृषितामहाः ॥२६६॥

—अ० ४ । २ । १२ ॥

भ्राता सर्व बाप्य हो, तो पितृ और मातृ शब्दों से अणु तथा हुलच् प्रत्यय वषाकृष्य करके निपातन किये हैं । जैसे—पितृभ्राता पितृभ्यः मातृभ्राता मातुलः । पिता का भाई 'पितृभ्य' और माता का भाई 'मातुल' कहलाता है ।

और मातृ तथा पितृ प्रातिपदिकों से पिता सर्व में बामहन् प्रत्यय निपातन किया है । जैसे—मातृ-पिता मातामहः, पितुः-पिता पितामहः । माता का पिता मातामह = नाना, और पिता का पिता पितामह = दादा कहलाते हैं ॥२६६॥

वा०—मतिरि विच्च ॥२६७॥

मातृ सर्व अधिष्ठेय होवे, तो पूर्व प्रातिपदिकों से कहा बामहन् प्रत्यय पितृ हो जावे । जैसे—मातृभ्राता मातामहीः

वितुर्माता विलायही । माता की माता बानी घोर पिता की माता दासी ।

यहाँ 'वित्' करने का प्रयोजन यह है कि—स्त्रीलिङ्ग में लीप् प्रत्यय हो जाये ॥२९७॥

वा०—अयेनुंश्चे सोडदूसमरीसचः ॥२९८॥

अति प्रातिपदिक से कुछ अर्थ में सोड दूस घोर मरीसच् प्रत्यय होवे । जैसे—अयेनुंश्चनविमोडम्, अविदूसम्; अविमरीसम् ॥२९८॥

वा०—तिलाप्रियकलात् पिउजयेजौ ॥२९९॥

निष्कल समानाधिकरण तिल प्रातिपदिक से पिउज घोर येज प्रत्यय होवे । जैसे—निष्कलं तिलं तिलपिउजम्; तिलयेजम् ॥२९९॥

वा०—पिउजगछन्दति डिच्छ ॥३००॥

पूजोक्त पिउज प्रत्यय वैदिकप्रयोग विषय में डिच् होवे । जैसे—तिलपिउजं दग्धाननम्, वहां डिच् होने से टिगुंजक अकार का लोप हो जाता है ॥३००॥

तस्य समूहः ॥३०१॥ —अ० ४।१।३५॥

यह अक्षिकार सूत्र है । पष्ठीतसर्व प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में यथाशक्य प्रत्यय होवे । जैसे—यनस्फलीनां समूहो यानस्फलयम्; स्त्रीणां समूहः स्वेयम्; पोस्तम् इत्यादि ॥३०१॥

गोत्रीशोण्दोरघराजराजन्यराजपुत्रयत्समनुष्याजायु
मुज् ॥३०२॥ —अ० ४।२।३८॥

पशुधनके जो गोशालाको उक्त उच्छ्रु उरध्न राज राजन्व राजपुत्र कस्त मनुष्य धीर भज प्रातिवदिक है, उन से समूह धर्म में यन् प्रत्यय होवे ।

जैसे—गुणकामनीनां समूहो ग्नीयुकावकम्, मार्गकम्; वल्लकम्; वाग्मीयकम्^१ इत्यादि । उक्तनां समूह शीलाकम्; धीष्टकम्; धीरध्नकम्, राजकम्; राजन्वकम्; राजपुत्रकम्; वल्लकम्; वागुम्भकम्^२, आत्रकम् ॥३०२॥

वा०—बृह्दावन् ॥ ३०३ ॥

बृह्द शब्द से भी समूह धर्म में बृज् प्रत्यय हो । जैसे—बृह्दानां समूहो बार्हकम् ॥३०३॥

ब्राह्मणमात्रवसाहवाद्यन् ॥ ३०४ ॥

- य० ब० २१ ४६ ॥

ब्राह्मण मात्रव धीर ब्राह्म प्रातिवदिकों से समूह धर्म में यन् प्रत्यय होवे । जैसे—ब्राह्मणानां समूहो ब्राह्मण्यम्; मात्रव्यम् ॥३०४॥

वा०—यन्त्रकरणे पुष्टादुपसङ्ख्यानम् ॥ ३०५ ॥

पुष्ट शब्द से भी यन् प्रत्यय कहना चाहिये । जैसे—पुष्टानां समूहः पुष्टयम् ॥३०५॥

१. यहाँ महाभाष्य के प्रमाण से जोर में युवा को भी जोर कहते हैं । इसविषे युव शतवन् की जोष मान के भाष्यरत्न भाषि सम्राट् से वृज् प्रत्यय होता है ॥

२. यहाँ राजन्व धीर मनुष्य कस्त के उच्चार कल लीन उच्छ्र है, जो (कस्तवा के०) इस वास्तिक से प्रवृत्तिमान हो जाने से लीन नहीं होता ॥

शामज्जनयधुम्भस्तत् ॥ ३०६ ॥—अ० ४।३।४२ ॥

समुह धर्म में शाम जड़ और धनु प्रातिपदिकों से तत् प्रत्यय होवे । जैसे—शामाणां समुहो शामता; जड़ता; धनुता ॥३०६॥

वा०—वज्रसहायान्यां च ॥ ३०७ ॥

वज्र और महाय प्रातिपदिकों से समुह धर्म में तत् प्रत्यय होवे । जैसे वज्रानां समुहो वज्रता; महायता ।

इस वार्तिक का महाय शब्द काशिका आदि पुस्तकों में सुच में मिला दिया है ॥३०७॥

वा०—अह्नः श्वः जलो ॥ ३०८ ॥

ह्न धर्म में अहन् प्रातिपदिक से श्व प्रत्यय हो । जैसे—अह्नां समुहोऽह्नीनः कतुः ॥३०८॥

वा०—पर्यायं यश् ॥ ३०९ ॥

यश् प्रातिपदिक से समुह धर्म में यश् प्रत्यय होवे । जैसे—यश्यानां समुहः पर्यायम् ।

यश् प्रत्यय में भिन्नकरण के होने से बदलजा होकर बदलजा का कार्य उपर्यन्त अङ्ग को सुच नहीं होता ॥३०९॥

यनुवास्तादेरङ् ॥ ३१० ॥—अ० ४।२।४३ ॥

कनुवास्तादि प्रातिपदिकों से समुह धर्म में अङ् प्रत्यय हो । जैसे—कुमारीणां समुहः कोमारन्; केशोरन्; बाधुट्; केशरम्; कपोलानां समुहः कापोलन्; मापूरन् इत्यादि ॥३१०॥

खण्डिकादिभ्यश्च ॥ ३११ ॥ —अ० ४।२।४४।

खण्डिका आदि प्रातिपदिकों से समूह सर्व में घञ् प्रत्यय हो। जैसे—खण्डिकानां समूहः खण्डिकम्; वाहकम् इत्यादि। यह घञ् टक् का वाचक है ॥३११॥

वा०— घञ् प्रकरणे क्षुद्रकमालवार्त्तसेनासंज्ञायाम् ॥३१२॥

क्षुद्रक और मालव ये दोनों राज्य जनपद क्षत्रियवाची हैं। उनसे उत्पन्न हुए तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् हो जाता है। फिर दोनों का समाहारद्वन्द्व समास होके सन्तीदालम्बर हो जाता है। फिर अनुदात्तादि के होने से घञ् प्रत्यय हो ही जाता, फिर गोत्रवाची से (गोत्रोच्चोः) इस से घृञ् प्रत्यय प्राप्त है, उस का अपवाद घञ् विधान किया है।

और यह वालिक नियमार्थ भी है कि क्षुद्रकमालव प्रातिपदिक से सेना की संज्ञा सर्व हो में घञ् प्रत्यय होवे, अपवाद नहीं। जैसे—क्षुद्रकमालवो सेना। और जहाँ सेनासंज्ञा न हो, वहाँ क्षुद्रकमालवकम्; गोत्रवाची से घृञ् प्रत्यय हो जावे ॥३१२॥

अक्षितहन्तिस्त्रीनीयटक् ॥ ३१३ ॥ —अ० ४।२।४५॥

समूह सर्व में चित्तवर्जित हन्ति और स्त्री प्रातिपदिकों से टक् प्रत्यय होवे। जैसे—अपूपानां समूहः आपूविकम्, आपूविकम्; शक्युकम् इत्यादि। हस्तिकम्^१ सेनुकम् ॥३१३॥

१. जहाँ (अक्षितपिच्छहो विज्ञप्तिः) इस परिभाषा के तत्प्रातिपद हन्तिनी तन्त्र में भी प्रत्यय हो जाता है। जैसे—हस्तिनीनां समूहो हस्तिकम्। और (अपवादोऽस्ति) इस वालिक से पुंनञ् प्राप्त होगा है ॥

विषयो देशे ॥ ३१४ ॥ —अ० ४ । २ । ३१ ॥

जो यह विषय देश होने, तो पण्डितसमर्थ प्रातिपदिकों से अणु प्रत्यय हो । जैसे—विभीषा विषयो देशः सीमाः, भीष्मः, पाण्डवः इत्यादि ।

यहां 'देश' कहना इसलिये है कि—देवदत्तस्य विषयोऽनुवाकः, यहाँ प्रत्यय न हो ॥ ३१४ ॥

संघामे प्रयोजनयोद्ध्युभ्यः ॥ ३१५ ॥

—अ० ४ । २ । ३२ ॥

संघाम सर्ष मे प्रयोजनसमर्थ प्रयोजनवाची और योद्ध्युवाची प्रातिपदिकों से अणु प्रत्यय हो । जैसे—अथा प्रयोजनस्य संघामस्य भाटः संघामः, सीमाः, सीरमिणः । योद्ध्युभ्यः—अहिमाता योद्धारोऽयं संघामस्य स अहिमातः, रत्नान्दनाऽयः, नारतः इत्यादि ।

यहां 'संघाम' का कहना इसलिये है कि—मुमदा प्रयोजनस्य दानस्य, यहाँ प्रत्यय न होने । और 'प्रयोजनयोद्ध्यु' कहना इसलिये है कि—मुमदा त्रैलोक्याय संघामस्य, यहाँ भी न हो ॥ ३१५ ॥

तदधीते तद्धोत्रे ॥ ३१६ ॥ —अ० ४ । २ । ३३ ॥

द्वितीयात्मसमर्थ प्रातिपदिकों से अधीत और वेद अर्थात् बड़ने और जानने अर्थों से अणु प्रत्यय हो । जैसे—यजुषोऽधीते वेद

१. इस सूत्र से दो बार तत् अर्थ का पाठ इसलिये है कि एक सामान्य को यह रहा और दूसरा यदा-दुमदा सामान्य का होता, वे दोनों दृष्य दृश्य समर्थ कार्य ॥

वा न ह्यन्तः; व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः; नैरतः;
निमित्तादि वेद नैमित्तः; मीढृतः इत्यादि ॥ ३१५॥

कनुष्यादिभूषाभ्याद्युक् ॥ ३१७ ॥ -य- ४ : १ : ३५ ॥

यह सूत्र यन् का बाधक है । कनुविशेषवाची उच्य आदि
और भूषाभ्या प्रातिपदिकों से बधीत और वेद अर्थ में ठक् प्रत्यय
होवे ।

जैसे—कनुवाची—अग्निष्टोममधीते वेद वा आग्निष्टोमिकः;
आश्वमेधमधीते वेद वा आश्वमेधिकः; वायवेयिकः; राजसूयिकः ।
उच्यवादि—उच्यं साममानमधीते वेद वा अच्ययिकः; लोकायतिकः;
इत्यादि । भूषाभ्या—योगसूत्रमधीते वेद वा योगसूत्रिकः; गौभिलीय-
सूत्रिकः; श्रौतसूत्रिकः; पाराशरसूत्रिकः इत्यादि ॥ ३१७॥

वा०—विद्यालक्षणकल्पभूषाभ्यावकत्वादेरिकक् स्मृतः
॥ ३१८ ॥

विद्या लक्षण कल्प और भूषा के चार शब्द जिनके अन्त
में हों, और कल्प शब्द प्रादि में न होवे, ऐसे प्रातिपदिकों से बधने
और जानने अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे ।

जैसे—विद्या—वायसविद्यामधीते वेत्ति वा वायसविष्टिकः;
सार्धवित्तिकः । लक्षण—योगलक्षणमधीते वेद वा योगलक्षणिकः;
आश्वमेधवित्तिकः । कल्प—पराशरकल्पमधीते वेत्ति वा पराशर-
कल्पिकः; मातृकवित्तिकः । भूषा—वार्तिकसूत्रमधीते वेद वा वार्तिक-
सूत्रिकः; साङ्ख्यसूत्रिकः इत्यादि ।

यहाँ 'व्यक्त्यादि का विषय' इसनिवे है कि—कल्पसूत्रमधीते वेद का कालसूत्रः, यहाँ ठक् न हो, किन्तु कन् प्रत्यय ही हो आवे ॥३१८॥

वा०—विद्या चानङ्गक्षत्रधर्मनिपूर्वा ॥ ३१९ ॥

चङ्गक्षत्र धर्म धीर बि ये चार शब्द जिसके पूर्व ही, ऐसे विद्या प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय न होवे, किन्तु कन् ही हो आवे । अन्य कोई शब्द पूर्व ही तो विद्या शब्द से ठक् ही हो, यह नियम इस प्रातिपदिक से समझो । जैसे—चङ्गविद्यामधीते वेत्ति वा चङ्गविद्यः; क्षात्रविद्यः; धर्मविद्यः; वैविद्यः ॥३१९॥

वा०—वाक्यानामव्याधिकेतिहासपुराणेऽप्यश्च ॥ ३२० ॥

वाक्यानामव्याधिका इतिहास धीर पुराण इन चार के विशेषवाची प्रातिपदिकों से बढ़ने धीर जानने धर्म से ठक् प्रत्यय हो ।

जैसे—वाक्यानाम—वचनीकमधीते वेत्ति वा वाक्यनीतिकः; त्रैवङ्गविकः; साक्षातिकः । व्याध्याधिका—वाक्यवदन्तामधीते वेद वा वाक्यवदलिकः; सीमनीतरिकः । इतिहासमधीते वेद वा ऐतिहासिकः; पौराणिकः इत्यादि ॥३२०॥

का०—अनुसूतं कथलक्षणं सर्वसादेष्टुमोरच सः ।

इकन् पदोत्तरवदत् शतवष्टेः चिकन् पचः ॥ ३२१ ॥

अनुसू लक्षण धीर लक्षण से तीनों कथविशेषों के नाम हैं । इनसे ठक् प्रत्यय हो । जैसे—अनुस्वमधीते आनुसुकः, कदा (इनुनु०) इह शूच से प्रत्यय की ककारादेस ही जाता है । अथममधीते वेद वा साधिविकः; लाधविकः ।

एवं और स शब्द जिसके अन्त में हो ऐसे द्विगुलसंज्ञक प्रातिपदिक से विहित प्रत्यय का लुक् हो आवे । जैसे—सर्ववेद-मधीते वेति वा सर्ववेदः; सर्वतन्मः । सत्तात्त्विकमधीते वेद वा सत्तात्त्विकः, सत्तत्त्वग्रहः ।

यद् शब्द जिसके अन्त में हो ऐसे प्रातिपदिक से इकम् प्रत्यय होवे । जैसे—पूर्ववेदमधीते वेद वा पूर्ववेदिकः; उत्तरवेदिकः ।

यश्च शब्द जिसके अन्त में हो, ऐसे दात और षष्ठि प्रातिपदिकों से विकल् प्रत्यय हो । प्रत्यय में विकृतरूप स्त्रीलिङ्ग में लोप् होने के लिये है । जैसे—उत्तरव्यमधीते वेति वा दातव्यिकः; उत्तरव्यिकी; षष्ठिव्यिकः, षष्ठिव्यिकी इत्यादि ॥३२१॥

प्रोक्तास्तुक् ॥३२२॥ —अ० ४ । २ । ११ ॥

अभ्येष्ट वेदित् वर्ष में प्रोक्त प्रत्ययान्त से विहित तद्धित-संज्ञक प्रत्यय का लुक् हो आवे । जैसे—वागिनिना प्रोक्तं वागिनीयमधीते वेद वा वागिनीयः, वागिनीया ब्राह्मणी; काशकुरस्तेन प्रोक्ता मीमांसा काशकुरस्वी, काशकुरस्वी मीमांसामधीते ब्राह्मणी काशकुरस्ना, यहाँ अनुपसर्जन के न होने से फिर प्रीप् नहीं होता ॥३२२॥

उन्वोवाह्यानानि च तद्विषयाणि ॥३२३॥

—अ० ४ । २ । १२ ॥

एक और ब्राह्मण ने दोनों प्रोक्तप्रत्ययान्त सन्धेष्ट वेदित् प्रत्ययार्थविधायक हों, धर्मात् पढ़ने और जानने धर्मों के बिना प्रोक्तप्रत्ययान्त एक और ब्राह्मणों का पूर्वक् प्रयोग न होवे । जैसे—कटेन प्रोक्तं उन्वोवाहीयते ते कटाः; मीमांसा; वैषयतायाः;

आवाजिनः वाजमनेकिनः । आह्वान—नाभिनः । भास्वनिनः ।
आहवात्मनिनः । एतरेजिनः ।

यहाँ 'सुन्दोकाह्वय' बहुत कम मिले हैं कि पाणिनीय व्याकरणम्; वेङ्गी सत्यः; यहाँ महिषयता न होवे ॥३८३॥

तदस्मिन्नस्तीति चेत् तद्वान्नि ॥३७४॥

— **W** I S E

यह नूतन कल्पार्थ प्रत्यक्षों का अन्वयार्थ है । जो देश का नाम होवे, सो अस्मिन् सत्त्वान्प्रतिष्ठापन प्रथमात्मकम् आतिथ्यदिकों से अन्वयार्थ प्रत्यक्ष होवे । जैसे — उदुम्बरा अस्मिन् देशे सन्ति पीदुम्बरी देशः, कात्तकः, पार्वतः ।

यद्वा 'कथाय' यद्वा 'इति' हे कि—गोधूमाः मन्वन्तिम्
देवे, यद्वा 'प्रत्यय' न लोके ॥३३४॥

सिद्धि तिथि: ११/१२/२०११

निर्वला वर्ष में तृतीयांशवर्ष प्रातिपदिकों से क्या प्राप्त प्रत्यय होते हैं—सहस्रणे निर्वला सहस्री परिष्ठा; कुशाम्बेन निर्वला बीजाम्बो जगरी (१३३३॥)

सत्य निवासः ॥३२६॥ — अ. ४. १. १८॥

जहां निवास देश धर्म बान्ध हो, वहां बन्धीनमर्थ प्रातिपदिको
 से कथाश्रय प्रत्यय होवें । जैसे - बहुनाथानिवासी देश बाहु-
 नाथी देशः, शैवः, शैविष्टः, उत्तमस निवासी देश शोभतः,
 नीरवः इत्यादि ॥३२६॥

आदरभास्य ॥ ३२७॥ पृ. ४। २। ६९.॥

सद्वृत्तमय सन्निधिः समीपं सन्ति ते कर्त्तव्यमर्थं प्रातिपदिको मे
मया प्रत्ययः । अने विद्विषाया सद्वृत्तमयं वेदितं नगरम् ।

हिमकतोद्गूरभव ईमवतम्; हिमवतस्यादूरभवो देशो हैमावतः
इत्यादि ।

इस सूत्र से घाने चारों खर्षों की अनुवृत्ति चलती है, इसी
से यह प्रकरण चातुर्यिक कहलाता है ॥३२७॥

औरज् ॥३२८॥ —घ० ४।२।३०॥

उक्त चारों खर्षों में बगड़ीसमर्थ लक्षणागत प्रातिपदिकों से अत्र
प्रत्यय ही । जैसे—अरज्—आरजवम्; कशानु—काशितवम्;
ककंदेलु—ककंदेलवम्; दरवः कण्ठस्मिन् देहे इत्यादि निवासो
देशोद्गूरभवो वा रोरवः; वरजुना निर्बल पारशवम् इत्यादि
॥३२८॥

बुद्धलक्षकजितसेनिरहज्ययमन्त्रिकप्रिञ्ज्यककठकोडरी-
हणकुमारवार्धकुमुदकालतृणप्रेक्षारमसशिसह् कालवलयधक-
र्णमुत्तङ्गमप्रगदिन्वरहकुमुवाविभ्यः ॥३२९॥

—घ० ४।२।४०॥

यह सूत्र अत्र का अन्वय है । अरीहणादि सप्तह गणरथ
प्रातिपदिकों से पुरीकत चार खर्षों में यथासंख्य करके बुज् भादि
सप्तह (१७) प्रत्यय होते हैं । आदि शब्द का प्रत्येक शब्द के साथ
योग होता है ।

जैसे—अरीहणादिकों से बुज्—आरीहणवम्, शोषणवम्;
अदिराणादूरभव नगरम् आदिरवम् । कुशाश आदि से क्षम्-
काशार्थीवम्; आदिष्ठोमः । अरुष आदि से क—अरुषकः;
म्यपीयकः; शिरकः । कुमुद आदि से ठम्—कुमुदिकम्; शवर्क-
रिकम्; म्यपीयिकम् । काश आदि से हम्—काशितम्; वाशितम् ।
तृण आदि से स—तृणसः, नडसः; वृक्षसः । प्रेक्ष आदि से

इनि—वेणी; हलनी; वन्धुनी । अश्व आदि से र—अश्वरः; गुरुरः; कुरुरः; मीनरः । सखि आदि से इप्—साक्षेयम्; साखिशलेयम् । सङ्काश आदि से व्य—साङ्काश्वम्; काशियत्नम्; सामीर्यम् । वल आदि से व—वल्गः; कुल्यम् । पल आदि से फल्—पाशापलः; सौपायलः; अलहायनः । कर्ष आदि से फिङ्—काशयिनिः, वालिङायनिः । सुतङ्गम् आदि से इङ्—सौतङ्गिः, मीनचिन्तिः, वेप्रचिन्तिः । प्रमदिन् आदि से ञ्य—प्रमद्यन्; मागद्यम्, शारद्यम् । वराह आदि से कङ्—वाराहकम्; वासाशकम् । धीर कुमुदादिकों से ठङ् प्रत्यय होवे । जैसे—कीमुदिकम्; गीमदिकम् इत्यादि ॥३२६॥

अनवदे लुप् ॥३३०॥ - अ० ४ । २ । ०२ ॥

यहाँ अनवद अर्थात् देश अभिधेय रहे, वहाँ उक्त चार अर्थों में जो लङितसंज्ञक अवयव होता है, उस का लुप् हो । जैसे—कल्पावातां निवासी अनवदः पल्पावाताः; कुरवः; मलमाः; अङ्गाः; वङ्गाः; मगधाः; दुग्धाः^१ इत्यादि ॥३३०॥

शेषे ॥३३१॥ - अ० ४ । २ । ०३ ॥

यह अधिकार सूत्र है, इस का अधिकार (उत्प्रेदम्) इस आवासी सूत्रपर्यन्त जाता है । अश्व आदि धीर उक्त चार अर्थों में जो भिन्न अर्थ हैं, सो गेष कहलते हैं ।

इस सूत्र से प्राये जो जो प्रत्यय विज्ञान करे सो-सो गेष अर्थों में जानी । धीर यह विश्वसूत्र भी है । जैसे—अधुषा गृह्यते

१. मूला (मुनि तुकाव०) इस सूत्र से अनिवार्यतया अर्थात् विज्ञ धीर संज्ञा प्रत्यय होने से पूर्व के समान अवयव लुप् के लक्षणा भी रहते हैं ॥

आधुन्यं कथम्; आचनः कन्दः दूधरि विष्टा दार्वदाः सक्तवः;
चित्तदया प्रवर्तते चेतनिकः; उलूखले शुष्कः घोषुखलो आचनः
कर्मकदाते आचनी रथः; चतुर्भिरदाते आचुरं शकटम् इत्यादि ।
यदा कर्मव दयाप्राप्त्य प्रत्यय होते है ॥२३१॥

राष्ट्राचारपाराद धर्मी ॥३३२॥—४० ४। २। ३९

राष्ट्र और सरकारपर ज़ातिनदिकों से क्यासंभव करके व और
 व प्रत्यक्ष होवे । जान जादि लेख खर्चों में और उन उन खर्चों में
 जो जो समर्थव्यक्ति हों सो सो सर्वव्य जाननी चाहिये । जैसे—
 राष्ट्र भवो ज्ञातो वा राष्ट्रियः; स्वराज्यीयः ॥३३॥

प्रा.०-विणहीलावधि ॥३३३॥

विशुद्धीत कहते हैं मित्र-मित्र को, जहाँ-जहाँ सदाचार सदा
से चलन चलन भी वह प्रत्यक्ष ही । जैसे—सहारीयः, पारीयः
॥३३॥

वा.०—विपरीताक्ष ११३३४॥

चार पूर्व और चार पश्चिम हो ती भी समस्त आतिथिक के
होने । जैसे—पाराशरोषः ॥३३४॥

सामाजिकशास्त्री ॥३३५॥ —पृ० ४ । ३ । ५४ ॥

जात प्राणि यशो में प्राप्त जातिपटिक ते व सीर चक्ष्, प्रत्यक्ष
होयें । जैसे—प्राप्ते जातो भवः कीतो लक्ष्मः कुशलो वा धाम्भः,
प्राप्तीजः ॥३३३॥

दक्षिणापञ्चात्पुरसरस्यक् ॥३३६॥

यह लूच दक्षिणा आदि अल्पसंख्यक शब्दों से लघु प्राप्त है, उसका वाचक है।

दक्षिणा आदि तीन अल्पसंख्यक शब्दों से त्रैविक शब्दों में लघु प्रत्यय होते हैं। जैसे- दक्षिणात्यः; वायव्यात्यः; पौरवत्यः ॥३३६॥

सुप्रानवागुदधप्रतीचो यत् ॥३३७॥

—अ० ४।२।१००॥

दिक् प्राच् अथान् उदन् और अस्तन् प्रातिपदिकों से लेश शब्दों में यत् प्रत्यय हुआ। जैसे- दिवि चो दिव्यः; प्राग्मर्ष प्राग्म्यम्; अनाग्यम्; उदीच्यम्; प्रतीच्यम्।

यह लूच शब्द प्रत्यय का प्रत्यय है। और यहाँ प्राच् आदि अल्पसंख्यक शब्दों का ग्रहण नहीं है, किन्तु त्रैविकों का है। और जहाँ इनका अल्पसंख्यक से ग्रहण होता है, वहाँ आनामो लूच से टच् और टचल् प्रत्यय होता है। जैसे- वाक्तनम्; प्रत्यक्तनम् इत्यादि ॥३३७॥

अव्ययात्यत् ॥३३८॥ —अ० ४।२।१०१॥

अव्यय प्रातिपदिकों से लेश शब्दों में लघु प्रत्यय होते हैं। यह भी लूच शब्द आदि अल्पसंख्यक शब्दों का प्रत्यय है।

यहाँ महाभाष्यकार ने परिमाणन किया है कि प्रत्यय इह नव तथा तमिष् और यल् प्रत्ययान्त होने ही अव्ययों से लघु होते हैं। जैसे- समस्तः; दक्ष्यः, नक्ष्यः; तत्तस्तः; तत्तस्तः; तत्तस्तः; अक्षयः; कुक्षयः इत्यादि।

यहाँ परिमाणन का प्रयोग यह है कि-धीवरिष्टः, बीरस्तः; पारस्तः इत्यादि प्रयोगों में लघु न होते ॥३३८॥

वा०—त्यन्नेष्टुं च ॥३३६॥

निष्कम्प्य प्रातिपदिक से ष्टुव अर्थ में त्यप् प्रत्यय होवे । जैसे—निरन्तरं भवं निर्वर्णं ब्रह्म ॥३३५॥

वा०—निर्मो गते ॥३४०॥

निम् शब्द से गत अर्थ में त्यप् प्रत्यय होवे । जैसे—
निर्गतो निष्कम्पः ॥३४०॥

वा०—अरभ्यारभ्यः ॥३४१॥

अरभ्य शब्द से शेष अर्थों में ण प्रत्यय होवे । जैसे—
अरभ्ये भवत आरभ्याः सुमनसः ॥३४१॥

वा०—दूरादेशः ॥३४२॥

दूर प्रातिपदिक से शेष अर्थों में श्च प्रत्यय हो । जैसे—
दूरे लब्धो दूरेत्यः ॥३४२॥

वा०—उत्तरावाहम् ॥३४३॥

उत्तर प्रातिपदिक से शेष अर्थों में आहम् प्रत्यय हो । जैसे—
उत्तरे जाल द्यौत्तराहः ॥३४३॥

वा०—अभ्ययात्यप्याविष्टयस्मोपसंख्यानं द्धमिति ॥३४४॥

आविष् अभ्यय प्रातिपदिक से शेष अर्थों में वेदविषय में त्यप् प्रत्यय हो । जैसे—आविष्टयो वर्धते पादराशु ॥३४४॥

बुद्धिर्मेत्यात्रामाविस्तव्बुद्धम् ॥३४५॥

जिन समुदाय के शब्दों के बीच में आदि अन् वृद्धिसंज्ञक हो, यथात् आकार ऐकार और ओकार होने, तो वह समुदाय वृद्धिसंज्ञक होते ॥३४३॥

बुद्धाच्छः ॥३४६॥ अ० ४ । २ । ११४ ॥

यह शब्द अन् का वाचक है। जिन शब्दों में वृद्धिसंज्ञक प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त अन् आदि प्रत्यय हों। जैसे—आसीयः; मासीयः; औपकवीयः; कापटवीयः इत्यादि।

(अन्वयारण्यः; गीरकम्पोत्तरपदा०; उदीच्यमानाच्य०; प्रस्थोत्तरपदा०) जहाँ इन सूत्रों से ये प्रत्यय और वृद्धिसंज्ञक से छ प्रत्यय दोनों की प्राप्ति है, वहाँ परविप्रतिषेध मान के छ प्रत्यय ही होता है।

जैसे—आरात् अन्वय शब्द है, उससे छ हुआ तो—आरासीयः। आरासीय शब्द से अर्च् और र्व्य भी पाठे हैं, फिर छ ही होता है। जैसे—आपरासीरीयः। इसी प्रकार कम्पोत्तरपद माणिक्य वृद्ध प्रातिपदिक से परत्वं से छ प्राप्त है, उसका भी एकवाद यकारोप्य होने से (अन्वयोपधा०) इससे वृम् होता है। जैसे—माणिक्यकः। आद्यकर्म उदीच्यमान अन्तोदात्त प्रातिपदिक से छ प्रत्यय परत्वं से होता है। जैसे—आद्यकर्मवीयः। औलूक कोपञ्च वृद्ध प्रातिपदिक से परविप्रतिषेध करके छ होता है। जैसे—औलूकीयम् ॥३४६॥

अब इसके जाने वृद्धसंज्ञा में जो विविध शालिक सूत्र हैं, सो लिखते हैं—

वा०—वा नामधेयस्य बहुसंज्ञा वक्तव्या ॥३४७॥

जो किसी बहुवच्य आदि के नाम है, उसकी विकल्प करके बहुसंज्ञा होती है। जैसे—देवदत्तीमाः, देवदत्ताः, वज्रदत्तीमाः, वाज्रदत्ताः इत्यादि ॥३४७॥

वा०—गोत्रोत्तरपदस्य च ॥३४८॥

गोत्रप्रत्ययान्त प्रातिपदिक जिनके उत्तरपद में हों, उनकी बहुसंज्ञा होती है। जैसे—पुत्रप्रधानो रीडिः पुत्ररीडिः, तस्य छायाः पुत्ररीडीयाः, धीमनप्रधानः पानिनिरीधनपानिनिमलस्य छाया धीमनपानिनीयाः, वृद्धान्धीयाः, वृद्धकान्धीयाः इत्यादि ॥३४८॥

वा०—जिह्वाकात्यहरितकात्यवर्जम् ॥३४९॥

जिह्वाकात्य और हरितकात्य शब्दों की बहुसंज्ञा न होती है। गोत्र उत्तरपद होने से पूर्ववर्तिका से प्राप्त है, उसका निषेध है। जैसे—जिह्वाकाताः, हरितकाताः ॥३४९॥

त्यदादीनि च ॥३५०॥ —स० १।१।७४७

और त्यद् आदि प्रातिपदिक भी बहुसंज्ञक होते हैं। जैसे—त्यदीयम्, यदीयम्, तदीयम्, एतदीयम्, इददीयम्, अददीयम्, त्यदीयम्, यदीयम्, त्यादायनिः, मादायनिः इत्यादि।

यहाँ सर्वत्र बहुसंज्ञा के होने से छ प्रत्यय हो जाता है ॥३५०॥

भवत्प्रत्ययस्य ॥३५१॥ —स० ४।२।११३॥

जब यहाँ में बहुसंज्ञक भवत् प्रातिपदिक से ठक् और छक् प्रत्यय हों। जैसे—भवत् इदं भावत्कम्, छक् प्रत्यय में मित्करण पदसंज्ञा के लिये है—भवदीयम्।

इस भवत् खन्द की स्वदायिकों से बुद्धसंज्ञा होने से प्रत्यय प्राप्त है, उनका यह वाचक है ॥३५१॥

दीपधेतोः प्राज्ञात् ॥३५२॥ —सं० ४।२।१२३॥

नेत्र धर्मों में प्राग्देववाची रेफोपस्य और ईकारान्त प्रातिपदिकों से बुद्ध् प्रत्यय हो । जैसे—वाटलिपुत्रकाः, ऐकचक्रकाः । ईकारान्त—काकन्दी—काकन्दकाः; वाकन्दी—वाकन्दकाः ।

यहाँ 'प्राची' बहुत इसलिये है कि—वातामित्रीयः; यहाँ बुद्ध् प्रत्यय न हो ॥३५२॥

अबुद्धावपि बहुवचनविषयात् ॥३५३॥

—सं० ४।२।१२४॥

नेत्र धर्मों में बहुवचनविषयक बुद्धसंज्ञारहित जो अवपदवाची और अनपद के अवशिष्टवाची प्रातिपदिकों से बुद्ध् प्रत्यय हो ।

[जैसे—] अबुद्ध अनपद से—अज्ञाः, अज्ञाः, कलिज्ञाः—भाङ्गकः; वाङ्गकः; कलिङ्गकः । अबुद्ध अनपदावधि—अनवीडाः; अनकन्दाः—आजमीडरः, आजकन्दकः । बुद्ध अनपद—दार्वाः, आम्बाः—दार्बकः; आम्बकः । बुद्ध अनपदावधि—कालिञ्जराः, वैकुलिशाः—कालिञ्जरकः; वैकुलिशकः ॥३५३॥

नगरात्कुरस्यनप्रावीण्ययोः ॥३५४॥

—सं० ४।२।१२५॥

कुरस्य और प्रावीण्य धर्मत् निम्ना और प्रजसाक्य नेत्र धर्मों में नगर प्रातिपदिक से बुद्ध् प्रत्यय हो । [जैसे—] नागरकश्चौरः; नागरकः प्रवीणः ।

'कुरस्य और प्रवीणता' प्रत्यय इसलिये है कि—नागरा बाह्याणां, यहाँ बुद्ध् न हो ॥३५४॥

मद्वृज्वयोः कन् ॥३५५॥ —अ० ४।३।१११॥

लेख सभों में मद और वृजि प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय ही ।
[जैसे—] मद्वृज् जातः मदकः, वृजिकः ।

यहां बहुवचनविषयक सबुद्ध जनपद शब्दों से वृज् जाया है,
उस का यह अववाद है ॥३५५॥

[॥ इति द्वितीयः पादः ॥]

[अथ तृतीयः पादः—]

पुष्पदस्मदीरन्वतरस्यां खञ्ज ॥३५६॥

—अ० ४।३।११२॥

लेख सभों में पुष्पद् और दस्मद् प्रातिपदिकों से खञ्ज और
बकार से ख प्रत्यय हो, और अन्वतरस्यां ग्रहण से क्त में
यथाप्राप्त प्रत्यय होंगे । जैसे—पुष्पाकर्मणोष्माकीनः; दस्माकीनः;
पुष्मदीयः, दस्मदीयः; योष्माकः; दस्माकः ॥३५६॥

तस्मिन्निति च पुष्पाकास्माकी ॥३५७॥

—अ० ४।३।११३॥

लेख सभों में तस्मिन् नाम खञ्ज और यञ् प्रत्यय परे ही,
तो पुष्पद् और दस्मद् शब्द के स्थान में यथासंभ्य करके पुष्माक
और दस्माक आदेश हों । जैसे—योष्माकीनः; दस्माकीनः;
योष्माकः; दस्माकः ।

यहां 'खञ्ज और यञ् प्रत्यय के परे' इसलिये कहा है कि—
पुष्मदीयः; दस्मदीयः, यहाँ ख के परे आदेश न हों ॥३५७॥

तत्त्वकममकायेकवचने ॥३५॥ — अ० ४ । ३ । ४०

जो एकवचन अवधि एक अवधि की वाचक विभक्ति तथा अन्तर्गत शब्द प्रत्यय परे हों, तो सुप्त्वं और अस्मद् शब्द की तत्त्वक और ममक आदेश हों । जैसे— तावकीनः; मामकीनः; तावकः; मामकः ॥३५॥

कात्तादुम् ॥३५॥ — अ० ४ । ३ । ४१

जैय शर्तों में कात्तादिपदाची प्रातिपदिकों से ठग् प्रत्यय होते । जैसे—मासिकः; आर्द्धमासिकः; तावत्कारिकः इत्यादि ॥३५॥

आर्द्ध शरत् ॥३६॥ — अ० ४ । ३ । ४२

जो जैय शर्तों में आर्द्ध अभिधेय रहे, तो शरद् प्रातिपदिक से ठग् आदेश हो । जैसे—शरदि अर्थ शरदिकम्, जो आर्द्ध हो । नहीं तो शरदम्, ऋतुवाची के होने से अन्तर्गत हो जाता है । और यह सूत्र भी अन्तर्गत का हो अववाद है ॥३६॥

सन्धिबेलाद्यनुनक्षत्रेभ्योऽम् ॥३६॥

— अ० ४ । ३ । ४३

जैय शर्तों में सन्धिबेला आदि गण, ऋतु और नक्षत्रवाची प्रातिपदिकों से अन्तर्गत हो । जैसे—सन्धिबेलाया अर्थ सन्धिबेलम्, सन्ध्यम् । ऋतु—रौद्रम्; शीतम् । नक्षत्र—तेजम्; पीषम् ।

यह सूत्र सामान्यकालवाची से ठग् प्राप्त है, उसका अववाद है ॥३६॥

सायं चिरं प्राह्णे प्रयेऽप्यवेन्मष्टयु टयु ली तुद् च' ॥३६२॥

—सं० ४। १। २३॥

केप यहाँ में सायं चिरं प्राह्णे प्रये और अप्यवे प्रातिपदिकों से टयु और टयुल् प्रत्यय और प्रत्यय को तुद् का आगम भी हो ।

दिन का जो अन्त है, उक्त अर्थ में सायं सम्य है । जैसे—सायि भवं सामन्तनम्; चिरन्तनम्; प्राह्णन्तनम्; प्रयेन्तनम्; दोषान्तनम्; दिवातनम्; दद्यान्तनम्; अद्यतनम् ॥३६२॥

वा०—चिरपक्षपरारिभ्यस्तलः' ॥३६३॥

चिर पक्ष् और परारि इन तीन छन्दस्य प्रातिपदिकों से ल प्रत्यय होवे । जैसे—चिरन्तम्; पक्षन्तम्; परारित्वम् ॥३६३॥

वा०—प्रगस्य छन्दसि गलोपयच ॥३६४॥

प्रग प्रातिपदिक से केद में ल प्रत्यय और तकार का आगम हो । जैसे—प्रगे भव प्रतनम् ॥३६४॥

वा०—अप्रादिपयचाट्टिमच् ॥३६५॥

अप्रादि और पश्चात् इन प्रातिपदिकों से चिमच् अगम हो । शिष्टप्रकरण वहाँ टिप्पणी होने के लिये है ।

१. यहाँ सायं तथा चिर में सायं समन्तन्त, और चिर में चिरन्तन्त के लकारान्त विधान के लिये है । और जो के अगम उक्त अगमों के लिये होइता पाठ गुण में आये होवे, अतीति अगम के अगम में हो ही जाता ॥

२. यहाँ पूर्वसूत्र से टयु, टयुल् अगम उक्त है । अगम अगम के प्रातिपद अगमों के लिये है ॥

जैसे—सर्वे जातोऽपि नः॥ आसी जात आदिनः॥ पश्चात् जातः पवित्रमः ॥३६३॥

वा०—अन्तःस्थ ॥३६४॥

अन्त शब्द से भी दिव्य प्रत्यय हो ।

जैसे—अन्ते भवोऽन्तिमः ॥३६५॥

तत्र जातः ॥३६६॥ —अ० ४ । ३ । १२ ॥

य आदि प्रत्यय जो सामान्य शेष शब्दों में विधान कर चुके हैं, उनके जात आदि पद दिखाये जाते हैं । और तत्र इत्यादि समर्थविभक्ति जाननी चाहिये ।

शब्दों में प्रथम सप्तमीसमर्थ आतिथिकों से जो जो प्रत्यय विधान कर चुके हैं, सो सो जात आदि शब्दों में होते हैं । जैसे—
स्वप्ने जातः शीघ्रः॥ माधुरः॥ शीलाः॥ शीघ्रपानः॥ राश्ट्रियः॥
सकारपात्रीयः॥ शाकनिकः॥ शम्भः॥ पामीयः॥ कार्पेयकः॥
श्रीभैरवः इत्यादि ॥३६७॥

अविष्टाकलमुन्यनुराधास्वातिलिष्यपुनर्वसुहस्तविशाखा-
ऽऽवाहाबहुलाहस्तुक् ॥३६८॥ —अ० ४ । ३ । १२ ॥

जात आदि शब्दों में अविष्टा आदि नक्षत्रवाची शब्दों से विहित लङितप्रत्ययों का मुक् हो । [जैसे—] अविष्टाशो जातः अविष्टः फल्गुनः॥ अनुराधः॥ स्वातिः॥ लिष्यः॥ पुनर्वसुः॥ हस्तः॥ विशाखः॥ आषाढः॥ बहुल^१ ॥३६९॥

१. यहाँ अविष्टा आदि शब्दों से लङित प्रत्यय का मुक् होने के पश्चात् (मुक् लङितप्रत्यय १ । २ । ४५) इस सूत्र से स्त्रीसमर्थक का भी मुक् हो जाता है । फिर जो ये शब्द स्त्रीनिष्ठ ही जो गत् होना ।
जैसे—अविष्टा ॥

**वा०—लुप्तप्रकरणे विचारयेवतोरोहिणीम्बः स्थिवाधुप-
संश्रयानम् ॥ ३६९ ॥**

जात वर्ष की समिधेव ही, जो विचार येवतो और रोहिणी
सम्बों से निर्दिष्ट प्रत्यय का सुक्त होवे । जैसे—विचारया जाता
कन्या विचारः रेवती; रोहिणी^१ ॥३६९॥

वा०—कलमुन्वयादाभ्यां टानी ॥३७०॥

पूर्व वार्तिक से रवीन्द्र की अनुवृत्ति आती है ।

कलमुनी और अथादा मल्लभाभी सम्बों से ट और ण्
प्रत्यय यथार्थत्व करके हों । जैसे—कलमुन्वा जाता कन्या कलमुनी;
अथादा^२ ॥३७०॥

वा०—अविष्ठायादाभ्यां छप् ॥३७१॥

अविष्ठा और अथादा प्रातिपदिकों से छप् प्रत्यय हो । जैसे—
अविष्ठाया जाता; अविष्ठीया; अथादायाः ॥३७१॥

स्थानान्तर्गोष्ठान्तरादाभ्याम् ॥३७२॥

—य० ४३३३२॥

जात वर्ष में स्थानान्तर्गोष्ठान और अरथादा प्रातिपदिकों से
विहित जो लहित प्रत्यय उत्पन्न सुक्त हो । जैसे—गोस्थाने जाती
गोस्थानः; हस्तिस्थानः; अश्वस्थानः इत्यादि; गोष्ठानः; अरथादाः ।

१. यहाँ भी पूर्व के कथन सर्वप्रत्यय का सुक्त होने विचार लम्ब के
टान् और रेवती तथा रोहिणी सम्ब का वीरादिभ्य में पाठ होने के
हीन् प्रत्यय हो जाता है ॥

२. यहाँ भी सर्वप्रत्यय का सुक्त पूर्ववत् होने ट प्रत्यय के लिप् होने
के कलमुनी सम्ब के हीन् और अथादा जात के टान् होता है ॥

यहां अङ्गितलुक् होने के पश्चात् धाता क्त के स्वीकरण का लुक् होता है ॥३७२॥

वत्सशालाभिजिह्वबभूवस्तभिषजो वा' ॥३७३॥

ध० ४।३।३६॥

जान प्रथ में वत्सशाला आदि प्रातिपदिकों से परे जो प्रत्यय, उसका लुक् विकल्प करके होवे । जैसे—वत्सशालायां जातः वत्सशालः; वासशालः; अभिजित्, आभिजितः; बभूवुक्, आबभूवुक्; क्तभिषज्, क्तभिषजः ॥३७३॥

नक्षत्रैभ्यो बहुलम् ॥३७४॥ —ध० ४।६।३७॥

सन्ध नक्षत्रवाची प्रातिपदिकों से जो प्रत्यय हो, उसका बहुल करके लुक् होवे । जैसे—रोहिणः, रोहिणः; मृगशिराः, मार्गशीर्षः ।

बहुलपठन से कही लुक् नहीं भी होता । जैसे—वीरः, वीरः इत्यादि ॥३७४॥

कृतलब्धकीतकुशलः ॥३७५॥ —ध० ४।६।३८॥

कृत आदि धर्तों से नव प्रातिपदिकों से पञ्चाभिहित प्रत्यय हों । जैसे—कृत्ये कृतो लब्धः कीतो वा कुशलः खीप्नः; माधुरः; राष्ट्रिय इत्यादि ॥३७५॥

१. इत् लुक् से प्राथम्यात्प्रविभागा है, क्योंकि कलत्रवाक्य शब्द से किसी लुक् करने लुक् नहीं पान्त, और अभिजित् आदि नक्षत्रवाचीको से बहुल करके प्रत्यय है उसका विकल्प किया है ॥

प्रायश्चित्तः ॥३७६॥ —अ० ४।३।३९॥

बहुधा होने अर्थ में सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—सूय्ये प्रायेण भवः शौचः; मायूरः; राधियः इत्यादि ॥३७६॥

सम्भवति ॥३७७॥ —अ० ४।३।४०॥

सम्भव अर्थ में सप्तमीसमर्थ अथापू प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—सूय्ये सम्भवति शौचः; मायूरः; राधियः; प्राम्यः; प्राचीनः; शालीयः; मालीयः; इत्यादि ॥३७७॥

कालात्साधुपुण्यत्वव्यमानेषु ॥३७८॥

—अ० ४।३।४१॥

साधु पुण्यत् पीर वन्दमान अर्थों में कालविशेषवाची प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—हेमन्ते साधुः हेमन्त वस्त्रम्; लेखारमनुलेपनम्; वसन्ते पुण्यवन्ति वासनन्त कुन्दलताः; प्रैम्यः वाटलाः; शरदि वष्यन्ते शारदाः शालवः; प्रैम्या यदाः इत्यादि ॥३७८॥

उप्ये च ॥३७९॥ —अ० ४।३।४२॥

उप्ये कहते हैं खोले को, इस अर्थ में सप्तमीसमर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—हेमन्ते उप्यन्ते हेमन्ता इक्षवः; शीत्ये उप्यन्ते प्रैम्याः शालवः; शारदा यदाः इत्यादि ॥३७९॥

१. प्रायश्चित्त उप्ये कहते हैं कि जिसके होने का नियम व हो, बहुधा होता होने ॥

आश्विनपुत्र्या शुक्ल ॥३८१॥ — अ० ४ । ३ । ४४ ॥

उपलब्ध अथर्व में सप्तमीसमर्थ काश्वपुत्री प्रातिपदिक से शुक्ल प्रथम ही ।

आश्विनपुत्र्या अथर्व अश्विनी नक्षत्र का प्रथम है । उससे पुनः काल प्रथम में शुक्ल हुआ है । एतद्विज्ञा विधि का विशेषण है । [जैसे—] आश्विनपुत्र्यापुनः आश्विनपुत्र्या मनीः ॥३८०॥

देवमूर्त्ति ॥ ३८१॥ अ० ४ । ३ । ४५ ॥

अथर्व देवे अथर्व में सप्तमीसमर्थ काश्वपुत्री प्रातिपदिकों से कथाविहित प्रथम ही । जैसे— आश्वि देवमूर्त्ति प्राश्वयेभ्यम्; वैसाक्षि देवमूर्त्ति वैशाखम्; मासे देवमूर्त्ति मासिकम्; आर्द्धमासिकम्; सावत्सरिकम् इत्यादि ।

यहां 'मूर्त्ति' कहल इसलिये है कि सुहृत् देव भोजनम्, महीं प्रथम न हो ॥३८१॥

व्याहुरति मृगः ॥३८२॥ अ० ४ । ३ । ४६ ॥

व्याहुरति क्रिया का मूल कर्ता वाच्य रहे, तो सप्तमीसमर्थ काश्वपुत्री प्रातिपदिकों से निम्न द्वित से जो जो क्रमक विज्ञान क्रिया हो वही वही होवे । जैसे— निशाया व्याहुरति मृगः नैशिकः, नैशः; प्रादोषिकः, प्रादोषः^१ सावन्तः इत्यादि ॥३८२॥

१. यहां (निशाप्रदोषाभ्यां च ॥ अ० ४।३।४८) इन पूर्वनिर्दिष्ट मूल से मृग, इत्यादि विकल्प में होता है ।

तदस्य सोढम् ॥३८३॥ — अ० ४ । ३ । ३७ ॥

बगरी के कार्य में सोढ सञ्चालाधिकारण अवसासमर्थ कासबाची प्रातिपदिकों से मन्वाविहित प्रत्यय हों । जैसे—निशाऽऽवयवम् सोढमस्य छात्रस्य वैद्यः, नैषिकः; प्राचीनः, प्राचीनिकः; हेमन्त-सङ्घटितं शीतं सोढमस्य हेमन्तः इत्यादि ॥ ३८३ ॥

तत्र भवः ॥३८४॥ — अ० ४ । ३ । ३८ ॥

यहां पूर्वपूव से ही तत्र ग्रहण की अनुवृत्ति अभी जाती, फिर तत्र ग्रहण करने का प्रयोजन यह है कि कालाधिकार की निवृत्ति हो जावे ।

तत्र अर्थात् वहाँ हुआ होता वा होना, इस कार्य में सप्तमी-समर्थ प्रातिपदिकों से मन्वाविहित प्रत्यय हों । जैसे—युरने भवः स्त्रीपुनः; पालकाली भवः पालकालः; शीलाः; ईश्वः; आश्रित्यः; पृथिव्या भवः पृथिव्यः; वायव्यस्थः; स्वयः; श्रीकः; मासुरः; राक्षस्यः इत्यादि ॥ ३८४ ॥

दिगादिभ्यो यत् ॥३८५॥ — अ० ४ । ३ । ३९ ॥

अर्थात् में सप्तमीसमर्थ दिग् यादि प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय हो । [जैसे—] दिशि भवः दिश्यम्; याम्यम्; दृश्यम् इत्यादि । यह पूव अम् का आशय है ॥ ३८५ ॥

शरीरावयववाचक ॥३८६॥ — अ० ४ । ३ । ४० ॥

शरीर के अवयव इन्द्रिय यादि प्रातिपदिकों से अर्थात् में यत् प्रत्यय हो । जैसे—शालुनि भवः शालव्यम्; दन्तव्यम्; श्रोत्रव्यम्;

१. उन शब्द में अक्षरशरीरादि की जाती है । क्योंकि काष्ठ का बहना क्या है, उन काल में जो विशेष करते हैं उसका शब्दवा टीक है, जैसे हेमन्त ऋतु में शीत विशेष की वजह से यह हेमन्त ऋतुधि ॥

हृद्यम्; नाभ्यम्; नक्षत्रम्; नाभिनयम्; पादभ्यम्; उपरभ्यम्
इत्यादि ॥ ३८६ ॥

अभ्यधीभावस्तत् ॥३८७॥ —अ० ४।१।२९॥

सामान्यभवे अभ्यधीभावस्तत् प्रातिपदिकों से भवार्थ के
उप प्रत्यय होते ॥ ३८७ ॥

का०—अप्यप्रकरणे परिमुखादिभ्य उपसंख्यानम् ॥३८८॥

सूत्र में जो अभ्यधीभाव प्रातिपदिकों का ग्रहण है, उसका
नियम इस प्रातिपद से दिया है कि परिमुखादि अभ्यधीभाव
प्रातिपदिकों से ही उप प्रत्यय होते । जैसे—परिमुखं अर्थ
परिमुखात्; पदार्थोष्ठम्—पारिहृयम् ।

यहाँ 'परिमुखादि का परिसंखन' इसलिये है कि—उत्कूल
भव औपकूलः; औपमानः, वहाँ उप प्रत्यय न होते ॥ ३८८ ॥

अन्तःपूर्ववशाद् ॥३८९॥ —अ० ४।३।१०॥

पूर्ववर्तिक से परिमुखादि का नियम होने के शब्द प्राप्त है,
उक्तका बाधक यह सूत्र है ।

अन्तर् शब्द जिनके पूर्व ही ऐसे अभ्यधीभाव प्रातिपदिकों से
ठक् प्रत्यय हो भव शब्द में । जैसे—अन्तर्वैश्वान भवमान्त-
वैश्विकम्; अन्तःसधिकम्; अन्तर्वैश्विकम् इत्यादि ॥३८९॥

का०—समानस्य लडादेश्य अन्तर्भावानि चोच्यते ।

ऊर्ध्वं समाचन वेहाचन लोकोत्तरवदस्य च ॥३९०॥

समान शब्द से और समान शब्द जिनके प्राति में ही उन
प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होते । जैसे—समाने भवः सामानिकः ।
लडादि में—सामानवामिकः; सामानदेशिकः ।

तथा अन्त्यात्मनि प्रातिपदिकों से भी ठग्न उत्पन्न होना चाहिये । जैसे—सम्पत्त्वनि भवमाकाशमिदम्; आधिदैविकम्; आधिभौतिकम् ।

नकारान्त ऊर्ध्वम् शब्द जिनके पूर्व ही, ऐसे वन और देश प्रातिपदिकों से ठग्न उत्पन्न हो । जैसे—ऊर्ध्वं दमे भवमौर्ध्व-दमिकम्; और्ध्वदैहिकम् ।

और लोक शब्द जिन के उत्तरपद में हो, उन प्रातिपदिकों से भी ठग्न उत्पन्न हो । जैसे—इह लोके भवमैहलौकिकम्; पारलौकिकम् ।

अग्निदेव अग्निभूत, इन्द्रलोक और परलोक से बार शब्द मनुष्यत्वादिक गण में पड़े हैं, इससे उभयपदवृद्धि होती है

॥ १९० ॥

का०—मुखपार्ष्वतलोदीयः कुलजनस्य परस्य च ।

ईयः कार्यार्थस्य मध्यस्य मन्त्रोद्यो प्रत्ययो तथा

॥ १९१ ॥

तसि प्रत्ययान्त मुख और पार्ष्व प्रातिपदिकों से ईय प्रत्यय होने । छ के स्थान में ईय आदेश हो जाता, फिर ईय बाद पूर्व होने के लिये बढ़ा है । जैसे—मुखतो भवं मुखतोयम्; पार्ष्वतोयम्^१ ।

जन और पर प्रातिपदिकों से ईय प्रत्यय और प्रातिपदिकों को कुल् का प्रागम भी होने । जैसे—जने भवो जनकीयः; परकीयः ।

१. यहाँ मर्त्यता के होने से उत्पन्न अन्त्य के स्थान का सीधे दुपा है ॥

मध्य प्रातिपदिक से ईय धन्वी और मीन प्रत्यय होंगे । जैसे—
मध्य धन्वी मध्यमीन, माध्यमः, माध्यमीनः^१ ॥ ३९१ ॥

का०—मध्यो मध्यं दिनम् चात्मादृश्यान्तो लुगजिनात्तथा ।

बाह्यो दैव्यः पाञ्चजन्योऽथ गम्भीराञ्जय इव्यते

॥ ३९२ ॥

मध्य शब्द को “मध्यम्” ऐसा मकारान्त आदेश और उससे
दिनम् प्रत्यय हो । जैसे—माध्यन्दिन उत्थावति ।

स्वामन् और अजिन शब्द जिनके अन्त में हों, उन
प्रातिपदिकों से विहित प्रत्यय का लुक् हो । जैसे—सम्प्रत्यमनि
भवोऽभ्युत्थाना । इस शब्द में गृधोदरादि से सकार को तकार हो
जाता है । अजिनात् से—कृष्णाजिनं भवःकृष्णाजिनः; उष्ट्राजिनः;
सिंहाजिनः; व्याघ्राजिनः इत्यादि ।

जैसे—गम्भीर शब्द से ज्य प्रत्यय होता है, वैसे बाह्य, दैव्य
और पाञ्चजन्य इन तीन शब्दों में भी ज्य जानो । बहिष् कण्ड
के लिङ्गात् का लोप हो जाता है ॥ ३९२ ॥

जिह्वामूलाङ्गुलीरक्षः ॥ ३९३ ॥ —च. ४. ३. ९२ ॥

यह चरीरावयव से क्त प्राप्त है, उसका वाचक है ।

अथर्व में जिह्वामूल और अङ्गुलि प्रातिपदिकों के छ प्रत्यय
हो । जैसे—जिह्वामूले भव जिह्वामूलीयं स्वामन्, अङ्गुलीयः
॥ ३९३ ॥

१. महाभारत में तुलसी कव्य लम्ब के स्थान में मध्यम आदेश और
छ प्रत्यय होने की मध्यमीय शब्द आता है, इसके अर्थवेद जानो मध्य-
मेर को नहीं है ॥

वर्णान्ताच्च ॥३६॥ —य० ४ । ३ । ६३ ॥

अर्थात् में वर्णित प्रातिपदिकों से छ् प्रत्यय ही । [जैसे —]
कचर्णे भवो वर्णः कचर्णीयः; कचर्णीयः; कचर्णीयः इत्यादि ॥३६॥

तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः ॥३६॥

—य० ४ । ३ । ६६ ॥

पक्षी और सप्तमीसमर्थ व्याख्यातव्यनामवाची प्रातिपदिकों से पञ्चविहित प्रत्यय हों । जैसे— लिङ्गे व्याख्यानो ग्रन्थस्तोः; सुभो व्याख्यानो ग्रन्थः सीधः; स्वेयः; लाङ्कितः; सुष्णु भव सीधम्; लङ्कम्; कालम् ।

यहाँ 'व्याख्यातव्यनाम' कह्य इसलिये है कि—वाटलिपुत्रस्य व्याख्यातम्, यहाँ प्रत्यय न होवे ॥ ३६॥

बहुव्रीह्यतोदात्ताद्बु ॥३६॥ —य० ४ । ३ । ७० ॥

व्याख्यान और भव अर्थ में पक्षी और सप्तमीसमर्थ बहुवृत्त बहुव्रीह्यतो प्रातिपदिकों से ठब् प्रत्यय ही । जैसे—वात्सव्यलिकः; सातानलिकम्; सातानलिकः ।

यहाँ 'बहुवृत्त' कह्य इसलिये है कि—सीधम्; लङ्कम् । और 'बहुव्रीह्यतो' इसलिये कहा है कि—लाङ्कितः । यहाँ संज्ञिता अन्त वनिसवर से आसुदात्त है, इसलिये ठब् न हुआ ॥ ३६॥

द्वयज्बुधाद्बुधर्षप्रथमाद्वरपुरश्चरमनामादयोलाङ्बु

॥३६॥ —य० ४ । ३ । ७१ ॥

भव और व्याख्यान अर्थों में द्वयज् बुधवर्णित आह्वय अन्त प्रथम अक्षर पुरश्चरम नाम और व्याख्यान में जो व्याख्यातव्यनाम प्रातिपदिक है, उनमें ठब् प्रत्यय ही ।

जैसे—वेदस्य व्याख्यानो ज्ञानी वैदिकः; दृष्टेर्ज्ञातवानः
दृष्टिकः; वायुकः । अन्—वायुहीतुकः; वायुनहोतुकः; वायुपिकः;
वायिकः; वायविकः; वायवरिकः; वायुनवरिकः ॥ ३९७ ॥

का०—नामावधानग्रहणं सकृद्यालविगृहीतार्थम् ॥ ३९८ ॥

इत मुख में नाम और व्याख्यान जल्दी का ग्रहण इसलिये है
कि जिससे समस्त शब्द में भी ठक् होजाये । जैसे—नामिकः;
व्याख्यानिकः; नामावधानिकः ॥ ३९८ ॥

सकृद्यालः ॥ ३९९ ॥ —अ० ४ । ३ । ७४ ॥

आगमन शर्ष में पञ्चमोत्तमर्ष इत्याम् प्रातिपदिकों से यक्षा-
विहित प्रत्यय हो । जैसे—अभ्यादागतः शोभ्यः; मायुरः; राश्ट्रियः;
इत्यादि ॥ ३९९ ॥

विद्यायोगिनिसम्बन्धोन्मो बुद् ॥ ४०० ॥

—अ० ४ । ३ । ७५ ॥

आगमन शर्ष में पञ्चमोत्तमर्ष विद्यासम्बन्ध और योगि-
निसम्बन्धवाची प्रातिपदिकों से बुद् प्रत्यय हो ।

जैसे विद्यासम्बन्ध—उपाध्यायादागतं धनवीपाध्यायकम्
वीप्यकम्, पाचार्यकम् । योगिसम्बन्ध—पैतामहकम्; मात-
महकम्; मातुलकम्; आशुरकम् इत्यादि ॥ ४०० ॥

आतमहम् ॥ ४०१ ॥ —अ० ४ । ३ । ७६ ॥

पंचमोत्तमर्ष आकारान्त विद्यासम्बन्ध और योगिसम्बन्ध-
वाची प्रातिपदिकों से आतम शर्ष में हम् प्रत्यय हो । जैसे—
विद्यासम्बन्ध—होतुरागतः पुरणी होतुकः; पैतृकम् । योगि-
सम्बन्ध—पौतृकम्; स्वामुकम्; नातृकम् ।

शुकारान्त बृद्ध प्रातिपदिकों से भी परबिप्रतिषेध मान के य प्रत्यय को बाध के ठक् हो होता है । जैसे—आस्तुरागतं आस्तुरकम् इत्यादि ॥ ४०१ ॥

पितृपुंसक ॥४०२॥ —य० ४ । ३ । ७९ ॥

मागत सर्व में पितृ प्रातिपदिक से यत् और ठक् प्रत्यय ही । जैसे—पितुरागतं पित्र्यम्, पितृकम् ॥ ४०२ ॥

गोवाङ्मूयत् ॥४०३॥ —य० ४ । ३ । १० ॥

गोत्रप्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से अङ्गुयत् यथात् जैसे—अङ्गु सर्व में औरगवाङ्माङ्गुः शीघ्रगवकः ; कायटगवकः ; नाशगवकः ; आरागवकः इत्यादि में बृद्ध प्रत्यय होता है, ऐसे ही शीघ्रगवैभ्य आगतम् शीघ्रगवकम्, कायटगवकम् ; नाशगवकम् ; आरागवकम् इत्यादि में भी बृद्ध होवे ॥ ४०३ ॥

हेतुमनुष्येभ्योऽप्यतरस्यां क्यः ॥४०४॥

—य० ४ । ३ । ८१ ॥

मागत सर्व में हेतु और मनुष्यवाची प्रातिपदिकों से विभक्त करके क्यः प्रत्यय ही । जैसे—गोभ्यो हेतुभ्य आगतं गोक्यम्, यक्ष में यक्ष्यम् ; समादागतं समक्यम्, मनीष्यम् ; विषमक्यम्, विषमनीष्यम् । मनुष्य—देवदत्तक्यम्, देवदत्तीयम्, देवदत्तम् ; मत्तदत्तक्यम्, दत्तदत्तीयम्, दत्तदत्तम् ॥ ४०४ ॥

मघट् क् ॥४०५॥ —य० ४ । ३ । ८२ ॥

आगत सर्व में हेतु और मनुष्यवाची प्रातिपदिकों से मघट् प्रत्यय ही । जैसे—समघयम् ; विषमयम्, देवदत्तमघम्, दत्तदत्तमयम् ।

टकार लोप् होने के लिये है—मममयी ॥ ४०३ ॥

प्रभवति ॥ ४०४ ॥ —अ० ४ । ३ । ८३ ॥

उसमें जो उत्पन्न होता है, इस अर्थ में पंचमीसमर्थ शब्दों से व्यापिहित प्रत्यय हों । जैसे—हिमवतः प्रभवति हैमवती गङ्गा; दारवी सिन्धुः ॥ ४०५ ॥

विदुराज्जयः ॥ ४०६ ॥ —अ० ४ । ३ । ८४ ॥

पूर्वोक्त अर्थ में विदुर प्रातिपदिक से ज्य प्रत्यय हो । जैसे—विदुरात्प्रभवति वैदूर्यो मणिः ॥ ४०७ ॥

का०—बालबायो विदुरं वा प्रकृत्यन्तरमेव वा ।

न वै लभेति चेद् ब्रूयाद्विज्ज्वरीवदुपाचरेत् ॥ ४०८ ॥

लोक में जिस मणि को वैदूर्य कहते हैं, वह बालबाय नामक पर्वत में उत्पन्न होता है । विदुर शब्द नगर घोर पर्वत दोनों का नाम है । परन्तु विदुर नगर में उस मणि का संस्कार किया जाता है । इसलिये वह विचार करना चाहिये कि विदुर शब्द से प्रभव अर्थ में प्रसन्न क्यों होता है ? वैदूर्यमणि तो बालबाय पर्वत में उत्पन्न होता है ।

इसका समाधान यह है कि—बालबाय शब्द के स्थान में विदुर आदेश जानी, यद्यपि बालबाय का व्यापिवाची विदुर शब्द भी है ।

भव सम्यक् यह रहा कि बालबाय पर्वत के सर्वाप्य रहनेवाले बालबाय को विदुर नहीं कहते, फिर पर्वतीयवाची क्यों कर हो सकता है ?

इसका समाधान यह है कि —जैसे—बाराणसी को बंद्य लोग 'जिहरी' कहते हैं। वैसे ही बंधाकरण लोग परम्परा के बालबाब को बिदूर कहते बने आये हैं ॥ ४०८ ॥

तद्वचनमिति वचिद्वतयोः ॥४०९॥ - अ० ४।३।५३ ॥

'उसकी जाता है' इस अर्थ में द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों के यथाविहित प्रत्यय हों। जो वचनमिति क्रिया के पन्था कीर दूत कर्ता बाध्य हों तो।

जैसे—सूच्यं वचनमिति सूच्यः पन्था दूतो वा; मायूरः; पाठशाला वचनमिति पन्था दूतो वा पाठशालीकः^१ इत्यादि ॥४०९॥

अभिनिष्कामति द्वारम् ॥४१०॥ - अ० ४।३।५४ ॥

जो अभिनिष्कामति क्रिया का द्वार कर्ता बाध्य रहे, तो द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों के यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—सूच्यमभिनिष्कामति द्वारं सूच्यम्; मायूरम्; राष्ट्रियम्; बाराणसीमभिनिष्कामति बाराणसेयम्; ऐन्द्रप्रस्थम्; लावपुरम् इत्यादि।

यहां द्वार ग्रहण इसलिये है कि मायूरमभिनिष्कामति पुष्पः, यहाँ प्रत्यय न हो ॥ ४१० ॥

अधिपुत्रस्य कुले घन्ये ॥४११॥ —अ० ४।३।५५ ॥

जिस विषय को लेके घन्य रचा आये, उस अर्थ में द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों के यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—सुधद्रामधि-

१. बाराणसी वचनमिति पन्था दूतो वा बाराणसेयः । बाराणसी बन्ध बा-
न्धन-विह्वल के पाठ होने से इस प्रत्यय हो जाता है ॥

कुल्य कुलो घन्यः शीघ्रः; नीरमिधः; वायलः; शरीरमधिकुल्य
कुलो घन्यः शरीरः; वर्णध्वजमधिकुल्य कुलो घन्यो वायोभ्रमः;
कारकमधिकुल्य कुलो घन्यः कारकीयः इत्यादि ॥ ४११ ॥

सोम्य निवासः ॥४१२॥ —अ० ४।३।२९ ॥

‘यह इसका निवासस्थान है,’ इस अर्थ में प्रथमासमर्थ कृत्वा
प्रातिपदिकों से यथानिहित प्रत्यय हों। जैसे—सुष्णो निवासोऽस्य
पुल्लस्य स शीघ्रः; वायुरः; रात्रियः; वाराणसी निवासोऽस्य
वाराणसेयः; ग्राम्यः; ग्रामीयः ॥ ४१२ ॥

अभिजनस्य^१ ॥४१३॥ —अ० ४।३।२० ॥

‘यह इसका जन्मस्थान है,’ इस अर्थ में प्रथमासमर्थ
प्रातिपदिकों से यथानिहित प्रत्यय हों। [जैसे—] सुष्णोऽभि-
जनीऽस्य शीघ्रः; वायुरः; रात्रियः; इन्द्रस्योऽभिजनीऽस्य
ऐन्द्रप्रस्यः; ग्राम्यः; ग्रामीयः ॥ ४१३ ॥

आयुष्यजीविभ्यश्चः पर्वते ॥४१४॥

—अ० ४।३।२१ ॥

आयुष्यजीवि अर्थात् शस्त्रास्त्रविद्या से जीवित करनेहारे
बान्धव रहें, तो प्रथमासमर्थ पर्वतवाची प्रातिपदिकों से अभिजन
अर्थ में छ प्रत्यय होंगे। जैसे—दूधवीरः पर्वतोऽभिजन एषां ते
दूधवीरौवा आयुष्यजीविनः; रैवतवीराः; बालवाजीवाः इत्यादि।

१. निवास और अभिजन में दृष्टांत केत है कि जहां वर्तमानकाल में रहते
हैं उसको निवास, और जहां निवा जाने बाद प्रादि कुटुम्ब के पुरुष रहें हो
उसको अभिजन कहते हैं ॥

यहां 'साधुधर्मीविषयों' का ब्रह्म इसलिये है कि—आद्योपः सर्वतोऽभिजनमेवामासीत्वा साक्षात्ताः । और 'पर्वत' ब्रह्म इसलिये है कि साक्षात्त्वमभिजनविषयं ते साक्षात्त्वका साधुधर्मीनिः, यहा ख प्रत्यय न होवे ॥ ४१४ ॥

भक्तिः ॥४१५॥ —अ० ४ । ३ । १५ ॥

भक्तिसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्राप्तिवदिकों से पक्षी के धर्म में यथाप्राप्त प्रत्यय हो । जैसे—शामी भक्तिरस्य धामेयकः; धाम्यः; शामीनः; राक्ष्म्यः; मायूरः इत्यादि ॥ ४१५ ॥

सचिन्तादवेशकालाट्टक् ॥४१६॥

—अ० ४ । ३ । १६ ॥

'बहु इसका वैयर्थ्य है', इस धर्म में प्रथमासमर्थ जो देश और काल की छोड़ के अनेकनयाची प्रातिपदिक है, उनसे ठक् प्रत्यय हो । जैसे—मयूना भक्तिरस्य धातूतिकः, धातुनिकः; धातुतिकः; साकतुकः ।

यहां 'घविल' ब्रह्म इसलिये है कि—द्वैतलः । 'घवेश' इसलिये है कि—घोष्णः । और 'अकाल' इसलिये है कि—द्वैतः, यहाँ भी ठक् न हो ॥ ४१६ ॥

जनपदिनां जनपदचरसर्व जनपदेन तत्त्वानाशब्दानां बहुवचने ॥४१७॥

—अ० ४ । ३ । १७ ॥

बहुवचन में जनपद नाम देशवाची शब्दों के मुख्य जो जगदि यथात् देश के स्वामी धर्मियवाची धर्म्य है, उनकी जनपदवत् नाम (जनपदवत्कथ्योत्पन्न) इस प्रकार में जो प्रत्यय विधान कर चुक है, वे ही अथवा भक्तिसमानाधिकरण उन

आविष्यान्ती शब्दों से यहाँ होय । जैसे—सङ्गा जनपदी भक्तिरस्य
त आङ्गकः; वाङ्गकः; शीङ्गकः इत्यादि ।

‘जनपदी’ शब्दों का ग्रहण इसलिये है कि—पञ्चाला
शाङ्गना भक्तिरस्य स पाञ्चालः, यहाँ चुम्बन हो । ‘सर्व’ शब्द
का ग्रहण इसलिये है कि—प्रकृति भी जनपद के समान हो जाये ।
जैसे—मद्राणां बुद्धीणां वा राजा माद्रः; वाङ्मयः; माद्रो भक्तिरस्य
स मद्रकः; बुजिकः । (मद्रबुद्धयोःकन) इससे कन् प्रत्यय प्रकृति को
ह्रस्व होने से होता है ॥ ४१७ ॥

तेन प्रोक्तम् ॥४१८॥ —अ० ४ । ३ । १०१ ॥

‘जसने जो कहा’ इस शब्द में तृतीयात्मक्यं आतिषदिकों से
कथाविहित प्रत्यय हों । जैसे—उत्तीव प्रोक्तमीत्यम्; दैत्यम्;
आदित्यम्; प्रजापतिना प्रोक्तं प्रजापत्यम्; विनया प्रोक्तं स्वीयम्;
पौरवम्; पाणिनिना प्रोक्तं व्याकरणं पाणिनीयम्; काश्यप्यस्यम्;
कामादम्; नीलमम् इत्यादि ॥ ४१८ ॥

पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु ॥४१९॥

—अ० ४ । ३ । १०२ ॥

प्रोक्त शब्द में जो आतीव शीघ्रों के कहे ब्राह्मण और कल्प
वाच्य हों, तो तृतीयात्मक्यं आतिषदिकों से निनि प्रत्यय हो ।

जैसे—पुराणव चिरन्तनेन मुनिना भस्मयेन प्रोक्ता भस्मयितः;
काश्यपायनितः; ऐश्वर्यविशः । कल्पों में—वैङ्गी कल्पः; ब्राह्मण-
पराशो कल्पः इत्यादि ॥ ४१९ ॥

या०—याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रत्ययेषः ॥४२०॥

याज्ञवल्क्य आदि शब्दों से विभिन्न प्रत्यय न होने, पुराणप्रसिद्ध होने से प्राप्त है । [जैसे—] याज्ञवल्क्येन प्रीक्षानि बाह्यणानि याज्ञवल्क्यानि; भीष्मभानि इत्यादि, यहाँ अण् प्रत्यय होता है ।

नामिकाकार जयादित्य आदि लोग इसको नहीं समझें । हमोंने ये यह निश्चय है कि याज्ञवल्क्यादि आह्वय पुराणप्रसिद्ध नहीं, किन्तु पीछे बने हैं । वे महाभाष्य के विरुद्ध होने से मिथ्या समझना चाहिए ॥ ४२० ॥

तेजकदिक् ॥४२१॥ —अ० ४।३।११२॥

एकदिक् नाम तुल्यदिक् अर्थ में तृतीयान्वय प्रतिपदिकों से स्याद्विहित प्रत्यय ही । जैसे—तुल्येकदिक् चार्धः; वाराणसा एकदिक् वाराणसेषो ग्रामः; सुदाम्नेकदिक् सीदामनी विष्णुः; हिमवत्कदिक् हिमवतो इत्यादि ॥४२१॥

तसिप्रत्य ॥४२२॥ —अ० ४।३।११३॥

एकदिक् अर्थ में तृतीयान्वय प्रतिपदिकों से तसि प्रत्यय भी ही ।

तसि प्रत्यय की सध्यसंज्ञा जाननी, स्वरादिरूप में पाठ होने से । [जैसे—] नामिकया एकदिक् नामिकतः; सुदामतः; हिमवतः; पीणुसुतः इत्यादि ॥४२२॥

उरतो यच्च ॥४२३॥ —अ० ४।३।११४॥

तेजकदिक् इन विषय के उरतु प्रतिपदिक से क्तुक्षीर प्रकार से तसि प्रत्यय भी ही । जैसे—उरता एकदिक् उरतः, उरस्तः

॥४२३॥

उपज्ञाते ॥४२४॥ —अ० ४।३।११२॥

उपज्ञात सर्व में नृनीषात्मसर्व प्रातिपदिकों से वधाविहित प्रत्यय ही । जैसे—वाचिनिर्वाणमार्तं वाचिनीयं व्याकरणम्; वानञ्जलं वीगशासम्; काञ्चकस्तम्; कुल्याचम्; वापञ्चलम् ।

जो अपने साथ जाना जाय उसको 'उपज्ञात' कहते हैं, अपना विद्यमान वस्तु को जानना चाहिए ॥४२४॥

कुले दम्बे ॥४२५॥ —अ० ४।३।११६॥

'जो किया जाये, जो दम्ब होवे जो', इस सर्व में नृनीषात्मसर्व प्रातिपदिकों से वधाविहित प्रत्यय ही । जैसे—वरक्षन्विता कृताः कारयताः उल्लोकाः; मानवी संघः; भार्गवी दम्बः ।

यहाँ 'दम्ब' कह्य इसलिये है कि—कुलात्मकता से, यहाँ प्रत्यय न ही ॥४२५॥

सस्येदम् ॥४२६॥ —अ० ४।३।१२०॥

'उसका यह है', इस सर्व में वधोत्तमसर्व प्रातिपदिकों से वधा-विहित प्रत्यय ही । जैसे—वनस्पतेर्यं वनो वानस्पत्यः; राजः कुमारी राजकीया, राजकीयो मृत्यः, यहाँ (राजः क य) इससे ककारादेश हो जाता है; उपशीरेदम् श्रीषगम्; कलत्रयम्; दाम्पत्यम्; यवास्वारीयम् देवस्यैवं देवम्, देवम्, इत्यादि ॥४२६॥

वा०—वहेस्तुरगिद् न ॥४२७॥

नृन् प्रत्ययान्त यह वास्तु में अण् प्रत्यय को इद् का आशय भी ही । जैसे—संवीहः स्वं सत्वहिणम् ॥४२७॥

दा०—आग्नीधः शरणं रज्ज् भ न ॥४२८॥

शरण नाम पर धर्म में, आग्नीध प्रातिपदिक से रज्ज् प्रत्यय
छोड़ प्रत्यय के चरे पूर्व की भ सञा भी जावनी चाहिये । जैसे—
आग्नीधः शरणम् आग्नीधम् ॥४२८॥

दा०—समिधामाधाने वेद्यम् ॥४२९॥

समिध् प्रातिपदिक से आधान पण्यो का धर्म होवे, तो वेद्यम्
प्रत्यय होवे । चित्करण छीप् प्रत्यय होने के लिये है । [जैसे—]
आमिधेन्दो मन्त्रः, आमिधेन्दो ऋक् ॥४२९॥

इन्द्राद् वृन् वीरमेवुनिकयोः ॥४३०॥

—अ० ४ । ३ । २२३ ॥

इन्द्र इन्द्र का परस्पर वीर छोड़ ओनिसम्बन्ध हो, उनके
बाची इन्द्रसमास किये प्रातिपदिकों से वृन् प्रत्यय हो स्वार्थ में ।
[जैसे—] वीरइन्द्र के अहिनकुनिका, वृद्ध प्रातिपदिकों से भी
परसव से वृन् होता है । जैसे—काकोल्लिका; आवराहिका ।
मेवुनिकइन्द्र से वीरकुनिका; अचिभरइन्द्रिका इत्यादि ।

यहा निगानुष्ठानन की रीति से नियम स्मोर्लिय होता है

॥४३०॥

दा०—वीरे देवानुरादिभ्यः प्रतिषेधः ॥४३१॥

वीर धर्म में देवानुर आदि प्रातिपदिकों से वृन् प्रत्यय न हो,
किन्तु णम् ही होवे जैसे—देवानुरम्; राक्षोऽनुरम् इत्यादि
॥४३१॥

गोत्रधरणाद् वृज् ॥४३२॥ —अ० ४ । ३ । २२४ ॥

गोत्रवाची छोड़ धरणाची प्रातिपदिकों से वृज् प्रत्यय होवे
॥४३२॥

वा०—चरणादुर्ध्वान्नामयोः ॥४३३॥

गोत्रवाचिणी से सामान्य बम्पटी के वर्ष में और चरणादुर्ध्वान्नामयो से छमे तथा सामान्य विशेष वर्षों में बुद्ध् प्रत्यय समर्थः । जैसे—
गोत्र से—अनुचक्रानेतिर्ध्वं ग्रीचक्रानम्; बुद्ध्प्रतिपत्तिर्ध्वं से भी चरन्त य बुद्ध् ही होता है । जैसे—गार्धकम्; वातकम् इत्यादि । चरणादुर्ध्वान्नामयो से—कठनां छमे सामान्यो वा कठकम्; मीढकम्; गण्डकम्; आलापकम् इत्यादि ।

संज्ञिकर होने से यन् वाचा है, उसका यह तात्पर्य है ।
॥४३३॥

सङ्घात्कुलक्षयेष्वन्यजिज्यामन् ॥४३४॥

—वा० ४ । ३ । १२५ ॥

पूर्व मुख ने बुद्ध् प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह अर्थवाच है :

सङ्घान्न वस्त्रान् और इष्टान्न बम्पटीसमर्थ गोत्रवाची प्रातिपदिकों से सम्बन्ध सामान्य वर्षों में यन् प्रत्यय होने । जैसे—विद्यानां सङ्घात्कुलक्षयेष्वन्यजिज्यामन् वा वीदः, वीर्धः । वस्त्रान् से—गर्वाणां सङ्घात्कुलक्षयेष्वन्यजिज्यामन् वा गार्धः, गार्धः । इष्टान्न से—दायाः, प्याशः ।
॥४३४॥

वा०—सङ्घात्कुलक्षयेष्वन्यजिज्यामन् ॥४३५॥

सङ्घ् वादि वर्षों ने जो इष्टान्न कहें हैं, वे गोत्र वर्षों में भी वही प्रातिपदिकों से होने । जैसे—गार्धो वीर्धः; वातको वीधः; दायाः प्याशो वा इत्यादि । ॥४३५॥

शाकलाह्वा ॥४३६॥ — अ० ४।३।१२०॥

इस सूत्र में प्राप्तिविभाषा इसलिये सम्बन्धना चाहिये कि शाकल शब्द वर्गादिशब्द में पड़ा है, उसके यत्नता होने से पूर्व सूत्र से निश्चय प्राप्त है, उसका विकल्प किया है।

वास्तोसमर्थ गोत्रवाचयान्त शाकल प्रातिपदिक से विकल्प करके अण् प्रत्यय होने, और पक्ष में शीववाची से बृश् सम्बन्धना चाहिए। [जैसे —] शाकलस्य सङ्घोऽङ्गो लक्षणं शीवी वेति शाकलः; शाकलकः।

इस सूत्र पर काशिका और सिद्धान्तकीमुनी रचने और पक्षों वाले लोग कहते हैं कि (शाकलाह्वा) ऐसा सूत्र होना चाहिए। वे लोग शाकल शब्द से प्रोक्त शब्द में अण् करके इस शाकल शब्द की चरमवाची मानते और संघादि शब्दों में निर्वचन करके प्रत्यय करते हैं, तो यह उन लोगों का कार्य मित्या है। क्योंकि जो (शाकलाह्वा) ऐसा सूत्र मानें तो शाकल प्रातिपदिक चरमवाची होगा, फिर उससे संघादि शब्दों में कैसे प्रत्यय होगा, यह कथन पुर्वनिर्दिष्ट विरुद्ध है। क्योंकि चरमवाचियों में शब्द और सामान्य शब्द में प्रत्यय कहे हैं। और महाभाष्य से भी विरुद्ध है। महाभाष्यकार वल्लभादि मुनि बहुत स्थलों में शाकल्य के सूत्र को शाकल्य लिखते हैं, फिर चरमवाची होगा तो लक्षण शब्द में शाकल्य शब्द से कहीं प्रत्यय हो गयेगा ॥४३६॥

वैयर्थिककारप्रसङ्गः ॥४३७॥ — अ० ४।३।१३१॥

यहां शीववाचियों से बृश् प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह व्यवहार है।

रैवतिकदि प्रातिपदिकों से सम्बन्ध सामान्य अर्थ में छ प्रत्यय होते । जैसे—रैवतिकाशामयं संघो घोषो वा रैवतियोगः रवाविमोषः, क्षेमबुद्धीयः इत्यादि ॥४३७॥

वा०—रीविकजलहासितपदादम् ॥४३८॥

यहाँ भी रीविकप्रत्ययवाची से वृत् प्राप्ति है, उसका माध्यम यह वार्तिक है ।

रीविकजल और हासितपद प्रातिपदिकों से सम्बन्ध सामान्य अर्थ में वृत् प्रत्यय होते । जैसे—रीविकजलप्रमथः रीविकजल.. हासितपदः ॥४३८॥

वा०—आयवैशिकस्येकलोपश्च ॥४३९॥

पूर्व वार्तिक से वृत् प्रत्यय की अनुवृत्ति यानी प्राप्ति है ।

आयवैशिक शब्द के अर्थ तथा आम्नाय अर्थ में वृत् प्रत्यय और उसके इस भाग का लोप होते । जैसे—आयवैशिकस्य अर्थ आम्नायो व आयवैशः ॥४३९॥

१. आयवैशिक शब्द वयम्वादि यम में पडा है, उसमें वृत्ति पर अर्थ में लप् होना है । आयवैशमयीने केद वा आयवैशिक । और वृत् परमवाची लब्ध होने से वृत् प्राप्ति प्राप्त है, उसका यह वार्तिक व्याख्य है । (रीविकजल०) और (आयवै०) के दोनों वार्तिक वार्तिका आदि पुस्तकों में सूत्र करने लिये और व्याख्यान भी मिले हैं । जो जो वे सूत्र छे होते जो व्याख्यान में वार्तिक वनी पडे जाते । और केन्द में भी लिखा है कि वृत्ति से वृत् आयवैशिक है । इससे निश्चय होता है कि केन्द में वयम् में वृत् ही मिली है वृत्ति में वृत्ति से लिखा मिले है ।

तस्य विकारः^१ ॥४४०॥ —य० ४ । १ । २५४ ॥

विकार वर्ष में बहीसहस्र प्रातिपदिकों से क्याप्राप्त प्रत्यय हों। जैसे—आत्मनो विकार आत्मनः, आत्मः; अस्मनो विकारो अस्मनः; भास्मः; भासिकः; जनस्त्वैविकारो जन्तो जातस्यायः इत्यादि ॥४४०॥

अथयत्र च प्राप्नोष्यद्विबुधेभ्यः^२ ॥४४१॥

—य० ४ । १ । २५६ ॥

विकार और अथयत्र वर्ष में प्राप्नो योषधि और बुधवाची प्रातिपदिकों से क्यानिहित प्रत्यय हों, परन्तु प्रातिपदिकों की कड़ी से इन्हीं प्रकरण में लाने चाहें नहेंगे।

जैसे [प्रातिपदिकों]—कनौस्य विकारोऽयस्यो वा कापोतः; मायूरः, तैलिवः। योषधिकाः—लवङ्गस्य विकारोऽयस्यो वा काकाङ्गम्, देवदारम्, दिदंत्वा विकारोऽयस्यो वा नैर्दयम्। बुधवाची—छादिरस्य विकारोऽयस्यो वा छादिरम्, मायूरम्; कापीरं काण्डम्, कारीरं भस्म इत्यादि ॥४४१॥

१. इस सूत्र के अन्तर्गत की अनुवृत्ति (लघेदम्) १० सूत्र से कभी कभी, फिर लघु ग्रह या प्रयोग्य वह है जिससे सेव्यधिकार की कक्षा में कभी जावे, यहाँ विकार प्रत्यय काटि कहीं से क्यावि प्रत्यय न होवे। और वह प्रकरण कक्षान्त प्रत्ययों का वाक्य है ॥

२. यह सूत्र निश्चय ही है जिसे बुधम् किता है कि उन प्रकरण में प्राप्नो योषधि और बुधवाची प्रातिपदिकों से विकारात्मक दोनों वर्षों में, और अन्य कहीं से केवल विकार वर्ष में ही प्रत्यय होंगे। और वे दोनों सूत्र अधिकार के लिये हैं ॥

मयद् वेतपोर्वावापामभस्याच्छादनयोः ॥४४२॥

—अ० ४ । ३ । १४३ ॥

विकार और अवयव अर्थ में लीनिकप्रयोगविषयक ब्रह्मलिङ्गात् से मयद् प्रत्यय विकल्प करके हो, मयद् और आच्छादन अर्थ को छोड़के । [जैसे—] आत्ममयम्, आत्मनः; मूर्ध्निमयम्, मूर्ध्निम्; वनस्पतीविकारो वनस्पतिमयम्, वानस्पत्यम् ।

यहाँ 'माया' ग्रहण इसलिये है कि—वेतवः आदिरो का मयद् क्वात्, यहाँ मयद् न हो । और 'मभक्ष्याच्छादन' ग्रहण इसलिये है कि—मीद्वः मूयः; कायमिमाच्छादनम्, यहाँ भी मयद् न होवे ॥४४२॥

नित्य बृहत्तरादिभ्यः ॥४४३॥ —अ० ४ । ३ । १४४ ॥

यहाँ नित्यग्रहण विकल्प की निवृत्ति के लिये है ।

मयद् और आच्छादनरहित विकार और अवयव अर्थ हो, तो वच्छेदमयर्षे बृहत्संज्ञक और वरादिभ्यः प्रातिपदिकों में लीनिक प्रयोगों में मयद् प्रत्यय नित्य हो होवे ।

जैसे—आत्मस्य विकारोऽवयवो वा आत्ममयम्; आत्ममयम्; आत्ममयम् इत्यादि, यहाँ बृहत्प्रातिपदिकों से छु प्रत्यय प्राप्त है, उक्तका वाचक मयद् है । वरादि—वरात्मम्; दर्भमयम् इत्यादि ॥४४३॥

ज्ञातक्येभ्यः परिमाणे ॥४४४॥

—अ० ४ । ३ । १४५ ॥

ज्ञातक्य मय्य मुवर्ण का पर्यायवाची है । बहुवचन निर्देश से मुवर्णवाचकों का ग्रहण होता है ।

परिमाण विकार धर्ये होवे, तो सुवर्णवाची प्रातिपदिकों में धञ् प्रत्यय होवे । जैसे—अध्यापयस्व विकार आध्यापयम्, जातकम्; लोचकम्, रीपम् इत्यादि ।

यहां 'परिमाण' दृष्ट्वा इसलिये है कि—सुवर्णमयः प्रासादः, वही धञ् प्रत्यय ल हो । यह मरुद् का अपवाद है ॥४४४॥

प्राणिरजतादिभ्योऽङ् ॥४४५॥—अ० ४ । ३ । १३० ॥

यद् धञ् का अपवाद है । अष्टौलमयं प्राणिवाची घोर रजतादि प्रातिपदिकों में अङ् प्रत्यय हो, विकार घोर प्रथमव धर्यो में । [जैसे—]—प्राणी—अपोलस्य विकारः अपोलसम्; बाहुरम्; नीलिरम् । रजनादि—राजलम्; तंसम्; लोहम् इत्यादि ॥४४५॥

कोलजल्पदिमानात् ॥४४६॥—अ० ४ । ३ । १३१ ॥

जिसे जिस परिमाणवाची प्रातिपदिक से जोत धर्य में जो जो प्रत्यय होता है, उसी उसी प्रातिपदिक से वही वही प्रत्यय वही विकार प्रथमव धर्य में होवे । जैसे—निष्केज कोल नैष्किकम् होता है, वैसे ही—निष्कस्य विकारी नैष्किकः; कल्पः, मलिकः, द्विनैष्किकः, द्विनैष्किकः इत्यादि ॥४४६॥

फले लुक् ॥४४७॥—अ० ४ । ३ । १३२ ॥

विकारावयव फल धर्ये सम्बन्धित हो, तो विहित प्रत्यय का लुक् होवे । जैसे—आमलकवाः फलम् आमलकम्; बदामीः फलानि बदरानि; कुबजकम्; विम्बम्^१ इत्यादि ॥४४७॥

१. यह सर्वत्र तद्विध प्रत्यय का लुक् होने के परवात् (लुक् तद्विधमुनि) इस लुक् में स्त्रीप्रत्यय का भी लुक् ही जाता है ॥

सुप् च' ॥ ४४८ ॥ —वा० ४।१। १५२ ॥

जम्बू प्रातिपदिक से विहित विकारावयव प्रत्यय का विकल्प करके सुप् होवे । जैसे—जम्बू विकारः फलं जम्बूः फलम् ॥४४८॥

वा०—फलपाकमुषामुपसाह् कृषानम् ॥४४९॥

जिन वस्तुओं घाल खादि कलों के पकने के समय में उनके मूल मूष जाते हैं, उनसे भी विहित विकारावयव प्रत्यय का विकल्प सुप् होवे । जैसे—बीहोषः फलानि बीहूषः; बीधूषाः; बवाः; बाषाः; बिलाः; मुद्गाः; समूराः इत्यादि ॥४४९॥

वा०—पुष्यमूलेषु बहुलम् ॥४५०॥

पुष्य और मूल बिम्बारावयव साथ हो, ता बहुल करके प्रत्यय का सुप् हो । जैसे—बलि-कः वाः पुष्यं मूल वा मल्लिकाः; करवीरम्; विनम्; मृगानरुष पुष्यं मूल वा मृगालम् ।

बहुलबहुल से कड़ी नहीं भी होना । जैसे—घटस्थानि पुष्पाणि मूलानि वा, संस्थानि फलानि ॥४५०॥

[॥ इति तृतीयः पादः ॥]

१. यहाँ पूर्व सुप् से सुप् प्राप्ति है, फिर पुष्पविभाग समन्धि द्वे वि (पुष्पि पुष्पवत्) इससे लिङ्ग और यच्चा भी सुप्प्राप्ति हो जाये, गहरी गो पाल का विशेषण नपुंसकलिङ्ग होना ॥

[अथ चतुर्थः पादः—]

प्रत्ययहृतिच्छब्दः ॥ ४५२ ॥ —वा० ४१४।१।३

यह सञ्चिकार सूत्र है। (लङ्हृतिः) इस सूत्रपर्यन्त जो-सी शब्द कहे हैं, उन सब में सामान्य से छद् सञ्चिकार होगा। जैसे—
सत्तदीक्ष्यति प्राञ्जिकः इत्यादि।

इस चतुर्थीपाद के प्रथम पाद में (प्राञ्जदीक्ष्यतोऽङ्) यह सञ्चिकार कर चुके हैं। उसकी वहाँ से निवृत्ति समझें, क्योंकि आगे सूत्र में दीक्ष्यति शब्द पड़ा है। अङ् के सञ्चिकार की समाप्ति होने पर अत्र ही दूसरा छद् प्रत्यय का सञ्चिकार कर दिया। इस विषय में नौकिक दृष्टान्त यह है कि रामायण लुप्त होता है तो आगे चले ही सूत्र की गई। पर मंडा पड़ा है।

॥ ४५२ ॥

वा०—छवप्रकरणे लडाहेति मातृवादिभ्य उपसंज्ञमानम्

॥ ४५३ ॥

‘ऐसा कह कहता है’, इस शब्द में मातृवादि प्रातिपदिकों में छद् प्रत्यय होवे। जैसे—मातृवाद् इत्याह मातृवादिभ्यः, क्लृप्वाद् इत्याह क्लृप्वादिभ्यः; कात्संज्ञादिभ्यः इत्यादि ॥ ४५३ ॥

वा०—आहौ प्रभूतादिभ्यः ॥ ४५४ ॥

द्वितीयात्मकं प्रभूतादि प्रातिपदिकों में छद् प्रत्यय होव कहने शब्द में। जैसे—प्रभूतामाह प्रभूतादिभ्यः; आहोऽप्यह इत्यादि

॥ ४५४ ॥

वा०—पृच्छती मुस्तातादिभ्यः ॥ ४१४ ॥

द्वितीयात्मकं मुस्तातादि प्रातिपदिकों से कुछने कर्म में ठक् प्रत्यय होते । जैसे—मुस्तात पृच्छति सीमात्मिकः; सीधराधिकः; मुखात्मकं पृच्छति सीधरात्मिकः इत्यादि ॥४१४॥

वा०—परदारादिभ्यः ॥ ४१५ ॥

द्वितीयात्मकं परदारादि प्रातिपदिकों से गमन करने कर्म में ठक् प्रत्यय हो । जैसे—परदारान् परद्वति पारदारिकः; नीरुनल्पिकः इत्यादि ॥४१५॥

तेन दीव्यति खनति जयति जितम्^१ ॥ ४१६ ॥

—प० ४।४।२ ॥

दीव्यति आदि कृताओं के कर्ता वाक्य रहे, तो तृतीयात्मकं प्रातिपदिकों में ठक् प्रत्यय होते । जैसे—छत्रीदीव्यति वाक्षिकः; कुक्षलेन खनति कीदालिकः; शालकाभिर्जयति शालाधिकः; शालकाभिर्जितं शालाविल जितम् इत्यादि ॥४१६॥

संस्कृतम् ॥ ४१७ ॥ —प० ४।४।३ ॥

संस्कार करने कर्म में तृतीयात्मकं प्रातिपदिकों में ठक् प्रत्यय होते । जैसे—पूतेन संस्कृतं पातकम्; तैलिकम्; दध्ना संस्कृतं दाक्षिकम्; लाभिकम् इत्यादि ॥४१७॥

१. वहाँ जित शब्द का कुछ रहन इसीलिए है कि जि जगत् का कर्म अनिष्टैव ही तो भी ठक् प्रत्यय हो जावे ॥

तरति ॥ ४३८ ॥ —सं. ४। ४। १॥

तलने धर्मे में तृतीयसमर्थे प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो ।
जैसे—ब्रह्मेण तरति वार्षभिकः; माहिषिकः; धौहिषिकः इत्यादि ॥४३८॥

नीद्वयचठञ् ॥ ४३९ ॥ —सं. ४। ४। ३॥

यहां पूर्व सूत्र से ठक् प्राप्त है, उसका अपवाद ठञ् किया है ।
तलने धर्मे में तृतीयसमर्थे नी और द्वयञ् प्रातिपदिकों से
ठञ् प्रत्यय होते । जैसे—नावा तरति नाविकः; घटेन तरति
घाटिकः; कोम्भिकः; बाहुकः इत्यादि ॥४३९॥

चरति ॥ ४४० ॥ —सं. ४। ४। ४॥

चलने धर्मे में तृतीयसमर्थे प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होते ।
जैसे—मन्त्रेण चरति शाकटिकः; रायिकः; हास्तिकः इत्यादि ॥४४०॥

आकषतिष्ठञ् ॥ ४४१ ॥ —सं. ४। ४। ५॥

यहां पूर्व सूत्र से ठक् पाया है, उसका अपवाद है ।
चलने धर्मे में तृतीयसमर्थे आकर्ष प्रातिपदिक से चठञ् प्रत्यय
होते । विष्णुसहस्रनाम्न में डीञ् होने के लिये है । [जैसे—]
आकर्षेण चरति आकषिकः; आकषिकी ॥४४१॥

का०—आकर्षात् पयसिर्भस्त्रादिभ्यः कुसीदसूत्राच्च ।

आवसथातिकशरादेः वितः षडेते ठक्धिकारे' ॥४४२॥

१. यहाँ ठक् प्रत्यय के अधिकार में किसी प्रातिपदिकों में विभक्ति
के लक्षण को पहिना में कल हो जाता है, और किसी प्रत्ययों में डीञ्

उक्त व्याख्या स्पष्ट है । आकर्षण शब्द से स्पष्ट, पर्यावरणों से स्पष्ट, भवतावरणों से स्पष्ट, कुलीन और वर्णकादयः प्रातिपदिकों से स्पष्ट और स्पष्ट, आवासस्थान शब्द से स्पष्ट और कियारादि प्रातिपदिकों से स्पष्ट वे सब प्रत्यय इस पञ्चिकार में मिले हैं ॥४६२॥

वैतनादिभ्यो जीवति ॥ ४६३ ॥ —पञ्च ४।४।१२॥

जानने शब्द में तुलीयामन्वर्थ वेदनादि प्रातिपदिकों से उक्त प्रत्यय हो । जैसे—वैतनेन जीवति वैतनिकः, जातिकः; वेदेन जीवति वैदिकः; उपदेशेन जीवति औपदेशिकः; उपस्थेन जीवति औपस्थिकः, धीनेन जीवति धीनिकः ॥४६३॥

हरत्पुलङ्गादिभ्यः ॥ ४६४ ॥ —पञ्च ४।४।१३॥

हरने शब्द में उत्तङ्गादि प्रातिपदिकों से उक्त प्रत्यय होवे । जैसे—उत्तङ्गेन हरति उत्तङ्गिकः; औदृष्टिकः इत्यादि ॥४६४॥

विभाषा विवधात् ॥ ४६५ ॥ —पञ्च ४।४।१४॥

इस सूत्र में अप्राप्तविभाषा इसलिये है कि उक्त प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है ।

हरने शब्द में तुलीयामन्वर्थ विवध प्रातिपदिक से उक्त प्रत्यय विकल्प करके होवे, पक्ष में उक्त हो । जैसे—विवधेन हरति विवधिकः, विवधिकी; वैवधिकः; वैवधिकी ॥४६५॥

होने के लिये मिल गया है । इससे संदेह होता है कि फिर प्राचीन में औपदेशिक पाठ और फिर में विवधिक का है । इस संदेह को निवृत्ति के लिये यह कथित है ॥

वा०—वीथयाच्य ॥ ४६६ ॥

वीथयः प्रातिपदिक से भी हरने शर्ष में यत् प्रत्यय विकल्प करके होते । जैसे—वीथयेन हरति वीथयिकः, वीथयिकी, वीथयिकः, वीथयिकी ।

इस वीथय शब्द को कश्चिका आदि पुराणों में सूत्र से ही मिला दिया है । जो कालिक होने से सूत्र में मिलाना ठीक नहीं है । और ये दोनों शब्द एकार्थ है । शब्द के स्वरूप का प्रमाण होता है, इससे प्राप्त नहीं था ॥४६६॥

निर्वृत्तेऽश्वश्रुतादिभ्यः ॥ ४६७ ॥ — घ० ४ । ४ । २९ ॥

निर्वृत्त शर्षात् सिद्ध होने शर्ष में तृतीयासमर्ष अश्वश्रुतादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो । जैसे—अश्वश्रुतेन निर्वृत्तमाश्व-श्रुतिकं वरम्; जानुश्रुतिकम्; काष्ठकमर्दनिकम् इत्यादि ॥४६७॥

कजेर्मन्निहये ॥ ४६८ ॥ — घ० ४ । ४ । २० ॥

विष प्रत्ययान्त तृतीयासमर्ष प्रातिपदिकों से निर्वृत्त शर्ष में यत् प्रत्यय नियत हो होने । शर्षात् चयिकार के विकल्प से वाक्य प्राप्त है, जो भी न रहे । जैसे—पवित्रमा यथायुः, लब्धिमं वीथयः, कृषिभः संसारः इत्यादि ॥४६८॥

वा०—भाव इति प्रकृत्य इमन्वत्तत्त्वः ॥ ४६९ ॥

भाववाची प्रातिपदिकों से इमन् प्रत्यय कहना चाहिये ।

ऐसा कालिक करने से सूत्र का भी कुछ प्रयोजन नहीं है, क्योंकि कृष्टिमा भूमिः, सेकिमोऽसिः, इत्यादि उदाहरण सूत्र से सिद्ध नहीं हो सकते ॥४६९॥

संसृष्टे ॥ ४७० ॥ —अ० ४।४।२२॥

विशेषे धर्म में तृतीयात्मके प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे । जैसे—दद्यात् संसृष्टं वाचिकम्; वाचिकम्; मार्गिकम्; बाह्यैरिकम्; सैन्यलिकम्; दीपिकी पद्यान्; गौडिका गौड्याः इत्यादि ॥४७०॥

व्यञ्जनस्यसिक्ते ॥ ४७१ ॥ —अ० ४।४।२३॥

उपसिक्त स्यत् सिक्ते धर्म में व्यञ्जनवाची तृतीयात्मके प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो । जैसे—दध्नीसिक्तं वाचिकम्; वाचिकम्; गौडिकम्, वाचसिकम्; मार्गिकम् इत्यादि ।

‘व्यञ्जनवाचिकी’ का अर्थ इसलिये है कि—उदकेनोपसिक्तं शाकम्, यहाँ प्रत्यय न हो ॥४७१॥

सप्तप्रत्ययपूर्वेषोपलोपकूलम् ॥ ४७२ ॥

—अ० ४।४।२४॥

सप्तमे धर्म में द्वितीयात्मके प्रति तथा धनु ये जिनके पूर्व हों, ऐसे ही प्रतीक और कूल प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो । जैसे—प्रतीकं सप्तमे प्रातीपिकः; धान्वीदिकः; प्रतिलोमं सप्तमे प्रातिलोमिकः; धानुनोमिकः; प्रतिकूलं सप्तमे प्रतिकूलिकः; धानुकूलिकः ॥४७२॥

प्रत्यच्छति गह्वम् ॥ ४७३ ॥ —अ० ४।४।२५॥

प्रत्यच्छति स्यत् देने धर्म में, जो पदार्थ दिया जान को निश्चित हो, तो द्वितीयात्मके प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो ॥४७३॥

वा०—मेरुवाहलोपो वा ॥४७४॥

प्रत्यय इत्यत्र होते इत्यत्र 'मे' 'स्वात्' इन दो वर्तों का विकल्प करके लोप हो जाये ।

विकल्प इसलिये है कि वाक्य भी बना रहे । जैसे—विगुर्णं मे स्वादिति प्रपञ्चति द्वैगुणिकः ; त्रैगुणिकः ॥ ४७४ ॥

वा०—बुद्धेर्बुधुभिभावः ॥४७५॥

यहां मे, स्वात् इन दो वर्तों की अनुवृत्ति वाली आती है ।

बुद्धि शब्द को बुधुभि भावेष्ट और ठक् प्रत्यय होये । जैसे—बुद्धिर्मे स्वादिति धनं प्रपञ्चति चार्धुणिकः ॥ ४७५ ॥

उज्ज्वलति ॥४७६॥ —वा० ४ । ४ । ३२ ॥

उज्ज्वले शब्द में द्वितीयात्मकत्वं प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होये । जैसे—उदराण्युज्ज्वलति वातरिकः ; श्यामाश्विकः ; गोधूमा-
न्युज्ज्वलति सौम्युणिकः ; काशिकः इत्यादि ॥ ४७६ ॥

रक्षति ॥४७७॥ —वा० ४ । ४ । ३३ ॥

रक्षा शब्द में द्वितीयात्मकत्वं प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होये ।
जैसे—धामं रक्षति शामिकः ; लमाजं रक्षति शामाश्विकः ;
गोमन्त्रं रक्षति गोमन्त्रविकः ; कुटुम्बं रक्षति कौटुम्बिकः ; नगरं
रक्षति नागरिकः इत्यादि ॥ ४७७ ॥

पश्चिमस्त्यमुगान् हन्ति ॥४७८॥

मारने सर्व में द्वितीयात्मार्थ वसि वास्य और सुगवाची प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होते । जैसे—[वसि] वसिष्यो हन्ति पाक्षिकः; खैन्नरिकः; आकुनिकः; मुकान् हन्ति शौचिकः; वासिकः; मासुरिकः, लेल्लिरिकः । वास्य—वासिष्यकः; मेनिकः; वास्रिकः; आकुनिकः । मूच—माचिकः; हारिषिकः; सोकरिकः; सारङ्गिकः । ॥ ४७८ ॥

वरिषन्वञ्च तिष्ठति ॥४७९॥ —सं ४।४।३६ ॥

स्मिति और मारने सर्व में द्वितीयात्मार्थ वरिषन्व प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होते । जैसे—वरिषन्व तिष्ठति पारिषन्धिको वसुः; वरिषन्व हन्ति पारिषन्धिक उरकोचकः ॥ ४७९ ॥

माद्योत्तरपदपदमनुष्यं धावति ॥४८०॥

—सं ४।४।३७ ॥

इस मूच में माद्य शब्द मार्ग का पर्यायवाची है ।

लोछने और ज्ञान गमन प्राप्ति सर्वों में पदवी अनुष्य और माद्य शब्द जिनके उत्तरपद में हो, ऐसे प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होते । जैसे—विद्यामार्थं धावति वेद्यामाचिकः; धार्यमाचिकः; द्राघ्यमाचिकः इत्यादि । पदवी धावति वाचिकः; आनुष्यिकः ॥ ४८० ॥

१. कदा कदा के स्वल्प का बहुवचन नहीं होता कि (स्वल्पः) इस पर गतिवत् कहा है कि ऐसा उचित करना चाहिये कि किसी पदो मूच और माद्य इनके पर्यायवाची और विशेषवाचिकी का भी बहुवचन हो जाये ॥

पदोत्तरपदं गृह्णाति ॥४८१॥ —सं० ४।४।३९ ॥

ग्रहण करने धर्म में पद शब्द जिनके उत्तरपद में हों, उन द्वितीयात्मक प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो। जैसे—पूर्वपद गृह्णाति धीर्बन्धकः; धीत्तरपदिकः इत्यादि ॥ ४८१ ॥

धर्मं चरति ॥४८२॥ —सं० ४।४।४१ ॥

धाचरण धर्म में द्वितीयात्मक धर्म प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होने। जैसे—धर्मं चरति धात्मिकः ॥ ४८२ ॥

वा०—सधर्माध्य ॥४८३॥

धाचरण धर्म में सधर्म शब्द से भी ठक् हो। जैसे—सधर्मं चरति धात्मिकः ॥ ४८३ ॥

समवायान्नसमवेति ॥४८४॥ —सं० ४।४।४२ ॥

यहाँ बहुवचन निर्देश के समवायवाची शब्दों का ग्रहण होता है।

प्राप्त होने धर्म में द्वितीयात्मक समवायवाची प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो। जैसे—समवायान् समवेति सामवायिकः; सामाधिकः; सामूहिकः; साहच्यिकः इत्यादि ॥ ४८४ ॥

संज्ञायां ललाटबुक्कुट्यो वश्यति ॥४८५॥

—सं० ४।४।४५ ॥

देखने धर्म में संज्ञा वाच्य रहे, ली द्वितीयात्मक ललाट और बुक्कुटी प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो। जैसे—ललाटं

पावति नात्मादिको भूत्वः^१; कुक्कुटो वामपति कीलकुटिको चिक्षुकः
॥ ४८३ ॥

तस्य धर्म्यम् ॥४८४॥ — अ० ४ । ४ । ४७ ॥

जो कार्य धर्म का विरोधी न हो उसको धर्म्य कहते हैं ।

वष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक से धर्म्य धर्म में ठग प्रत्यय हो ।
जैसे—हाटकस्व धर्म्य हाटकियम्; भागिरिक्कन्; भागिरिक्कन्
इत्यादि ॥ ४८६ ॥

अतोऽम् ॥४८७॥ — अ० ४ । ४ । ४९ ॥

धर्म्य धर्म में वष्ठीसमर्थ अकारान्त प्रातिपदिक से अम्
प्रत्यय होवे । जैसे—होतुर्धर्म्य होवन्; पीयथ; दीहिवम्; स्वात्मम्
इत्यादि ॥ ४८७ ॥

वा०—नूनरात्र्यावज्जवनम्^१ ॥४८८॥

नू धीर नर शब्द से भी वाञ् प्रत्यय होवे । जैसे—नूर्ध्वर्था
नारी; एवं नरस्वाधिनारी ॥ ४८८ ॥

वा०—विशसितुर्द्वितीयश्च ॥४८९॥

विशसितु शब्द से वाञ् प्रत्यय धीर शब्द के परे इद् का
लोप होवे । जैसे—विशसितुर्धर्म्य विशस्वम् ॥ ४८९ ॥

१. नात्मादिक उस केवक भी कहते हैं कि जो धर्म्य प्रकार काम न
करे, बैठा बैठा नास्तिक का मुख देखा करे ॥

२. नू शब्द के अकारान्त होने से मूल के ही वाञ् प्रत्यय हो जाता,
किर इसका नास्तिक से दृष्टान्त के जिनो ग्रहण किया है, जैसे नू शब्द से
वाञ् होकर नारी बनता है, जैसे नर शब्द से भी बनता ॥

वा०—विभाजयितुमित्युपपन्न ॥४६०॥

विभाजयितु शब्द के अर्च् प्रत्यय और उस प्रत्यय के परे विच् का लोप भी होवे । जैसे—विभाजयितुर्द्वयं विभाजयम् ॥ ४६० ॥

अवश्यः ॥४६१॥ —घ० ४।४।१० ॥

अवश्य अवर्त्त खरीदने और बेचने अर्थ में बख्ती समर्थ प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होवे । जैसे—बीजालावा अवश्यो बीजालिकः; आकरिकः; आपथिकः; हारिकः इत्यादि ॥४६१॥

तदस्य पश्यम् ॥४६२॥ —घ० ४।४।११ ॥

पश्यमानाधिकरण प्रथमात्मर्थ प्रातिपदिकों से बख्ती के अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे । जैसे—सुवर्ण पश्यमस्य सीवथिकः; अपुषाः पश्यमस्य भापुथिकः; आम्बुलिकः; शीतलपत्रः पश्यमस्य सीवथिकः, मुक्ताः पश्यमस्य सीवथिकः इत्यादि ॥ ४६२ ॥

शिल्पम् ॥४६३॥ —घ० ४।४।१२ ॥

शिल्प शब्द क्रिया की कुशलता अर्थ में वर्तमान है । शिल्प-समानाधिकरण प्रथमात्मर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे । जैसे—मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य मार्दङ्गिकः; पाथथिकः, बीजा-वादनं शिल्पमस्य बीथिकः इत्यादि ॥ ४६३ ॥

१. मृदा नामक से मृदाभाष्यकार के उल्लेख का लोप इसलिये वाला है कि मार्दङ्गिक शब्द से मृदङ्ग बजाने वाले का ही बहल होवे । और मृदङ्ग रखने वाला कुम्हार तथा काम आदि से मरने वाले की भी कारीगरी उनमें होती है, वस्तु लोक में मार्दङ्गिक शब्द से उल्लेख बहल वाला ही लिया जाता है । और ऐसा ही नामार्थ एवं उचीनी से जानी ॥

प्रहरणम् ॥ ४६४ ॥ —य० ४।४।३७ ॥

प्रहरण समानाधिकरण प्रथमात्मर्थे प्रातिपदिक से बन्धी के अर्थ में ठक् प्रत्यय हो। जैसे—आग्नेयवर्णं प्रहरणमस्य आग्नेयवर्णिकः; क्षातघ्नीं प्रहरणमस्य क्षातघ्निकः; भीषुषिकः; मतिः प्रहरणमस्य मासिकः; वासिकः; आनृणकः; दान्दिकः इत्यादि ॥ ४६४ ॥

शक्तियध्योरीकम् ॥ ४६५ ॥ —य० ४।४।३९ ॥

प्रहरण समानाधिकरण प्रथमात्मर्थे शक्ति घोर दधि प्रातिपदिकों से बन्धी के अर्थ में ईकम् प्रत्यय होवे। जैसे—शक्तिः प्रहरणमस्य शक्तीकः; दध्नीकः ॥ ४६५ ॥

अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः ॥ ४६६ ॥

—य० ४।४।३० ॥

मतिरित् नास्ति घोर दिष्ट इव मति समानाधिकरण प्रथमात्मर्थे प्रातिपदिकों से बन्धी के अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—अस्तीति मतिरस्य स अस्तितकः^१; नास्तीति मतिरस्य स नास्तितकः; दिष्टमिति मतिरस्य स दिष्टितकः ॥ ४६६ ॥

१. यहाँ वाक्यार्थ में इति शब्द से उत्तरार्ध का लोप सम्भवा चाहिये। क्योंकि ईश्वर, जीव, पुनर्जीव घोर गुणगुण वर्णों का अन्त धारि है, ऐसी बुद्धि जिस पुण्य की हो वह आस्तित्व, घोर इसके विरुद्ध नास्तित्व सम्भवा जावे। घोर जो इति शब्द का लोप न सम्भवे तो जिस घोर धारि में आस्तित्व बुद्धि हो वह भी आस्तित्व घोर बुद्धि से रहित वह वर्णों भी नास्तित्व कह्यो ॥

शीलम् ॥ ४९७ ॥ —य० ४।४।९१ ॥

शील समाप्ताधिकरण प्रथमासमर्थ प्रतिपदिक से पन्नी के सर्व में उक्त प्रत्यय हो । जैसे—छात्रा भक्षणं शीलमन्व स प्राप्नुविकः; साप्नुविकः^१, शीविकः, शीविकः; शीविकः; साप्नुविकः इत्यादि ॥ ४९७ ॥

छात्रादिभ्यो णः ॥ ४९८ ॥ य० ४।४।९२ ॥

शील समाप्ताधिकरण प्रथमासमर्थ छात्र आदि कथञ्चित् प्रतिपदिकों से पन्नी के सर्व में न प्रत्यय होवे । उक्त प्राप्त है उसका बाधक है । छात्र शब्द मुख्य करके छात्रा का नाम है ॥ ४९८ ॥

भा०—किं यस्य छात्रधारणं शीलं स छात्रः ? किञ्चालः ? राजपुत्र्ये प्राप्नोति । एवं तद्गुणैरुत्तरवदन्तोषोऽय इष्टव्यः । छात्रमिवच्छात्रम्, गुरुच्छात्रम्, गुरुणा शिक्ष्यच्छात्रवच्छात्रः । शिक्षेन गुरुच्छात्रवत्परिपाल्यः ॥ ४९९ ॥

लोक में परम्परा से छात्र शब्द विद्वार्थों का बाधी है । इसलिये मनुवाक्यकार ने इस विषय का स्पष्ट व्याख्यान कर दिया कि—छात्र शब्द से वहाँ गुरु उपमेय है । यर्थात् शिक्ष के छात्रानुसारी सम्भार की गुरु निवारण करता है, इसलिये छात्र है । जैसे घाम आदि से अपनी रक्षा करनेहारे छात्रा को जल से

१. वहाँ ही भक्षण उत्तरवद का शेष समझना चाहिये । क्योंकि पूर्वी आदि बराने पन्नी के नाम साप्नुविक आदि न हो जयें । लोक में इन पदार्थों के आने वाले हो इन नामों से समझे जाते हैं ॥

रखते हैं, वैसे ही अपने सेवन से गुरु की रक्षा करनेवाला गुरुव
छात्र कहाला है। और जैसे छात्रा भ्राम आदि से होनेवाले दुःखों
का निवारण करता है, वैसे ही गुरु भी दुःखिता आदि से होनेवाले
दुःखों को नष्ट करता है। [जैसे—] छात्र गुरुसत्सङ्गसेवनक्षीलमस्व स
छात्रः, कन्या वैभङ्गवा; कुमुदा क्षीलमस्व स वीभुक्षः इत्यादि।

इस गुरु पर अव्यक्तिय भट्टोजिदीक्षितादि कहते हैं कि—गुरु
के जो कुछ कर्म्य हैं, उनके आच्छादन करने का स्वभाव वाला
छात्र कहाला है। इस व्याख्यान को बुद्धिमान् वैवाकरण
विचारें कि महाभाष्य से दित्वा विरोध आता है। इस गुरु के
व्याख्यान से ऐसा अनुमान होता है कि अव्यक्तिय भट्टोजिदीक्षितादि
जीव महत्वातकी होंगे ॥ ४९९ ॥

हितं भक्षः ॥ ५०० ॥ —स० ४।४।९९ ॥

यहां भक्ष शब्द में बहुवचननिर्देश से भक्षवाचियों का सहन
होता है। हित शब्द के बीज में अनुर्भी विभक्ति होती, और पूर्व
से यहां कण्ठध्वनि की अनुवृत्ति आती है, इसलिये उस कण्ठी का
विपरिणाम अनुर्भी समझनी चाहिये।

हित क्षमाताधिकरण अवसामसर्व भक्षवाची श्रान्तिपदिकों से
अनुर्भी के अर्थ में ढक् प्रत्यय होवे। जैसे—प्रोदना हितमर्मे
मौदिकः; सपूपा हितमर्मे पापुषिकः; पापुषुषिकः; मौदिकः
इत्यादि ॥ ५०० ॥

तदमर्मे दीयते निमुक्तम् ॥ ५०१ ॥

—स० ४।४।९९ ॥

निरन्तर देने अर्थ में प्रथमात्मक अर्थात् श्रान्तिपदिक से ढक् प्रत्यय
होवे। जैसे—असासनमर्मे दीयते आशाश्रान्तिकः; आशमीश्रान्तिकः;
अपूपा अर्मे दीयते इत्यापुषिकः; मौदिकः इत्यादि ॥ ५०१ ॥

तत्र निपुक्तः ॥ ५०२ ॥ —अ० ४ । ४ । १२ ॥

नियत करने धर्म में सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय ही । जैसे—पाकशालायां निपुक्तः पाकशालिकः; शौचशालिकः; हाटशिकः; आपशिकः; छर्मीषदेने निपुक्तो छर्मीषदेशिकः; बैशाख्यशिकः; कन्यालये निपुक्तो कन्यालयाधिकः इत्यादि ॥ ५०२ ॥

अगारान्ताहुन् ॥ ५०३ ॥ —अ० ४ । ४ । १३ ॥

यहां पूर्वसूच से ठक् प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह अणवाद है ।

नियत करने धर्म में सप्तमीसमर्थ अगारान्त प्रातिपदिक से ठन् प्रत्यय ही । जैसे—छनागारे निपुक्तो छनागारिकः; कस्त्यागारिकः; यक्षनागारिकः; पुस्तकागारिकः इत्यादि ॥ ५०३ ॥

अध्यायिष्यदेशकालात् ॥ ५०४ ॥ —अ० ४ । ४ । १४ ॥

जिन देश और कालों में पढ़ने का निवेद्य है, उन प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय ही । जैसे—वयस्यानेच्छीते वयसात्मिकः; शौडशाभि-
धिकः; सन्धिषेलायामशीते सान्धिषेनिकः; अष्टम्याकधीते
आष्टिमिकः; चातुर्दशिकः; पौर्णमासिकः इत्यादि ॥ ५०४ ॥

कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु व्यवहरति ॥ ५०५ ॥

—अ० ४ । ४ । १५ ॥

व्यवहार करने धर्म में कठिनान्त प्रस्तार और संस्थान प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होने । जैसे—कुलकठिने व्यवहरति
कीलकठिनिकः; कोटुम्बकठिनिकः; प्रस्तारे व्यवहरति प्रास्तारिकः;
सांस्थानिकः इत्यादि ॥ ५०५ ॥

निकटे वसति ॥ ५०६ ॥ —अ० ४ । ४ । १६ ॥

वसने धर्म में सप्तमीसमर्थ निकट प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय ही । जैसे—निकटे वसति निकटिकः ॥ ५०६ ॥

प्राप्तिताद्यत् ॥ १०७ ॥ —अ० ४ : ४ : ७२ ॥

प्रथम ठक् प्रत्यय का अधिकार कर साथे है, उसकी समाप्ति यहाँ से समाप्तनी चाहिये । क्योंकि बहुलि शब्द प्रथम सूच में है, उस अधिकार के रहते ही दूसरा अधिकार यत् प्रत्यय का करते हैं, इसका दृष्टान्त भी पूर्व में चुके हैं ।

यहाँ से ले के (तुम्में हितम्) इस अधिकार के पूर्व पूर्व जो जो शब्द कहेंगे, उन उन में सामान्य करके यत् प्रत्यय का अधिकार समाप्तनी चाहिये । जैसे—रथ बहुलि रथः; युग्मः इत्यादि ॥ १०७ ॥

तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् ॥ १०८ ॥ —अ० ४ : ४ : ७३ ॥

ले चलने शब्द में द्वितीयात्मके रथ युग और प्रासङ्ग प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय होने । जैसे—रथ बहुलि रथः; युग्मः; प्रासङ्गः ।

रथ शब्द से सम्बन्धसामान्य शेष शब्दों में भी यत् प्रत्यय होता है । [जैसे—] रथ बहुलि रथः; रथस्य जोडा रथः । यहाँ प्रयोग और शब्दों में कुछ भी भेद नहीं है, फिर दोनों जगह करने का प्रयोजन यह है कि जब तदन्तर्विधि मान के द्विगुसंज्ञक रथ शब्द से प्रत्यय करेंगे, तब शेष शब्दों में प्राप्तीन्वयी होने से (द्विगुलुं) इससे प्रत्यय का मुक्त हो जायेगा । जैसे—द्विगुलुं-द्विगुलुं द्विरथः । और जब द्वी रथी बहुलि, ऐसा विग्रह करें, तब द्विरथः ऐसा प्रयोग होगा ।

इसी प्रकार हन और और सुन्नी के भी दोनों जगह एक ही प्रत्यय कहा है, उसका भी यही प्रयोजन है ॥ १०८ ॥

संज्ञायां जन्मः ॥ ३०९ ॥ — अ० ४ । ४ । १२ ॥

ले जाने वाले में अनुवाची द्वितीयात्मक्यं जनी प्रातिपदिक से संज्ञा बाध्य रहे, तो यत् प्रत्यय निपातन किया है । जैसे—जनीं यत् बहन्ति ते जन्माः । विवाह के समय श्री बरदा जाती है, उसको जन्मा कहते हैं ॥ ३०९ ॥

विध्यति धनुषा ॥ ३१० ॥ — अ० ४ । ४ । १३ ॥

वेधने वाले में धनुष् कारण न हो, तो द्वितीयात्मक्यं प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय होवे । जैसे—पादी विध्यति यथा दूर्वा; कर्षं विध्यति कर्षणो रतः ।

यहां 'धनुष् का निषेध' इसलिये है कि—धनुषा विध्यति; धनुं विध्यति, यहां उभयत्र प्रत्यय न होवे ॥ ३१० ॥

धनघर्षं लब्धः ॥ ३११ ॥ — अ० ४ । ४ । १४ ॥

लाभ होने का कर्ता बाध्य रहे, तो द्वितीयात्मक्यं धन और गण दोनों से यत् प्रत्यय होवे । जैसे—धनं लब्धः धन्यः; गणं लब्धः गण्यः ॥ ३११ ॥

गृहपतिना संयुक्ते ज्यः ॥ ३१२ ॥ — अ० ४ । ४ । १५ ॥

यहां पूर्वपुत्र से संज्ञा की अनुवृत्ति जाती है । संयुक्त कार्य में तृतीयात्मक्यं गृहपति प्रातिपदिक से संज्ञा सम्बोधित हो, तो ज्य प्रत्यय होवे । जैसे—गृहपतिना संयुक्तो बार्हस्पत्यः ।

यहां 'संज्ञा' बह्वा इसलिये है कि—'बार्हस्पत्य' दक्षिणामिनि का नाम न होवावे ॥ ३१२ ॥

**नौवयोधर्मविषमूलमूलसोतास्तुलाम्बरताम्रानुलूपाप्राप्य-
वध्यानाम्बलमसमितसम्मिलेषु ॥ ३१३ ॥** — अ० ४ । ४ । १६ ॥

तृतीयाक्षरार्थं नी आदि प्रातिपदिकों से तार्थ आदि अर्थों में पञ्चाक्षर्य करके यत् प्रत्यय होते हैं । जैसे—नी शब्द से तीरे अर्थ में—नावा तार्थं नाव्यम्; वयस शब्द से तुल्य अर्थ में—वयसा तुल्यं वयस्य विभम्; क्षम्यं शब्द से प्राप्त होने योग्य अर्थ में—अर्मेण प्राप्यो क्षम्योऽवयवः; विवशब्द से जारने योग्य अर्थ में—विशेष्य वश्यो विध्यः पाली; मूल शब्द से नष्टाने अर्थ में—मूलेना-नाम्यं मूल्यम्; दूसरे मूल शब्द से सज्ज अर्थ में—मूलेन सज्जो मूल्यो यदः; सोताशब्द से चौकस करने अर्थ में—सोतया समितं सोतं क्षेपम्; तुला शब्द से तोलने अर्थ में—तुलया समितं तुल्यं धान्यम् ॥ २१३ ॥

अर्धपञ्चम्यर्थन्यायावनयेते ॥ २१४ ॥ —अ० ४।४।२२ ॥

अन्येन अर्थात् पुनः अर्थ में वञ्चनीयमर्थं यच्चिन् अर्थ और न्याय प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय होता है । जैसे—अर्धादिनयेतं अर्धम्; पञ्चोऽनयेतं पञ्चम्; अर्धम्; न्यायम् ॥ २१४ ॥

छन्दसो निमित्ते ॥ २१५ ॥ —अ० ४।४।२३ ॥

निर्माण अर्थ में तृतीयाक्षरार्थं छन्दस् प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय हो । जैसे—छन्दसा निमित्तं छन्दस्यः, यहाँ छन्दसाशब्द इच्छा का पर्यायवाची है ॥ २१५ ॥

उरसोऽण् च ॥ २१६ ॥ —अ० ४।४।२४ ॥

निमित्त अर्थ में तृतीयाक्षरार्थं उरस् शब्द से अण् और चकार से यत् प्रत्यय भी हो । जैसे—उरसा निमित्तः औरसः; उरस्यः पुत्रः ॥ २१६ ॥

हृदयस्य प्रियः ॥५१७॥ —सं. ४।४।१३॥

प्रिय शब्द में शब्दीसमर्थ हृदय शब्द से यत् प्रत्यय हो। जैसे—
हृदयस्य प्रियो हृद्यो धर्मः; हृद्यो देशः; हृद्या कन्या; हृद्यं वनम्^१
॥ ५१७ ॥

सद्यः साधुः ॥५१८॥ —सं. ४।४।१४॥

साधु शब्द में सप्तमीसमर्थ साधित्यधिक से यत् प्रत्यय हो।
जैसे—सामसु साधुः सामन्तः; केसायः; कर्मण्यः; शरण्यः। साधु
प्रवीण वा योग्य का नाम है ॥ ५१८ ॥

सभायां यः ॥५१९॥ —सं. ४।४।१५॥

साधु शब्द में सप्तमीसमर्थ सभा शब्द से य प्रत्यय हो।
जैसे—सभायां साधुः सभ्यः, यहां य धीरे यत् में स्वर का भेद
है, उदाहरण का नहीं ॥ ५१९ ॥

हस्तमुदसि ॥५२०॥ —सं. ४।४।१६॥

साधु शब्द में जो वेदविषय हो, तो सभा शब्द से ह प्रत्यय
हो। जैसे—सभेयोऽस्य कुत्रा वज्रमानस्य बीरो जायतान् ॥५२०॥

समानतोर्ध्वं जाती ॥५२१॥ —सं. ४।४।१७॥

वसने शब्द में सप्तमीसमर्थ समानतीर्थ शब्द से यत् प्रत्यय
हो ॥५२१॥

१. यहां सर्वत्र हृदय शब्द की (हृदयस्य हृत्प्रेषः) इस सूत्र के
इत् प्रायेण ही जाता है ॥

तीर्थे ये ॥५२२॥ —सं० ६।३।८४॥

लोचं उत्तरायत परे हो, तो समान शब्द को स आदेश होवे । जैसे—समाने तीर्थे वसति कनीध्वीं ब्रह्मचारी^१ ॥५२२॥

समानोदरे शयित श्रो चौदशः ॥५२३॥

—सं० ४।४।१०८॥

लोने श्र्य में सप्तमीसमर्थ समानोदर शब्द से यत् प्रत्यय और समानोदर के प्रोकार को उदात्त हो । [जैसे—] समान उदरे शयितः समानोदश्वीं भ्राता ॥५२३॥

लोदराद्यः ॥५२४॥ —सं० ४।४।१०९॥

लोने श्र्य में सप्तमीसमर्थ लोदर शब्द से यत् प्रत्यय हो ॥५२४॥

विभाषोदरे ॥५२५॥ —सं० ६।३।८८॥

उदर शब्द के परे यत् प्रत्यय हो, तो समान शब्द को विकल्प करके स आदेश होवे । जैसे—समानोदरे शयितः शौदश्वीं भ्राता^२ ॥५२५॥

१. यहाँ तीर्थं उदात्त कहने हैं जो संकार के दुर्बो से उत्तर कर देवे । जो पशुनिदाना आचार्य और वेदविद्या समझनी चाहिए । जिसका एक दुर्ग नवमेहात्त और केर का पाठ नाम हो, वे कनीध्वी कहाँ ।

२ समानोदश्वी और लोदश्वी उक्त भाष्यों के नाम हैं कि जो एक भाषा के उदर से उत्पन्न हुए हैं । और जिसकी सत्ता दो और जिस एक होने उसके ने नाम नहीं हो सकती है ॥

अथै छन्दसि ॥५२६॥ — अ० ४ । ४ । ११० ॥

अथ अर्थ और वैदिक प्रयोगों में सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय हो ।

यहाँ छन्द का अधिकार इस वाद की सम्बन्धित तक, और अन्वयिकार (समुदाहारात् यः) इससे पूर्व पूर्व जानना चाहिए । यह अर्थ और य आदि प्रत्ययों का अपवाद है । [जैसे—] मेध्याय न विदुस्त्याय न नमः इत्यादि ॥५२६॥

पूर्वः कृतमिनिषी च ॥५२७॥ — अ० ४ । ४ । १११ ॥

कृत अर्थ में तृतीयासमर्थ पूर्व अर्थ से इति तथा च और चकार से न प्रत्यय होंगे । जैसे—पूर्वः कृत अर्थ पूर्वः पूर्वम्; पूर्वोपम् ॥५२७॥

अद्भिः संस्कृतम् ॥५२८॥ — अ० ४ । ४ । ११२ ॥

संस्कृत अर्थ में तृतीयासमर्थ अप् शब्द से यत् प्रत्यय हो । जैसे—अद्भिः संस्कृतम् अप्य् इति ॥५२८॥

सोममर्हति यः ॥५२९॥ — अ० ४ । ४ । ११३ ॥

सोमता अर्थ में द्वितीयासमर्थ सोम शब्द से य प्रत्यय हो । [जैसे—] सोममर्हति सोम्यः ॥५२९॥

मये य ॥५३०॥ — अ० ४ । ४ । ११४ ॥

जिन जिन अर्थों में मत् प्रत्यय विधान किया है, उन उन अर्थों और उन्हीं समर्थविभक्तियों से सोम शब्द से य प्रत्यय हो । जैसे—सोमस्य विकारीज्यस्यो वा सोम्यं ननु इत्यादि ॥५३०॥

शिवशमरिष्टस्य करे ॥५३१॥ —स० ४।४।१४३॥

करके शर्ष में शिव शम् और शरिष्ट शब्दों से तालिम् प्रत्यय
हो । जैसे—शिवस्य करः शिवतालिः; शन्तालिः; शरिष्टतालिः
॥५३१॥

भावे च ॥५३२॥ —स० ४।४।१४४॥

भावार्थ में भी शिव शम् और शरिष्ट प्रातिपदिकों से तालिम्
प्रत्यय हो । जैसे—शिवस्य भावः शिवतालिः; शन्तालिः;
शरिष्टतालिः ॥५३२॥

॥ इति अनुर्वाच्यायः समाप्तः ॥

सथ पञ्चमाध्याय आरभ्यते—

प्राक्कीलाच्छः ॥५३३॥ —स० ५।१।१॥

कीलाधिकार से पूर्व पूर्व छ प्रत्यय का अधिकार किया जाता
है । यहाँ से आगे सामान्य करके सब धर्षों में छ प्रत्यय होगा ।
जैसे—पञ्चाय द्विषा पटीया मृत्तिका इत्यादि ॥५३३॥

उन्मादिभ्यो यत् ॥५३४॥ —स० ५।१।२॥

कील से पूर्व पूर्व जो धर्ष कहें हैं, उनमें उन्मादित और मन्दादि
प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय हो । यह छ प्रत्यय का अपवाद है ।

[जैसे -] शङ्कुने हितं शङ्कुष्वं दाध; चिन्मयः कर्त्तालिः;
कमण्डलव्या मृत्तिका इत्यादि । मन्दादिकों से—कने हितं गन्धम्;
हविष्यम्; मेघादी हितं मेघयन् इत्यादि ॥५३४॥

तस्यै हितम् ॥ ५३५ ॥ — अ० ५।१।३।१॥

हित नाम उपकारी का है, उस हित धर्म में चतुर्वीसवर्ष प्रातिपदिक से छ प्रत्यय हो । जैसे—रोगिणे हितं रोगीयमीषस्यम्; मात्रीयः पित्रीयी का पुत्रः; वनेभ्यो हितो वीथुक् वलीयः; गर्व्यो हितं गर्वीयं वास्यम् इत्यादि ॥५३५॥

शरीराऽव्ययवाक्यम् ॥ ५३६ ॥ — अ० ५।१।५।१॥

हित धर्म में प्राणिनों के अव्ययवाची प्रातिपदिकों से दत्त प्रत्यय हो । वह कुछ छ प्रत्यय का अवयव है । [जैसे—] दन्तेभ्यो हितं दन्त्यं मज्जनम्; कण्ठ्यो रसः; नाभ्यम्; कस्यम्; पदम्; मूर्द्धन्यः इत्यादि ॥५३६॥

आत्मविश्वजनभोगीसरपदादयः ॥ ५३७॥

— अ० ५।१।५।१॥

हित धर्म में चतुर्वीसवर्ष आत्मन् विश्वजन और भोगीसरपद प्रातिपदिक से छ प्रत्यय हो । जैसे—आत्मने हितमात्मनीनम्^१; विश्वजनेभ्यो हितं विश्वजनीनम् । भोगीसरपदी से—मातृभोग्याय हितो मातृभोगीयः इत्यादि ॥५३७॥

वा०—वचनजनपुत्रमाह्वयानम् ॥ ५३८ ॥

वचन जन शब्द से भी छ प्रत्यय होते । जैसे—वचनजाय हितं वचजनीनम् ॥५३८॥

१. यहाँ (आत्ममात्मनी न) इस कुछ में वचन के चारे नकारान्त आत्मन् मध्य की बहुव्रीह्यता हो चका है ॥

वा०—सर्वजनानाम् शरणम् ॥५३९॥

हित शब्द में सर्वजन शब्द से ठग्न शीर का प्रत्यय ही । जैसे—सर्वजनाय हितं शरणमधिकम्; सर्वजनीयम् ॥५३९॥

वा०—महाजनादृष्टम् नित्यम् ॥५४०॥

महाजन शब्द से ठग्न प्रत्यय नित्य ही । जैसे—महाजनाय हितं महाजनमधिकम् ॥५४०॥

वा०—राजाचार्याभ्यां तु नित्यम् ॥५४१॥

भोग शब्द जिसके उत्तरपद में ही, ऐसे राजन् शीर आचार्य शब्दों से का प्रत्यय नित्य ही है । जैसे—राजभोगाय हितं राजभोगीयः ॥५४१॥

वा०—आचार्यादिनामकम् ॥५४२॥

आचार्य शब्द से परे शरण न ही है । जैसे—आचार्य-भोगीयः । यहाँ केवल राजन् शीर आचार्य शब्दों से का नहीं होता, किन्तु शरण ही बना रहता है ॥५४२॥

सर्वपुरुषाभ्यां यद्विद्वां ॥५४३॥ — अ० १ । १ । १० ॥

हित शब्द में अनुधीनसर्व शब्द शीर पुरुष प्रातिपदिकों से उपासक करके का शीर ठग्न प्रत्यय ही । जैसे—सर्वसर्वे हितं सर्वम्; पुरुषाय हितं पुरुषेयम् ॥५४३॥

१. यह निम्नजन आदि शब्दों के सर्वधारक समाज में ही महाजन शब्द से अनुधीन समाज में प्रत्यक्षितान् सम्भन्धना बाह्य, शीर शब्द समाज में का प्रत्यय ही होता । जैसे—निम्नजनीयम्; पुरुषजनीयम्; सर्वजनीयम्; महाजनीयम् ॥

वा०—सर्वाणामस्य वा सत्त्वमम् ॥५४४॥

सर्वे शब्द से वा प्रत्यय विकल्प करने हो । जैसे—सर्वाणि हितः सर्वाणि ॥५४४॥

वा०—पुरुषाद्व्यविकारसमूहैककृतेषु ॥५४५॥

पुरुषोत्तमस्य पुरुष शब्द से पुरुष विकार और समूह कर्तों में तथा तृतीयान्तमर्थ से कृत कर्त में कृत् प्रत्यय हो । जैसे—पौरुषेयो वयः, पौरुषेयो विकारः, पौरुषेयः समूहः, पौरुषेयो ग्रन्थः ॥५४५॥

तदर्थं विकृतेः प्रकृती ॥५४६॥ - अ० २।१।१२॥

प्रकृति कर्तृत् कारण वहाँ सम्बन्ध रहे, वहाँ अनुभूतिमर्थ विकृतिवाची प्रातिपदिक से सम्बन्धित प्रत्यय हो । जैसे—अङ्गारेभ्यो हितानि काष्ठानि अङ्गारोपाणि काष्ठानि; प्राकारीवा इष्टका; वाङ्मयं वाङ्; विद्मन्-कार्याणि इत्यादि ।

यहाँ 'तदर्थं' ग्रहण इसलिये है कि—वचनों वाचाः; वाचानां सत्त्वमः, यहाँ प्रत्यय न हो । 'विकृति' ग्रहण इसलिये है कि—उदकार्थः कृपः । 'प्रकृति' ग्रहण इसलिये है कि—अस्वार्थ कोटी^१, वहाँ छ प्रत्यय न हो ॥५४६॥

तदस्य तदस्मिन् स्पर्शदिति ॥५४७॥

—अ० २।१।१६॥

१. यहाँ प्रकृतियुक्त से उपादानकारण सम्बन्धना चाहिये, क्योंकि विकृति शब्द कर्तृत्वमे पाता है । तबबार का उपादानकारण लोका है, और भाग नहीं, इसी से वहाँ छ प्रत्यय नहीं होता ।
२. इस सूत्र में स्पर्श किंवा सम्भासना कर्तृत् से है कि उपादा वा उसमें जो होने का सम्भव हो, और उक्ति शब्द विभक्ता से निवे है, कि उसमें अस्वार्थ विचलित हो ॥

मध्यस्थं धीर लक्ष्यमध्यं मे स्वात् समानाधिकरण प्रथमासक्यं
प्रातिपदिक मे मयाविहित प्रत्यय ह्यौ । [जेसे] प्रकारमात्रा-
मिष्टकानां स्वादिनि प्राकारीया इष्टकाः; प्रासादीय दाह; प्राकारी-
शक्तिम् देजे स्वात् प्राकारीमी देना, प्रासादीया शुनिः इत्यादि ।

प्रासादी देवदलनम् स्वान्, यही प्रत्यय इसलिये नहीं होता कि
यहा प्रकृति विकृति का प्रकरण है, देवदल प्रासाद का कारण नहीं
है ॥२४४॥

प्रत्ययलेखकम् ॥२४५॥ --अ० ४ । १ । १८ ॥

यह अधिकार सूत्र है । (किन्तु सूत्र किंवा चेद्विधिः) इस सूत्र से
पुनः पुनः जो जो प्रत्ये कहें, उन उन में सामान्य से ठक् प्रत्यय हीना ।
जैसे -आन्दायनं सर्वमपि आन्दायनिकः इत्यादि ॥२४५॥

आह्विमीपुच्छसङ्ख्यापरिमाणादुक् ॥२४६॥

--अ० ४ । १ । १९ ॥

ठक् अधिकार के सम्बर्णन यह ठक् प्रत्यय का अधिकार उसका
वाचक किया है । (यदहंति) इस सूत्र में जो अहं शब्द है, यही ठक्
ठक् प्रत्यय का अधिकार वाक्या चाहिये, परन्तु याह् सम्बर्णन यही
अभिनिधि अर्थ में है । इसी से अहं अधिकार में भी ठक् होता है ।

गोपुच्छ सख्या धीर परिमाणाधिकारों से ठक् का विशेष होने
में लक्ष्य अर्थों में ठक् ही होता है । जैसे - गोपुच्छेन कीलं गोपुच्छिकम् ।
संख्या—वायिकम् । परिमाण—आयिकम्, कौटुकिम् इत्यादि ।

॥२४६॥

संख्यायां प्रालिख्यन्तायाः कन् ॥२४७॥

--अ० ४ । १ । २० ॥

जिस संज्ञा के घन में ति और न् कन्ध न हों; उससे यहाँवें धर्षों में टन् प्रत्यय हो। यह टन् का धपकार है। जैसे—
पञ्चभिः कीत भटः पञ्चकः; बहुकः, गणकः।

यहाँ 'सिद्धन्त सप्तन्त का निषेध' इसलिये है कि—साध्यातिकः;
वत्सादिकन्तः, यहाँ कन् प्रत्यय न होवे ॥५३०॥

सङ्घर्षर्द्धं पुर्वद्विगोर्द्धं गर्भंजायाम् ॥५१२॥

—अ० ३।१।३८॥

जिस प्रातिपदिक के पुर्व सङ्घर्षर्द्ध हो, उन और द्विगुमास प्रातिपदिक से यहाँवें धर्षों में संज्ञाविषय की स्त्री के प्रत्यय का लुक् हो। जैसे—सङ्घर्षर्द्धकंसेन कीतसङ्घर्षर्द्धकंसम्; द्विकंसम्; त्रिकंसम्; सङ्घर्षर्द्धपूर्वम्, द्विपूर्वम्, त्रिपूर्वम्।

यहाँ 'संज्ञा का निषेध' इसलिये है कि—राज्यन्तोहित्वम्, राजकथानिकम्, यहाँ लुक् न होवे ॥५३१॥

तेन कीतम् ॥५१३॥ —अ० ३।१।३९॥

टन् से लेके तेरह (१५) प्रत्यय हैं, उनका धर्ष और सम्बन्धविधिलि इसी सूच से जानना चाहिये।

कीत धर्ष में लुतोद्याप्यन्धे प्रातिपदिक से महाविहित कर्, घादि प्रत्यय होंगे। जैसे—सप्तसवा कीत साप्ततिकम्; साप्तीतिकम्; नष्टिकम्; पाणिकम्, पादिकम्; मादिकम्; रात्र्यम्; शतिकम् इत्यादि^१ ॥५३२॥

१. देवचनेन कीतम् इत्यादि वाक्यों में प्रत्यय इसलिये नहीं होता कि वाक्य में देवचरित्त घादि कर्द्धों ने कीत धर्ष का बोझ नहीं होता ॥

तस्य निमित्तं संयोगोत्पत्ती ॥३३३॥

— अ० ३ । १ । ३३ ॥

जो निमित्त कार्य में संयोग वा उत्पत्तिसम्बन्धी होवे, तो समीपस्थाने प्रातिपदिक में क्वाबिहित प्रत्यय ही । जैसे—तस्य निमित्तं संयोगः शयः ; शक्तिः ; आश्रयः । तस्य निमित्तमुत्पत्तः शयः शक्तिः ; आश्रयः इत्यादि ॥३३३॥

वा -- तस्य निमित्तप्रकरणे वातवित्तमैक्यमयः

शयनकोपनयोः शयनङ् शयानम् ॥३३४॥

शान्ति और कुपित होने कार्य में वात वित्त और शेषम शब्दों से ङ् प्रत्यय होवे । जैसे—शयनः शयनं कोपनं वा शान्तिकम् ; वैशिकम् ; श्वेतिकम् ॥३३४॥

वा० — शान्तिवातान् ॥३३५॥

शान्तिवात शब्द से भी शान्ति और कोपन कार्य में ङ् प्रत्यय होवे । जैसे—शान्तिवान् शयनं कोपनं वा शान्तिकम् ।

ये दोनों शान्तिक अपूर्वविधायक हैं, क्योंकि इन शब्दों से ङ् प्रत्यय किसी सूत्र शरके प्राप्त नहीं है ॥३३५॥

सर्वसूत्रिपृथिवीभ्यामण्यत्नी ॥३३६॥

— अ० ३ । १ । ३६ ॥

१. सर्वसूत्र का प्रतिपद कभी तथा कदाही के साथ सम्बन्ध होने की शक्ति नहीं है । और ज्ञान उसकी नहीं है जो कोई सम्बन्ध वा सम्बन्धित करने में है, उनके किसी दूसरे कार्य का होना सम्भव नहीं है । जैसे किसी विज्ञानी के लिए तो वह शक्ति नहीं है । वह एक पक्ष में विद्या ही जान है ॥

संयोग धीर उत्थातसम्बन्धी विहित धर्म में बढीसमर्थ सर्वभूमि धीर पृथिवी प्रातिपदिक से यथासंख्य करके धन् धीर धन् प्रत्यय होंगे । जैसे—सर्वभूमेनिमित्तं संयोग उत्थातो वा सार्वभौमः; पाथिवो वा । यहाँ धनुस्तित्त्वादिबन्ध में होने से सर्वभूमि शब्द को उभयपदवृद्धि होती है ॥३२६॥

तस्यैवधरः ॥३२७॥ —स० ३ । १ । ४२ ॥

बढीसमर्थ सर्वभूमि धीर पृथिवी प्रातिपदिक से ईश्वर धर्म में यथासंख्य करके धन् धीर धन् प्रत्यय होंगे । जैसे—सर्वभूमेरीश्वरः सार्वभौमः; पाथिवो वा ॥३२७॥

तत्र विहित इति च ॥३२८॥ . स० ४ । १ । ४३ ॥

कृतमीश्वर्य सर्वभूमि धीर पृथिवी शब्द से विहित नाम प्रसिद्धि धर्म में धन् तथा धन् प्रत्यय होंगे । जैसे—सर्वभूमी विहितः सार्वभौमः; पाथिवो वा ॥३२८॥

तस्य बाधः ॥३२९॥ —स० ३ । १ । ४४ ॥

बढीसमर्थ प्रातिपदिक से सेत धर्म बाध्य रहे, तो यथाविहित प्रत्यय होंगे । बाध कहते हैं सेत को, क्योंकि उसमें जो बाध बाध बोधे जाते हैं । [जैसे—] प्रत्ययव बाधः शीघ्र प्राप्तिवन्; शीघ्रवन्; स्मृतिवन्, इत्यादि ॥३२९॥

तदस्मिन् बुद्ध्यायत्ताभ्युत्थकोवदा दीयते ॥ ३३० ॥

—स० ३ । १ । ४५ ॥

कृतम्पदार्थ में प्रयत्नात्मक प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय होंगे, जो बुद्धि यावत्ताभ्युत्थ धीर उभया में धर्म दीयते किन्ना के कर्मवाच्य होंगे तो ।

जो इन्द्रिय स्वप्न में देते हैं उस ही बुद्धि कहते हैं। घाम आदि में जो जमीनार का भाव होता है वह घाम। जो दुकानदारी के व्यवहार में घून वस्तु से अश्लिष्ट इन्द्रिय की शक्ति है, उसको लाल। राखा के भाव की शुरुक और घूम लेने की उपदा कहते हैं।

जैसे- पञ्चास्मिन् बुद्धिर्वा घायो वा लाभो वा उपदा वा दीयते पञ्चकः, मातकः, शयः, शक्तिकः, साहसः इत्यादि ॥३६०॥

वा०—चतुर्थार्थ उपलब्धस्वानम् ॥ ५६२ ॥

बुद्धि आदि दीयते किंवा के कर्मबाध्य हों, तो चतुर्थों के अर्थ में भी प्रथमात्मर्थ शक्तिपक्षिक से यथाविहित प्रत्यय होंगे। जैसे—पञ्चास्मै बुद्धिर्वा घायो वा लाभो वा उपदा वा दीयते पञ्चको देवदत्तः इत्यादि ॥३६१॥

तद्वदति वदस्यावहति भारद्वाजादिभ्यः ॥ ५६२ ॥

—वा० ५६१ ॥ ५० ॥

द्वितीयात्मर्थ, वंश आदि गणपक्षिक शब्दों से परे जो भार कर्म, लक्षण से दृष्टि वदति और आवहति किंवाघों के कर्त्ता अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—वंशभारं दृष्टि वदति आवहति वा शीतभारिकः, शीतलभारिकः, बलवत्तभारिकः^१।

१. इस सूत्र का दूसरा अर्थ यह भी होता है कि जो भारकर्म वतादि शक्तिपक्षिक ५ शब्दों से पहले आदि अर्थों में यथाविहित प्रत्यय हों। जैसे—वा० दृष्टि वदति शक्तिपक्षिक, शक्तिपक्षिकः इत्यादि ॥

यहाँ 'भार' बहुवचनस्थिति है कि—भारवशं हरति, यहाँ न हो। और 'अंशादि' एकलिंगस्थिति है कि—अंशभारं हरति, यहाँ भी प्रत्यय न हो ॥ ३६२ ॥

सम्भवत्प्रवृत्तिरिति वचति ॥३६३॥ —अ० ४।१।३२॥

द्वितीयात्मक प्रतीतिपदिक से संभव सम्भावित और वक्ताने प्रयोगों में प्रयोगविहित प्रत्यय हों। जैसे—प्रत्यं सम्भवति प्रवृत्तिरिति वचति वा प्रातिपदिकः; कौटुम्भिकः; खारीकः; प्रत्यक्षानुमानं सत्यं वा यं स्ववहारं प्रति सम्भवति वा प्रातिपदिकः; आनुमानिकः; आम्बिको वा स्ववहारः इत्यादि ॥ ३६३ ॥

वा०—तत्प्रवृत्तीति द्वीवारणं च ॥३६४॥

द्वितीयात्मक द्वौ प्रतीतिपदिक से वक्ताने प्रयोगों में चन् और ठञ् प्रत्यय होंगे। जैसे—द्वौ वचति द्वौचो द्वौचिको वा वाङ्मयी ॥ ३६४ ॥

सौजस्योत्पत्त्यस्त्वभूतयः ॥३६५॥ —अ० ४।१।३५॥

अस्य भूतय और सेवन प्रयोगों में प्रथमात्मक प्रतीतिपदिक से एकलिंग के प्रयोगों में प्रयोगविहित प्रत्यय होंगे। जैसे—पञ्चवाचाः वस्तानि भूतयो वाजस्य व्यावहारस्य पञ्चकः; सप्तकः; आङ्गुलः इत्यादि ॥ ३६५ ॥

तदस्य परिमाणम् ॥३६६॥ —अ० ४।१।३६॥

प्रत्ययों में परिमाणवाची प्रथमात्मक प्रतीतिपदिकों से प्रयोगविहित प्रत्यय होंगे। जैसे—अस्यः परिमाणमस्य प्रातिपदिको रतिः; खारीकः; अस्मः; सप्तिकः; आङ्गुलः; द्वौचिकः; कौटुम्भिकः;

वर्षशतं परिमाणमस्य वार्षसत्त्विकः; वार्षसहस्रिकः; षष्टिजीवितं
परिमाणमस्य षष्टिकः इत्यादि ॥ ५६६ ॥

सङ्ख्यायाः संज्ञासङ्ख्यमुच्चाध्यक्षकेषु ॥५६७॥

—सं ५ । १ । २५ ॥

पूर्वसूत्र की अनुवृत्ति यहाँ बली घाती है ।

संज्ञा सङ्ख्य सूत्र और अष्टमन सर्वों में परिमाणसमानाधि-
करण प्रथमासमर्थ संख्यावाची प्रातिपदिक से बली के सर्व में
सहाप्रान्त प्रत्यय होवे ॥ ५६७ ॥

वा०—संज्ञायां स्वार्थे ॥५६८॥

संज्ञा सर्व में कहे प्रत्यय स्वार्थ की संज्ञा में होवे । जैसे—
वर्षर्षेव वरुचकाः शकुनयः; यय एव तिकाः शालकूपनाः । सङ्ख्य
सर्व में—वर्षव परिमाणमस्य वरुचकः सङ्ख्यः; वरुचका वृक्षाः;
विकः; षष्टको वा । सूत्र सर्व में—षष्ट्यावध्यायाः परिमाणमस्य
सूत्रस्य षष्टकं वाचिनीयं सूत्रम्; वरुचको जीतमी न्यायः; द्वादशिका
जैमिनीया जीमाहा; चतुष्कं ख्यातीयं सूत्रम्; दशकं वेदाप्रपटीयम्;
विकं कायकृतसम् ।

अध्यायी का समुदाय भी सङ्ख्य सर्व में था जाता है, फिर
सूत्रग्रहण पूर्वक् इत्यतिथे है कि—सङ्ख्य सर्व बहुधा प्रातिपदों के
समुदाय में जाता है । अष्टमन सर्व में वरुचकोऽधीतः; सप्तकोऽ-
धीतः; षष्टकः; वचकः इत्यादि ॥ ५६८ ॥

वा०—स्तीने ऽविधिः वरुचदशाधयः ॥५६९॥

स्तीकपरिमाणसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ वरुचदशादि
प्रातिपदिक से बली के सर्व में ४ प्रत्यय होवे । जैसे—वरुचदश

परिमाणमस्य कर्तुमस्य पञ्चदशः कर्तुमः, सप्तदशः एकविंशः इत्यादि ॥ २६९ ॥

वा०—शतशतोदितिशतशतसि ॥२७०॥

शत् और शतु शिनके अन्त में ही, उन प्रातिपदिकों से वैदिकप्रयोग विषय में द्विनि प्रत्यय हो । जैसे—पञ्चदश दिनानि परिमाणमेवां पञ्चदशिनोऽर्द्धमासाः; शिशिनो मासाः ॥ २७० ॥

वा०—विंशतिश्च ॥२७१॥

विंशति शब्द से भी द्विनि प्रत्यय हो । जैसे—विंशतिः परिमाणमेवां विंशिनोऽर्द्धमासः ॥ २७१ ॥

पञ्चत्विंशतिविंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षट्षप्तत्य-
शोत्तिनवतिशतम् ॥ २७२॥ —स० १ । १ । २९ ॥

परिमाण शब्द में पञ्चत्विंशति शब्द निपातन किये हैं । जो कुछ कार्य्य सुचों से सिद्ध नहीं होगा, सो सब निपातन से सिद्ध जानना चाहिये । जैसे—पञ्चत्विंशत् शब्द में पञ्चशत् शब्द के द्वि भाग का लोभ और नि प्रत्यय किया है । पञ्च परिमाणमस्य तत् पञ्चदशम् ।

दशत् शब्द को त्रिन् आदेश और शतित् प्रत्यय हो । जैसे—द्वी दशती परिमाणमेवान्ते विंशतिः पुरुषाः । तीन दशत् शब्दों को त्रिन् आदेश और शत् प्रत्यय । जैसे—चत्वी दशतः परिमाणमेवान्ते त्रिंशत् । चार दशत् शब्दों को चत्वारिन् आदेश और शत् प्रत्यय । जैसे—चत्वारो दशतः परिमाणमेवां ते चत्वारिंशत् । पांच दशत् शब्दों को पञ्चा आदेश और शत् प्रत्यय । जैसे—पञ्च दशतः परिमाणमेवां ते पञ्चाशत् । छः दशत्

शब्दों को वचन आदेश और ति प्राप्त । जैसे—बहु दशतः परिमाणमेषां ते वृत्तिः ।

सात दशतु शब्दों को सप्त आदेश और ति प्राप्त । जैसे—सप्त दशतः परिमाणमेषां ते वृत्तिः । आठ दशतु शब्दों को अष्टी आदेश और ति प्राप्त । जैसे—अष्टी दशतः परिमाणमेषां ते वृत्तिः । नव दशतु शब्दों को नव आदेश और ति प्राप्त । जैसे—नव दशतः परिमाणमेषां ते वृत्तिः । और दश दशतु शब्दों को दश आदेश और ति प्राप्त निपातन किया है । जैसे—दश दशतः परिमाणमेषां ते वृत्तिः ॥ १७२ ॥

पञ्चदशती वर्ये वा ॥१७३॥ — घ० २ । १ । ५० ॥

पहले संख्यावाची पञ्च और दश शब्द से वचन प्राप्त है, उसका यह व्यवहार है, और पद्य में वचन भी ही जाता है ।

पञ्चवचन और दशतु से वृत्ति प्राप्तवान् वर्य और परिमाण अर्थ में विकल्प करके निपातन किये हैं । जैसे—पञ्च परिमाणमस्य पञ्चदशतुः, दशदशतुः; पञ्चको वर्यः; दशको वर्यः ॥ १७३ ॥

तद्वर्हति ॥१७४॥ — घ० २ । १ । ५१ ॥

कोशिका अर्थ में द्वितीयाक्षवर्धे आतिपदिक से कथाविहित प्राप्त हो । जैसे—कोशिकाक्षवर्हति अतिपदिकः; काक्षवृत्तिकः; काक्षः; वृत्तिक, आदि ॥ १७४ ॥

यज्ञतिवन्मयां प्रसज्जो ॥१७५॥ — घ० २ । १ । ५२ ॥

यह मुख ठग्न आशय का वाक्य है ।

वा०—कोशशतपौजनशतपौष्ट्यसंख्यानम् ॥ १८० ॥

बचने एवं में द्वितीयान्वयं कोशशत और पौजनशत प्रातिपदिक से भी उद्गृ. प्रत्यय हो। जैसे—कोशशत गच्छति कोशशतिकाः; पौजनशतिकाः ॥ १८० ॥

वा०—तृतीयभिगमनमर्हतीति च ॥ १८१ ॥

यहां बचाने से पूर्व शतिका की अनुवृत्ति होती है।

निरन्तर बचने एवं में तृतीयकोशमयं कोशशत और पौजनशत शब्द से भी उद्गृ. प्रत्यय होने। जैसे—कोशशतावधिगमनमर्हति कोशशतिका भिक्षुकः; पौजनशतिका प्राचार्यः ॥ १८१ ॥

उत्तरपथेनाद्भुतं च ॥ १८२ ॥ —अ० १।१।३३ ॥

यहां बचाने से गच्छति क्रिया की अनुवृत्ति होती है।

प्रदूष करने और बचने एवं में तृतीयान्वयं उत्तरपथ प्रातिपदिक से उद्गृ. प्रत्यय होने। जैसे—उत्तरपथेनाद्भुतमीत्तरपथिकम्; उत्तरपथेन गच्छति मीत्तरपथिकः ॥ १८२ ॥

वा०—आद्भुतप्रकरणे वारिजङ्गलस्थलकान्तारपूर्वभावाद्युप-
संख्यानम् ॥ १८३ ॥

ये स्थाने और बचने एवं में वारि जङ्गल स्थल और कान्तार शब्द मिलने पूर्व ही, ऐसे द्वितीयान्वयं पथ प्रातिपदिक से उद्गृ. प्रत्यय हो। जैसे—वारिपथेनाद्भुतं वारिपथिकम्; वारिपथेन गच्छति वारिपथिकः; जङ्गलपथेनाद्भुतं जङ्गलपथिकम्; जङ्गलपथेन गच्छति जङ्गलपथिकः; स्थलपथेनाद्भुतं स्थलपथिकम्; स्थलपथेन गच्छति स्थलपथिकः; कान्तारपथेनाद्भुतं कान्तारपथिकम्; कान्तारपथेन गच्छति कान्तारपथिकः ॥ १८३ ॥

शा०—अजपयशङ्कुपथाभ्यां च ॥१८४॥

अजपय और शङ्कुपथ शब्द से भी उक्त सर्गों में ठग् प्रत्यय हो । जैसे—अजपयेनाहृतं गच्छति वा अजपयिकः; शङ्कुपथेनाहृतं गच्छति वा शङ्कुपथिकः ॥१८४॥

शा०—मधुकमरिचघोरम् स्थलात् ॥१८५॥

मधुक और मरिच सम्बन्ध हो, तो स्थलशब्द से घरे जो पथ प्रातिपदिक उक्तसे में जाने सर्ग में कम् प्रत्यय होवे । जैसे—स्थलपथेनाहृतं स्थलपथं मधुकम्; स्थलपथं मरिचम् ॥१८५॥

कालात् ॥१८६॥ —अ० ३ । १ । ७५ ॥

यह अधिकार सुष है । यह में जाने जो-जो प्रत्यय विधान करें, सो सो सामान्य करके कालवाची प्रातिपदिक में जानी । जैसे—मासेन निर्वृत्तं कार्यं मासिकम्; मास्यमासिकम्; सावसरिकम् इत्यादि ॥१८६॥

तेन निर्वृत्तम् ॥१८७॥ —अ० ३ । १ । ७६ ॥

सिद्ध होने सर्ग में तृतीयान्तसर्ग कालवाची प्रातिपदिक में ठग् प्रत्यय होवे । जैसे—मुहूर्तेन निर्वृत्तं भोजनं मीहूर्तकम्; प्राह्निकम्, सप्ताहेन निर्वृत्तो विवादः साप्ताहिकः; पक्षिकः; मास्य निर्वृत्तमाह्निकम् इत्यादि ॥१८७॥

तमघीरहो भूतो भूतो भावी ॥१८८॥

—अ० ३ । १ । ७७ ॥

अघीष्ट कहते हैं लकारपूर्वक ठहरने को, जो धन देकर खरीद लिया हो उस लोकर को भूत, भूत हो चुकने को, और

भावी जो धामे होवा इसको समझना चाहिये । इन प्रसोष्ट आदि वर्षों में द्वितीयात्मसर्व कालवाची प्रातिपदिकों से ठग्न प्रत्यय हो ।

जैसे—मासवाचीष्टी मासिक मासार्थः; पक्षम्भृतः पक्षिकः; कर्मकरः; मष्टाद्भूतः मत्प्राद्विको व्याधिः; पीर्यमासी भावी पीर्यमासिक उत्सवः इत्यादि ॥५८४॥

मासाद्भवति यत्तुञ्जी ॥५८६॥ —अ० ३ । १ । ५१ ॥

यद् सूत्र ठग्न प्रत्यय का अपवाद है । वहां प्रसोष्ट आदि वर्षों का अधिकार तो है, वरन्तु योग्यता के न होने से एक भूत वर्ष ही लिया जाता है ।

द्वितीयात्मसर्व मास शब्द से संबन्धता सम्भवान् होने, तो यत् और शब्द प्रत्यय हों । जैसे—मासं भूतो मास्यः, मासीनी वा मिश्रुः ॥५८९॥

तेन परिजम्बलभ्यकार्यमुकरम् ॥५९०॥

—अ० ३ । १ । ९३ ॥

जीन सकने, प्रत्यक्ष होने योग्य, और जो अन्धे प्रकार सिद्ध हो, इन वर्षों से तृतीयात्मसर्व कालवाची प्रातिपदिक से ठग्न प्रत्यय होने ।

जैसे—पक्षेन परिनेतुं सम्भवते पक्षिकः पक्ष्वाभः; मासेन सम्बन्ध मासिकं पक्षम्; द्वादशाहेन कार्यं द्वादशाहिकं पक्षम्; जर्षेण सूकरो वार्षिकः द्वासादः ॥५९०॥

तदस्य बहुवचनार्थम् ॥५९१॥ —अ० ३ । १ । ९४ ॥

प्रथमात्मसर्व कालवाची प्रातिपदिक के पक्षी के वर्ष में ठग्न प्रत्यय हो, बहुवचनार्थ बाध रहे तो । जैसे—बहुविद्यवत्ता यस्य

वृद्धाचार्यस्य पद्विभक्त्यादिभ्यः वृद्धाचार्यम्; प्रष्टावशादिकम्;
नवादिभ्यः ।

इस ग्रन्थ में जवाहरिय ने द्वितीया विभक्ति काल के अत्यन्त संयोग में मान के खर्च किया है । जो ग्रन्थ में जो काल के साथ अत्यन्त संयोग है ही नहीं, उदाहरण में हो सकता है । फिर ग्रन्थ में द्वितीया क्यों कर हो सकती है । और द्वितीयात्मक विभक्ति मानने से प्रत्ययार्थ का सम्बन्ध उद्धारारी के साथ होता है । जो अन्तिम लोगों के अधिपत्य से विरुद्ध है । क्योंकि अनुसृष्टि में 'पद्विभक्त्यादिकम्' यह पद वृद्धाचार्य का विशेषण रक्खा है । फिर इन लोगों का सर्व आदर के योग्य नहीं है ॥५९१॥

वा०—महानाम्नादिभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्य उपसंख्यानम्

॥५९२॥

षष्ठीसमर्थ महानाम्नी आदि प्रातिपदिकों से सामान्य अर्थ में ठम् प्रत्यय हो । जैसे—महानाम्ना इत्यर्थं माहानामिकम्; बीदानिकम् इत्यादि ॥५९२॥

वा०—तच्चरतीति च ॥५९३॥

यहाँ चकार से पूर्व कालिक का अनुसृष्टि होती है । महानाम्नी नाम अन्त्यार्थों का है, उनके सहचारी अनुसृष्टन का ग्रहण तत् शब्द से समझना चाहिये ।

द्वितीयात्मक महानाम्नी आदि प्रातिपदिकों से आचरण अर्थ में ठम् प्रत्यय होवे । जैसे—महानाम्नीरचरति माहानामिकः^१; आविष्टमवतिकः इत्यादि ॥५९३॥

१. यहाँ नामी शब्द में (भगवते लड़के) इस कालिक से पुंलङ्कार होकर नाम्य शब्द के विभाव का लोप हो जाता है ॥

वा०—अथान्तरदोषाविषयो द्विनिः ॥३९४॥

द्वितीयाश्रमार्थे अथान्तरदोषा आदि प्रातिपदिकों से आचरण अर्थ में द्विनि प्रत्यय होवे । जैसे—अथान्तरदोषानाचरति अथान्तरदोषी, द्विनिवन्ती इत्यादि ॥३९४॥

वा०—अष्टाचत्वारिंशत् इक्षुश्च ॥३९५॥

वहाँ चरति किया और द्विनि प्रत्यय की अनुवृत्ति पूर्व कालिकों से आती है ।

द्वितीयाश्रमार्थे अष्टाचत्वारिंशत् प्रातिपदिक से आचरण अर्थ में इक्षुं और द्विनि प्रत्यय हों । जैसे—अष्टाचत्वारिंशद्विषाणि अष्टाचत्वारिंशकः, अष्टाचत्वारिंशी ॥३९५॥

वा०—चतुर्मासिषानां यज्ञोपनय ॥३९६॥

वहाँ भी पूर्व की मन्त्र अनुवृत्ति आती है ।

द्वितीयाश्रमार्थे चतुर्मास्य प्रातिपदिक से आचरण अर्थ में इक्षुं और द्विनि प्रत्यय होवे । जैसे—चतुर्मासिषानि यज्ञान्वाचरति चतुर्मासिकः, चतुर्मासी ॥३९६॥

वा०—चतुर्मासिष्यो यज्ञो तत्र भवे ॥३९७॥

सप्तमीसप्तम्ये चतुर्मास शब्द से भव अर्थ यज्ञ होवे, तीस्र प्रत्यय हो । जैसे—चतुर्षु मासेषु भवार्वाचतुर्मासिवा यज्ञाः ॥३९७॥

वा०—संज्ञायामण् ॥३९८॥

अथान्तरदोषा अन्विष्टेय ही, ती सप्तमीसप्तम्ये चतुर्मास आदि शब्दों में ण् प्रत्यय होवे । जैसे—चतुर्षु मासेषु भवा चतुर्मासी दीर्घनाम्ने अण्वादी कालिकी, कालमुनी; अनी इत्यादि ॥३९८॥

तस्य च दक्षिणा यज्ञाद्विभक्तः ॥३९९॥

—अ० ३।१।१४॥

अष्टीसमर्थ यज्ञवाची प्रातिपदिकों से दक्षिणा अर्घ्य में ठग्न प्रत्यय हो। जैसे—अग्निष्टोमस्य दक्षिणा आग्निष्टोमिकी; आश्वमेधिकी, वाजपेथिकी; राक्षसुषिकी इत्यादि।

यहां 'याच्या' ग्रहण इसलिये है कि—इस कालाधिकार में कालगमत्याधिकरण वर्तों का ही ग्रहण न हो जाये ॥३९९॥

तेन यथाकथाचहस्ताभ्यां यजती ॥४००॥

—अ० ३।१।१५॥

यथाकथाच यह अन्वयसमस्त अनादर अर्थ में आता है। और पूर्व श्रुत से 'दीयते' और 'कार्यम्' इन दो पदों की अनुवृत्ति आती है।

तृतीयासमर्थ यथाकथाच और हस्त प्रातिपदिक से देने और करने अर्थों में न और यह प्रत्यय यथासक्य करके हों। जैसे—यथाकथाच दीयते कार्यं वा यथाकथाचम्; हस्तेन दीयते कार्यं वा हस्तसम् ॥४००॥

सम्वादिनि ॥४०१॥ - अ० ३।१।१६॥

यहां पूर्व से तृतीयासमर्थ की अनुवृत्ति आती है।

अवश्य सिद्ध होनेवाला कर्त्ता वाच्य रहे, तो तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से ठग्न प्रत्यय होवे। जैसे—ब्रह्मकर्त्तव्यं सम्प्रचक्षते विद्या ब्रह्मवाचिकी; उपकारेण सम्प्रचक्षते दीयकारिकी अर्थः; अर्थेण सम्प्रचक्षते दामिकं शुभम् इत्यादि ॥४०१॥

कर्मविधाद्यत् ॥६०२॥ — अ० ३ । १ । १०० ॥

सम्पन्न होने पर्यं में तृतीयालम्ब्य कर्म और तेष प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय हो। यह ठञ् का धनवाद है। [जैसे—] कर्मण्या सम्पद्यते कर्मण्यं शरीरम्; तेषेन सम्पद्यते वेद्यो यतः, वेद्या नटिनी।

यही वेद्या शब्द सात कल धकार से प्रयुक्त है, सो ठीक नहीं। क्योंकि जो धर्मे उनमें यत् एकता है वह यही है। और विना प्रवेशने शानु से भी बन सकता है, परन्तु ठीक ठीक धर्म भक्तिकारी में नहीं पटना ॥६०२॥

तस्य प्रभवति सन्तापविष्यः ॥६०३॥

—अ० ३ । १ । १०१ ॥

कतुर्थीलम्ब्य सन्ताप यादि प्रभवति प्रातिपदिकों से प्रभव यर्थात् सामर्थ्यवान् धर्मे में ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—सन्तापय प्रभवति सन्तापिकः; संश्रमाय प्रभवति साश्रमिकः; प्रयासाय प्रभवति प्रायानिकः ॥६०३॥

समयसकृदस्य प्राप्तम् ॥६०४॥ — अ० ३ । १ । १०४ ॥

प्राप्तमानाधिकरण प्रथमासमर्थ समय प्रातिपदिक से यथी के धर्मे में ठञ् प्रत्यय हो। जैसे—समयः प्रप्तोऽस्य सामयिक उदाहृः, सामयिक बन्धम्, सामयिकी दीवाभ्यासः, सामयिक-नीतिधम् इत्यादि ॥६०४॥

लब्धसि यत् ॥६०५॥ — अ० ३ । १ । १०५ ॥

यही यत् शब्द से यन् प्रत्यय प्राप्त है, लब्धका वह धनवाद है।

प्राप्तममानाधिकरण प्रथमात्मन्यर्थं अतु प्रातिपदिक से बध्नी के अर्थ में वैदिकप्रयोगविषयकः उप् प्रत्यय होवे । जैसे—अतुः प्राप्नोऽस्य अतिवः—अपन्ते योगिच्छं विवः; यहाँ यम् अत्यय के सिद्ध होने से असंज्ञा होकर परसंज्ञा का काम्यं उत्पन्न नहीं होता ॥६०५॥

प्रयोजनम् ॥६०६॥ —अ० २ । १ । १०५ ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रथमात्मन्यर्थं प्रातिपदिक से बध्नी के अर्थ में उप् प्रत्यय हो । जैसे—उपदेशः प्रयोजनमस्य योवदेशिकः; यत्प्रयामनिकः; कवी प्रयोजनमस्य कवीयः; पीरनः; अर्धः प्रयोजनमस्य अर्धमिकः; विनष्टा प्रयोजनमस्य वैजष्टिकः; पारोक्षिकः इत्यादि ॥६०६॥

अनुप्रवचनाविस्मयः ॥६०७॥ —अ० २ । १ । १११ ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रथमात्मन्यर्थं अनुप्रवचनादि गणपठित प्रातिपदिकों से बध्नी के अर्थ में लृ प्रत्यय हो । उप् का अपवाद है । [जैसे—] अनुप्रवचनं प्रयोजनमस्य अनुप्रवचनीयम्; अन्वापनीयम्; अनुवाचनीयम्; आरम्भणीयम् इत्यादि ॥६०७॥

**वा०—विधिपुरिषतिरहिषदिप्रवृत्तेरनात्सपूर्वपदाहुप-
संस्थानम् ॥६०८॥**

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रथमात्मन्यर्थं विधि पुरि षति रहि षदि इन लृप् प्रत्ययान्त आनुषों के प्रयोग जिसके अन्त में हो, उन प्रातिपदिकों से लृ प्रत्यय होवे । जैसे—गृहप्रवेशनं प्रयोजनमस्य गृहप्रवेशनीयम्; प्रवातूरणीयम्, अथवाप्रवतनीयम्; प्रासादा-रोहणीयम्; गोप्रपदनं प्रयोजनमस्य गोप्रपदनीयम् ॥६०८॥

या०—स्वर्णादिभ्यो ङत् ॥ ६०९ ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण स्वर्णादि प्रातिपदिकों से ङ्ठी के अर्थ में ङत् प्रत्यय हो । जैसे—स्वर्णः प्रयोजनमस्य स्वर्ग्यम्; वज्रस्यम्; आमुष्यम् इत्यादि ॥ ६०९ ॥

वा०—पुष्पाहुवाचनादिभ्यो लुक् ॥ ६१० ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण अवभासनर्थं पुष्पाहुवाचन आदि प्रातिपदिकों से ङ्ठी के अर्थ में विहित प्रत्यय का लुक् होवे । जैसे—पुष्पाहुवाचनं प्रयोजनमस्य पुष्पाहुवाचनम्; स्वमित्वाचनम्; दानित्वाचनम् इत्यादि ॥ ६१० ॥

समापनार्हतपूर्वपदात् ॥ ६११ ॥ —घ० ६, १, ११२ ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रसमाप्त्यर्थं समापन शब्द जिसके अन्त में हो, उस प्रातिपदिकों से ङ्ठी के अर्थ में लृ प्रत्यय होवे । जैसे—छन्दः समापनं प्रयोजनमस्य छन्दः समापनीयम्; स्वाय-
समापनीयम्; आकरञ्चसमापनीयम् इत्यादि ॥ ६११ ॥

तेन तुल्यं क्रिया चेदुक्तिः ॥ ६१२ ॥

—अ० ६, १, ११२ ॥

तुल्य अर्थ क्रिया होवे, तो तुलीमात्रमर्थ प्रातिपदिक से बलि प्रत्यय होवे । जैसे—आह्वयनं तुल्यं वदह्वयवत्; मिहवत्; व्यास्रवत् इत्यादि ।

यहां 'क्रिया' बहुत इसलिए है कि—जहां गुण और द्रव्य का सादृश्य हो वहां प्रत्यय न होवे । जैसे—आवा तुल्यः स्मृतः; आवा तुल्यः सिद्धवत्, वही बलि प्रत्यय न होवे ॥ ६१२ ॥

तद्वहेम् ॥६१३॥ —अ० ३ । १ । ११३ ॥

भर्तुं शब्द में, द्वितीयसमर्थे प्रातिपदिक से वलि प्रत्यय होवे ।
जैसे—राजावमर्हति राजवन् पावनम्; ब्राह्मणवद्विद्याप्रचारः;
श्रमिवन् इत्यादि ॥६१३॥

तस्य भावस्तत्त्वतो ॥६१४॥ —अ० ३ । १ । ११४ ॥

जिस वृत्त के होने से शब्द का शब्द के साथ वाच्यवाचक
सम्बन्ध सम्भवा जाता है, उस वृत्त की विवक्षा में कर्षीसमर्थ
प्रातिपदिकमात्र से त्व और लृप् प्रत्यय हों ।

जैसे—ब्राह्मणस्य चाचो ब्राह्मणत्वम्, ब्राह्मणता; तस्य भावस्त-
त्त्वम्, तता; स्त्रीत्वम्, पुंसत्वम्, स्मृतत्वम्, स्मृतता; कुशत्वम्,
कुशता; चेतनत्वम्, चेतनता; जडत्वम्, जडता इत्यादि ।

यहाँ मे से के इस बाद की समाप्तिपर्यन्त त्व और लृप् प्रत्यय
का अधिकार सम्भवा बाहिए ॥६१४॥

वृष्यादिभ्य इमल्लिप्ता ॥६१५॥

—अ० ३ । १ । ११५ ॥

कर्षीसमर्थे वृषु आदि गणपठित प्रातिपदिकों से भाव शब्द में
इमलिच् प्रत्यय विकल्प करके होवे, वक्त में त्व और लृप् प्रत्यय
होवें ।

जैसे—वृषोर्बाहः प्रथिमा; सदिमा; सद्दिमा; लधिमा; बरिमा;
वृषुत्वम्, वृषुता; मुहुत्वम्, मुहुता; महत्त्वम्, महता; लघुत्वम्,
लघुता; गुह्यत्वम्, गुह्यता इत्यादि ॥६१५॥

कर्षवृहादिभ्यः श्यञ्च ॥६१६॥ —अ० ३ । १ । ११६ ॥

यहाँ बकर से इमलिच् और विकल्प की भी अनुमति
पाती है ।

पच्छीमवर्षे वर्षवाची श्रीर दृष्टादि प्रातिपदिकों से भाव वर्षे से व्यञ्ज् श्रीर इमन्निच् प्रत्यय हो । जैसे—शुक्लस्य भावः शीतत्वम्, शुक्लमा, शुक्लत्वम्, शुक्लता; काश्यपस्य, कृष्णिमा, कृष्णत्वम्, कृष्णता, नीलत्वम्, नीलिमा, नीलित्वम्, नीलता इत्यादि । दृष्टादिकों से—दाह्यत्वम्, दहिमा, दूह्यत्वम्, दूहता, पाण्डित्यम्, पण्डितिमा, पण्डितत्वम्, पण्डितता, मधुरस्य चाचो मधुर्यम्, मधुरिमा, मधुरत्वम्, मधुरता इत्यादि ॥६१६॥

गुरुवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ॥६१७॥

—घञ् २ । १ । १२४ ॥

जिन शब्दों से शीत उष्ण आदि गुणों का बोझ हो, उनको गुरुवचन कहते हैं । वहाँ लकार भाव वर्षे का सम्बन्ध होने के लिये है ।

पच्छीमवर्षे गुणवाची श्रीर ब्राह्मणादि प्रातिपदिकों से भाव श्रीर कर्म वर्षे में व्यञ्ज् प्रत्यय होये । जैसे—शीतस्य भावः कर्म वा शीतत्वम्; शीतत्वम्; शीतत्वम्, शीतता; उष्णत्वम्, उष्णता । ब्राह्मणादिकों से—ब्राह्मणस्य भावः कर्म वा ब्राह्मण्यम्; भीक्ष्यम्; भीक्ष्यत्वम्; भीक्ष्यता; आयुष्यम्; नैपुण्यम् इत्यादि ।

श्रीर सन्धिकार से एक श्रीर लम् भी होते हैं । [जैसे—] ब्राह्मणत्वम्, ब्राह्मणता इत्यादि । वहाँ से घाते भाव श्रीर कर्म दोनों शब्दों का अधिकार लगेगा ॥६१७॥

दा०—आतुर्बन्ध्यादीनां स्वार्थे उपसंख्यानम् ॥ ६१८॥

आतुर्बन्ध्यादि शब्दों से स्वार्थे में व्यञ्ज् प्रत्यय हो । जैसे—आकार एव उपसंख्यानम्; आतुराभ्यम्; नैजीक्यम्;

ऐकदशम्यम्; पाहृगुण्यम्; सैन्यम्; सास्त्रियम्; सासीप्यम्,
षीव्यम्, शीक्यम् इत्यादि ॥६१८॥

स्तेनाद्यस्तोषस्त ॥६१९॥ —अ० २ । १ । १२३ ॥

भान् और कर्म छर्च में स्तेन शब्द से यत् प्रत्यय और नकार
का जोष होवे । जैसे—स्तेनश्च भावः कर्म वा स्तेयम् ॥६१९॥

सकपुर्वः ॥६२०॥ —अ० २ । १ । १२४ ॥

भाव और कर्म छर्च में सकृ शब्द से य प्रत्यय होवे ।
जैसे—सकपुर्वः कर्म वा सकृम् ॥६२०॥

वा०—दूतवणिज्यो य ॥ ६२१ ॥

दूत और वणिक् शब्दों से भी य प्रत्यय हो । जैसे—दूतस्य
भावः कर्म वा दूत्यम्; वणिज्यम् । वणिक् शब्द का पाठ
वाह्यादिक्रम में होने से अत्र प्रत्यय भी हो जाता है । जैसे—
वणिज्यम् ॥६२१॥

परमन्तपुरोहितादिभ्यो यक् ॥६२२॥

—अ० २ । १ । १२५ ॥

सभ्योसमर्च पति शब्द जिनके छान्त में हो, उन और
पुरोहितादि प्रातिपदिकों से यक् प्रत्यय होवे भाव और कर्म छर्च
बाध्य रहे तो । जैसे—सेनापतेर्भावः कर्म वा सेनापत्यम्;
बालस्पत्यम्; गार्हस्पत्यम्, बार्हस्पत्यम्, ब्राजापत्यम् ।

अधिकार के होने से त्व तल् भी होते हैं । जैसे—सेनापतित्वम्;
सेनापतिता इत्यादि । पुरोहितादिसी से—पूरोहित्यम्;
राज्यम्; बाल्यम्; पुरोहितत्वम्, पुरोहिता इत्यादि ॥६२२॥

यह पञ्चमाख्या का प्रथम पाठ पूरा हुआ ॥

अथ द्वितीयः पादः—

आन्ध्यानां भवने क्षेत्रे खड्गः ॥ ६२३ ॥

—अ० ३।२।१॥

यहां बहुवचन का निर्देश होने में आन्ध के विशेषणों की शब्दों का ग्रहण होता है ।

चरटीसमर्थ आन्धविशेषणों की शब्दों से उत्पत्ति का स्थान सेत शब्द बाध्य रहे, तो खड्ग प्रत्यय हो । जैसे—बीधूमानां भवनं क्षेत्रं गीधूमोनम्; मोद्गीनम्; कीजलबीनम् इत्यादि ।

यहां 'आन्धवाचिनी का' ग्रहण इसलिये है कि—तुमानां भवनं क्षेत्रम्, यहाँ न हो । और 'सेत का' ग्रहण इसलिये है कि—गीधूमानां भवनं कुसूनम्, यहाँ भी खड्ग प्रत्यय न होवे ॥६२३॥

तत्सर्वविः पद्मपुष्पकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति ॥ ६२४ ॥

—अ० ३।२।४॥

सर्वे शब्द जिनके शादि में हो, ऐसे पद्विन् शब्द कर्मन् रूप और पात्र द्वितीयाशमर्थ प्रातिपदिकों में व्याप्ति शब्द में ख प्रत्यय होने ।

जैसे—सर्वपत्रं व्याप्नोति सर्वपत्रीनं पकटम्; सर्वपुष्पपुष्पाणि व्याप्नोति सर्वपुष्पीनयोग्यम्; सर्वकर्म व्याप्नोति सर्वकर्मिणः पुंसः; सर्वपत्रीनः सारविः; सर्वपात्रीनः सुप. इत्यादि ॥६२४॥

तस्य पात्रपुष्पे पीन्यादिकर्मादिभ्यः पुण्यञ्जाह्वी

॥६२५॥ —अ० ३।२।५॥

बाक और दून अर्थों में दण्डीसमर्थ पीलादि और कर्मादि
मलपठित प्रातिपदिकों से अकारसंख्य करके कुम्हन् और जाहन्
प्रत्यय हों ।

जैसे—पीलनां पलः पीलुकुम्हः; कहरकुम्हः; खदिरकुम्हः
इत्यादि । कर्मादिकों से—कर्मास्य मूर्त् कर्माजाहम्; नक्षत्राहम्;
केशाणां मूर्त् केशाजाहम्; दन्ताहम् इत्यादि ॥६२५॥

तेन वितरचुञ्चुष्मणायी ॥ ६२६ ॥

—अ० ३ । २ । २६ ॥

तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से जाल अर्थ में चुञ्चुद् और
चणप् प्रत्यय हों । जैसे—विशया वितो जाली विद्याचुञ्चुः;
उपदेशेन विना उपदेशचणः इत्यादि ॥६२६॥

विनञ्भ्यां नानाजी न सह^१ ॥ ६२७ ॥

—अ० ३ । २ । २७ ॥

नसह अर्थात् वृत्तभाव अर्थ में वि और नञ् अव्यय
प्रातिपदिकों से अकारसंख्य करके ना और नाञ् प्रत्यय हों ।
जैसे—विना; नाना । नञ् अव्यय के अनुबन्ध का लोप होकर
वृद्धि हो जाती है ॥६२७॥

वेः नालञ्चुडायी ॥ ६२८ ॥ —अ० ३ । २ । २८ ॥

१. इत्यादि जिन जिन कुछ जातिवर्गों में अन्वयी से प्रत्यय विधान
मिले है, वहाँ वहाँ महाविभागा अर्थात् (उपवर्गानां) इस अधिकार
दून के विफल की प्रवृत्ति न होने से नाम नही रहता । अर्थात् निरुप
प्रत्यय हो जाते हैं ॥

वि चत्वारः प्रातिपदिके ते कालच् धीर शङ्खटच् प्रत्यय ह्ये ।
जैसे- विज्ञानः, विशङ्खटो वा पुङ्गवः ॥६२८॥

सम्प्रोदश्च कटच् ॥ ६२९ ॥ —स० १।२।१९॥

यहाँ चत्वारः शब्द से वि उपसर्ग की अनुबृत्ति आती है ।

सम्, प्र, उच् धीर वि इन उपसर्ग शब्दों से कटच् प्रत्यय
हो । जैसे- शङ्खटम्, प्रकटम्; उकटम्; विकटम् ॥६२९॥

वा०—कटञ्चक्ररणेऽन्ताबृत्तिलोभाभाङ्गाभ्यो रजस्सुप-
संख्यानम् ॥ ६३० ॥

अन्ताबृत्ति उभा धीर भाङ्गा प्रातिपदिकों से रजः सभ में
कटच् प्रत्यय हो । जैसे—अन्ताबृत्तौ रजोऽन्ताबृकटम्; तिलकटम्;
उमाकटम्; भाङ्गाकटम् ॥६३०॥

वा०—वीथ्यादयः स्थानादिषु यशुनाऽनादिभ्य
उपसंख्यानम् ॥ ६३१ ॥

१. विज्ञान आदि शब्द कि जिसका निर्बचन कहने में यही आटा के
अनुत्पन्न शब्द कहाने है । यशुना के शब्द अनुत्पन्न ही है, क्योंकि
प्रकृति धीर उत्पत्ती का भिन्न सर्व कुछ विभिन्न नहीं होता । फिर इनके
प्रात्यय विधान केवल रजः आदि का बोध होने के लिये है ॥

२. इन कुछ कालिकों से कटच् आदि उत्पत्ती के विज्ञान में कुछ
पक्ष यह भी है कि कट आदि शब्द रजः आदि सर्गों के वाचक है, उनके
साथ वधीतापुत्र समान होकर ये शब्द बचते हैं । जैसे वीथी नाम स्थान
का है—यथा वीथी वीथीधम् इत्यादि । इन पक्ष से इन कालिकों का
कुछ उपयोग नहीं है ॥

स्वान् वादि धर्मी मे पञ्च वादि के विशेषनामवाची शब्दों से गोष्ठ वादि प्रत्यय हो। जैसे—गवां स्वान् गोपीष्ठम्; महिषीपीष्ठम्; अजापीष्ठम्, अविपीष्ठम् इत्यादि ॥६३१॥

वा०—संघाते कटन् ॥ ६३२ ॥

यहां पूर्व वास्तिक की अनुवृत्ति जाती है।

संघात धर्म में बहुषों के विशेष नामवाची प्रातिपदिकों से कटन् प्रत्यय हो। जैसे—धर्मीनां संघातोऽविकटम्; अजाकटम्; शोकटम् इत्यादि ॥६३२॥

वा०—विस्तारे षटन् ॥ ६३३ ॥

विस्तार धर्म में बहुषों के विशेषनामवाची प्रातिपदिकों से षटन् प्रत्यय होने। जैसे—गवां विस्तारो गोषटम्, उष्ट्रषटम्; वृकषटम् इत्यादि ॥६३३॥

वा०—द्वित्र्ये गोमुनञ् ॥ ६३४ ॥

पशुओं के द्वित्र्य धर्म में उक्त शब्दों से गोमुनञ् प्रत्यय होने। जैसे—अष्ट्राणां द्वित्र्यम् उष्ट्रगोमुनम्; हस्तिगोमुनम्; स्वाध्रगोमुनम्; इत्यादि ॥६३४॥

वा०—प्रहृत्पर्यस्य षट्त्वे षड्गवञ् ॥ ६३५ ॥

उक्त प्रातिपदिकों से छः व्यक्तिषों के बीच होने धर्म में षड्गवञ् प्रत्यय हो। जैसे—षट् हस्तिनो हस्तिषड्गवञ्; अश्वषड्गवञ् इत्यादि ॥६३५॥

वा०—स्नेहे तैलञ् ॥ ६३६ ॥

स्नेह धर्मात् भी तैल वादि धर्मी में सामान्य प्रातिपदिकों से तैलञ् प्रत्यय हो। जैसे—दण्डतैलम्; तिलतैलम्; सर्पतैलम्; शङ्खुदीतैलम् इत्यादि ॥६३६॥

वा०—भाषने क्षेत्रे इक्ष्वादिभ्यः शाकटशाकिनी ॥६३७॥

उत्पत्ति का स्थान क्षेत्र वाच्य रहे, तो इक्ष्वादि शब्दों से शाकट और शाकिन प्रत्यय हों। जैसे—इक्ष्वा क्षेत्रमिक्ष्वाशाकटम्; इक्ष्वाशकिनम्; श्वशाकटम्; श्वशाकिनम् इत्यादि ॥६३७॥

नले नासिकायाः संज्ञायां टोटङ्नाटश्छटश्च ॥६३८॥

—अ० २।२।५१॥

यहां पूर्व सूत्र से श्व उपसर्ग की अनुवृत्ति आती है।

नासिका के टटे होने एवं में संज्ञा अभिधेय रहे, तो श्व शब्द से टोटन् नाटन् और छटन् प्रत्यय हों। जैसे—नासिकाया नटम् श्वटोटम्; श्वनाटम्; श्वछटम्।

ऐसी नासिका से वृक्ष पुष्प के भी ये नाम पड़ जाते हैं। जैसे—श्वटोटः; श्वनाटः; श्वछटो वा पुष्पः इत्यादि ॥६३८॥

इनन्विटश्चिकचि च ॥ ६३९ ॥ —अ० २।२।५२॥

यहां नि उपसर्ग और नासिका के नट की अनुवृत्ति आती है।

नि शब्द से नासिका के नम जाने एवं में इनन् और विटन् प्रत्ययों के बारे नि शब्द को यथासंख्य करके चिक और चि आदेश होंगे। जैसे—चिकिनः; चिपिटः ॥६३९॥

वा०—कक्षारप्रत्ययो वल्लव्यश्चिकच प्रकृत्यादेशः ॥६४०॥

नि शब्द को चिक आदेश और उससे क प्रत्यय भी हो। जैसे—चिककः ॥६४०॥

वा०—नितमस्य चित्पितृचुल्लस्य चक्षुषी ॥ ६४१ ॥

इसके नेत्र इस धर्म में नितम शब्द को चित् पितृ और चक्षुषी और न प्रत्यय होते । जैसे—नितम धर्म चक्षुषी चित्तः ; पितृः ; चक्षुः ॥ ६४१ ॥

उपाधिभ्यां त्यक्त्वाप्तप्राकृतयोः ॥ ६४२ ॥

—य० २ । २ । ३४ ॥

यहाँ (गते नासिका०) इस शब्द से संज्ञा को अनुकृति वाली पाली है ।

आत्मन और प्राकृत धर्म में वर्तमान उन और अस्ति उपसर्गों से संज्ञाविषयक स्वार्थ में त्यक्त्वा प्रत्यय हो । जैसे—
पर्वतस्यासन्नमुपसर्गका; पर्वतस्याकृतमधिरपका ॥ ६४२ ॥

तदस्य सञ्जालं तारकादिभ्य इतच् ॥ ६४३ ॥

—य० २ । २ । ३५ ॥

सञ्जाल सञ्जालाधिकरण प्रथमासमर्थ तारक आदि यथपठित शब्दों से पच्छी के धर्म में इतच् प्रत्यय होते ।

जैसे—तारकाः सञ्जाला अस्य तारकितं वाचः ; पुष्पिणी वृक्षः ; पक्षा सञ्जाला अस्य पक्षितः ; लव्हा सञ्जालाज्य तन्निष्ठः ; कुडा सञ्जालाज्य गुडितं पुस्तकम् इत्यादि । तारकादि प्राकृतिसम समभला आह्वये ॥ ६४३ ॥

१. यहाँ प्रत्ययस्य प्रकार से पूर्व हान प्राप्त है, जो इन शब्दों के संज्ञावाची होने से नहीं होता । अर्थात् ये सब इसी प्रकार के पर्वत के प्राकृत प्राकृत धर्मों में कहे हैं ॥

प्रमाणे द्वयसम्बन्धनमात्रम् ॥६४४॥

—अनं १ । २ । ३० ॥

प्रमाण समानाधिकरण द्वयमात्रमयं प्रातिपदिकों से पड़ी के सर्व में द्वयमात्र दधनम् और मात्रम् प्रत्यय ही ॥ ६४४ ॥

वा०—प्रथमश्च द्वितीयश्च ऊर्ध्वमाने मतो मम ॥६४५॥

द्वयम् और दधनम् ये दोनों प्रत्यय ऊर्ध्वमान धर्मात् ऊर्ध्वार्ध के इतने सर्व में होते हैं, और मात्रम् सामान्य इच्छा में जानी ।

यह कारिका सूत्र का शेष है । जैसे—ऊर्ध्व प्रमाणमस्य ऊर्ध्व-समुदकम्; ऊर्ध्वधनमुदकम्; ऊर्ध्वमात्रम्; आनुद्वयसम्; आनुदधनम्; आनुमात्रम्; प्रथमात्रम् इत्यादि ॥ ६४५ ॥

वा०—प्रमाणे नः ॥६४६॥

प्रमाणवाची शब्दों के पड़ी के सर्व में हुए प्रत्यय का लुक् ही । जैसे—अनः प्रमाणमस्य अनः; दिष्टिः; विवृतिः इत्यादि ॥ ६४६ ॥

वा०—द्विगो नित्यम् ॥६४७॥

द्विगुसंज्ञक प्रमाणवाची शब्दों से नित्य ही उत्पन्न प्रत्यय का लुक् ही । जैसे—द्वी समी प्रमाणमस्य द्विशमः; विशमः; द्विविवृतिः इत्यादि ।

इस कारिका में 'नित्य' कहकर इसलिये है कि—अन्य कारिका में संज्ञय सर्व में मात्रम् कहा है, वहाँ भी द्विगु से लुक् ही हो जाने । जैसे—द्वे दिष्टी स्वार्ता वा न वा द्विदिष्टिः ॥ ६४७ ॥

वा०—प्रमाणपरिमाणान्यां संख्यावाच्यापि संज्ञये मात्रम् ॥६४८॥

प्रमाणवाची परिमाणवाची धार संख्यावाची प्रातिपदिकों से संज्ञक अर्थ में मात्रम् प्रत्यय होते । जैसे—अमाणवाची—अमा-
मात्रम्; दिष्टिमात्रम् । परिमाणवाची—प्रत्यमाणम् । संख्यावाची—
पञ्चमात्रा वृत्ताः; अत्रमात्रा मात्रः इत्यादि ॥ ६४८ ॥

वा०—अत्रन्तारस्वार्थे द्वयसंज्ञमात्रात् अतुलम् ॥ ६४९ ॥

अतुल्य अत्रान्तर प्रातिपदिक से द्वयसंज्ञ और मात्रम् अत्रय
स्वार्थ में अतुल्य कहके हों । जैसे—तावन्नेत्र तावद्द्वयसंज्ञ;
तावन्मात्रम्; एतावद्द्वयसंज्ञ; एतावन्मात्रम्; तावद्द्वयसंज्ञ;
तावन्मात्रम् ॥ ६४९ ॥

यत्तदेतेभ्यः परिमाणे अतुल्य ॥ ६५० ॥

—अ० ५ । २ । ३९ ॥

प्रमाणानुसंधे परिमाणसमानाधिकरण वत् अतुल्य और एतत्
संबन्धमात्राची प्रातिपदिकों से अतुली के अर्थ में अतुल्य प्रत्यय हो ।
जैसे—अत्रपरिमाणवत्ता तावान्; तावान्; एतावान् ।

प्रमाण अतुल्य को अनुवृत्ति पूर्व के अतुली वाली, फिर परिमाण-
अतुल्य के इन दोनों का भेद विदित होता है ॥ ६५० ॥

वा०—अतुल्यप्रकरणे सुखदशमद्वयसंज्ञा सुखसि सादृश्य
उपसंख्यानम् ॥ ६५१ ॥

सुखम् अतुल्य अतुली के सादृश्य अर्थ में वैदिकप्रयोगों से अतुल्य
प्रत्यय हो । जैसे—अतुल्यदशमद्वयसंज्ञावान्; अतुल्यद्वयसंज्ञावान्; अतुल्यद्वय-
संज्ञावान् वत् विप्रत्यय मात्राः ॥ ६५१ ॥

किमिदमस्मात् यो यः ॥६३२॥ — अ० ३ । २ । ४० ॥

परिमाणसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ किम् और इदम् शब्दों से यत्तु प्रत्यय और यत्तु के लकार को लकारादेश होवे । जैसे— किम्परिमाणमस्य कियान्; इदम्परिमाणमस्य इयान् ॥ ६३२ ॥

संख्याया अवयवे लयम् ॥६३३॥ — अ० ३ । २ । ४१ ॥

प्रत्ययों का अवयवी के साथ सम्बन्ध होने से प्रत्ययार्थ अवयवी समझा जाता है ।

प्रत्ययसममानाधिकरण प्रथमासमर्थ संख्यायाची प्रातिपदिकों से दशों के लय में लयम् प्रत्यय हो । जैसे— वयम् अवयवा अस्य वय्वलयम्; वयनयम्; यत्तुल्यम्; यत्तुल्यमी शब्दानां प्रवृत्तिः इत्यादि ॥ ६३३ ॥

द्विचिन्मां लयवयवम् ॥६३४॥

— अ० ३ । २ । ४२ ॥

पूर्व सूत्र से विहित जो द्वि चि शब्दों से लयम् प्रत्यय, उसके शब्दान में वयव्य आदेश विकल्प करके होवे । जैसे— द्वावयववयवस्य लयम्; द्विलयम्; वयम्; विलयम् ।

इस वयव्य आदेश को जो प्रत्ययान्तर मानें, जो लयम् कहना न करना पड़े । परन्तु स्थानिकद्वारा शब्द के जो कभी शब्द में जोम् और लम् विभक्ति में सर्वनामसंज्ञा का विकल्प होता है, जो नहीं पावे ॥ ६३४ ॥

उभादुवासी नित्यम् ॥६३५॥ — अ० ३ । २ । ४३ ॥

यहां पूर्व सूत्र की अनुवृत्ति आती है ।

उभ शब्द से परे जो शक्त उनके स्थान में अपभ्रंशविशेष उदात्त मिले ही होवे । जैसे—उच्चारणमन्त्रावरण उच्यते मन्त्रिः; उच्यते देवमनुष्याः ।

यहां उदात्त के कहने से साक्षुदात्त होता है, क्योंकि अन्त्योदात्त तो चित् होने से ही ही जाता ॥ ६५५ ॥

तदस्मिन्नधिकमिति दशाभ्यामुच्यते ॥ ६५६ ॥

—सं० ५ । २ । ४५ ॥

अधिक शब्दाधिकरण प्रथमात्मकं दश दिनके अन्त में ही, ऐसे संख्यावाची प्रातिपदिक से क प्रत्यय हो । जैसे—एकादश अश्विका अस्मिन् शस्ते एकादशं शतम्; एकादशं सहस्रम्; द्वादशं शतम्; द्वादशं सहस्रम् इत्यादि ।

यहां 'दशान्त' कह्य इसलिये है कि—अश्विका अस्मिन् शस्ते, यहाँ प्रत्यय न हो । और 'अन्त' कह्य इसलिये है कि—दशान्तिका अस्मिन् शस्ते, यहाँ भी क प्रत्यय न हो ।

'इति' शब्द इसलिये कहा है कि—यहाँ प्रत्ययार्थ की विवक्षा ही नहीं प्रत्यय हो, और—एकादश नामा अश्विका अस्मिन् कार्यान्तमशस्ते, यहाँ तथा—एकादशान्तिका अस्मां विवक्षीति, यहाँ भी विवक्षा के न होने से प्रत्यय नहीं होता ॥ ६५६ ॥

तस्य पुरणे ऋद् ॥ ६५७ ॥ —सं० ५ । २ । ४५ ॥

षष्ठीपदार्थ संख्यावाची प्रातिपदिक से पुरण वर्ष में ऋद् प्रत्यय हो । जैसे—एकादशानां पुरण एकादशः; द्वादशः; त्रयोदशः इत्यादि ।

ऋद् प्रत्यय के चित् होने से टिलोप ही जाता है । दश व्यक्तियों में एक व्यक्ति म्यारद् को पुरण करता है ॥ ६५७ ॥

नाम्नादसङ्ख्यावेर्मट् ॥ ६३८ ॥ —अ० २।२।४९ ॥

यहाँ पूर्व से ङट् की अनुवृत्ति आती है।

संख्या जिनके आदि में न हो ऐसे लकारान्त संख्यावाची प्रातिपदिक से विहित पुरण अर्थ में जो ङट् उसकी षट् का आगम होवे। जैसे—अङ्गानां पुरणः षष्ठ्यमः; सप्तमः; अष्टमः; नवमः इत्यादि।

यहाँ 'नाम्ना' शब्द इसलिये है कि—जिनसे: पुरणो विज्ञः, यहाँ न हो। और आदि में 'संख्या का विशेष' इसलिये है कि—एकादशानां पुरण एकादशः, यहाँ भी षट् का आगम न हो ॥ ६३८ ॥

षट्कलिकलियषचतुरान्युक् ॥ ६३९ ॥

—अ० २।२।४९ ॥

षट् की अनुवृत्ति यहाँ भी आती है।

षट् कलि कलियष और चतुर् शब्दों को ङट् प्रत्यय के परे युक् का आगम हो। जैसे—अङ्गानां पुरणः षष्ठः; कलियः; कलियषः; चतुर्थः ॥ ६३९ ॥

वा०—चतुरस्रस्यलावाहदारलोपच ॥ ६४० ॥

अष्टीतमर्थे चतुर् प्रातिपदिक से ङट् के अपवाद छ और षट् प्रत्यय हो, और चतुर् शब्द के चकार का लोप हो। जैसे—चतुरां पुरणः चतुरीयः; तुर्यः ॥ ६४० ॥

होस्तीयः ॥ ६४१ ॥ —अ० २।२।४९ ॥

यहाँ भी ङट् का अपवाद है।

द्वि शब्द से पूरुष अर्थ में सीव प्रत्यय हो । जैसे—इयोः पूरुषो द्वितीयः ॥६६१॥

त्रैः सम्प्रसारणञ्च ॥६६२॥ —अ० ४ । १ । ४४ ॥

त्रि शब्द से सीव प्रत्यय और उसके परे उसकी सम्प्रसारण भी हो जाये । जैसे—यद्यानां पूरुषस्तृतीयः^१ ॥६६२॥

विशतयाविभ्यस्तमकन्यतरस्याम् ॥६६३॥

—अ० ४ । २ । ४५ ॥

विकृति आदि प्रातिपदिकों से परे षट् प्रत्यय को तमद् का आगम विकल्प करके हो । जैसे—विशतेः पूरुषो विशतितमः, विशः; एकविशतितमः, एकविशः; विशतमः, विशः; एकविशतमः, एकविशः इत्यादि ॥६६३॥

विर्यं सतादिमासाद्धमाससंवत्सरान्च ॥६६४॥

—अ० ४ । २ । ४७ ॥

पूरुषार्थ में सत आदि मास अर्द्धमास और संवत्सर शब्दों से परे षट् प्रत्यय को तमद् का आगम निश्च ही होवे । जैसे—सतस्य पूरुषः सततमः; सहुसतमः; लक्षतमः इत्यादि; मासतमो दिवसः; अर्द्धमासतमः; संवत्सरतमः ॥६६४॥

१. यहाँ दृष्ट से परे चकार लज्जाकारण की दीर्घ इसलिये नहीं होता कि (हृन्) एव सूत्र में चम् की अनुवृत्ति होती, और चम् पूर्व चकार से मिलता जाता है ॥

अष्टाध्यायेश्चासंख्यायैः ॥६६६॥ — अ० १ । २ । १८ ॥

पूरणार्थ में संख्या जिनके आदि में न हो सके जो अष्टि आदि शब्द हैं, उनसे चरे अष्ट प्रत्यय को अष्ट का आगम हो । जैसे—
अष्टैः पूरणः अष्टितमः; सप्ततितमः; अष्टौतितमः; नवतितमः ।

यहाँ 'अष्ट' आदि का निषेध इसलिये है कि—एकअष्टः, एकअष्टितमः; एकसप्ततमः, एकसप्ततितमः, यहाँ विभक्त्यादि भूत से विकल्प हो जाता है ॥६६६॥

स एवाग्रामणीः ॥६६६॥ — अ० १ । २ । १८ ॥

अष्टमर्थ आग्रह रहे, तो ग्रामणी अर्थ में प्रथमात्ममर्थ प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय हो । ग्रामणी मुख्य का नाम है । जैसे—
देवदत्तो ग्रामणीरेवा देवदत्तकाः; नन्ददत्तकाः ।

यहाँ 'ग्रामणी' ग्रहण इसलिये है कि—देवदत्तः शत्रुरेषाम्, इत्यादि में कन् प्रत्यय न हो ॥६६६॥

कालप्रयोजनाविज्ञेयैः ॥ ६६७ ॥ — अ० १ । २ । १९ ॥

रोग अर्थ में सप्तमीसमर्थ कालवाची चौर प्रयोजन नाम कारणवाची तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय हो । जैसे—
[कालवाची] द्वितीयेऽङ्गु भवो द्वितीयको ज्वरः; तृतीयको ज्वरः; चतुर्थकः । प्रयोजन से विषयुष्मैर्जनितो विषयुष्मको ज्वरः; काययुष्मको ज्वरः; जल काय्येकस्य ज्वरकः; शीतको ज्वरः इत्यादि ॥६६७॥

श्रोत्रियैरुद्धन्दीऽप्यीते ॥६६८॥ —अ० १।१।८४॥

यान्दन्दीऽप्यीते य श्रोत्रियः, यहाँ उद्धन् के कहने अर्थ में उद्धन्स् शब्द को श्रोत्रधारा और यन् प्रत्यय निपातन किया है ॥६६८॥

आद्धमनेन मुक्तमितिठनी ॥६६९॥

—अ० १।१।८५॥

‘मनेन मुक्त’ इस अर्थ में प्रथमासमर्थ आद्ध प्रातिपदिक से इति और ठन् प्रत्यय हों। जैसे—आद्ध मुक्तमनेन आद्धी; आद्धिकः ॥६६९॥

साक्षाद्दृष्टारि संज्ञायाम् ॥६७०॥ —अ० १।१।८६॥

दृष्टा की संज्ञा अर्थ में साक्षात् शब्दार्थ से इति प्रत्यय हो। जैसे—साक्षाद्दृष्टा साक्षी ॥६७०॥

**इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रबुष्टमिन्द्रसुष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्त-
मिति या ॥६७१॥** —अ० १।१।८७॥

यहाँ इन्द्र जीवात्मा और लिङ्ग चिह्न का नाम है।

लिङ्गादि यहाँ में इन्द्र शब्द से यन् प्रत्यय निपातन करने से इन्द्रिय शब्द सिद्ध होता है। जैसे—इन्द्रस्य लिङ्गमिन्द्रियम्। इन्द्र नाम जीवात्मा का लिङ्ग जो अकारक चिह्न हो, उसको इन्द्रिय कहते हैं। इन्द्रेण बुष्टम् इन्द्रियम्। इन्द्रेण सुष्टम् इन्द्रियम्, यहाँ ईश्वर का ग्रहण है। इन्द्रेण जुष्टम् इन्द्रियम्, यहाँ जीव का ग्रहण है। इन्द्रेण दत्तम् इन्द्रियम्, और यहाँ ईश्वर का ग्रहण होता है ॥६७१॥

तवस्थास्यसिचिप्रति मनुष्य ॥६७२॥

—अ० ११॥ २॥ १४॥

प्रति और अवयवमन्त्राधिकरण कथाम् प्रातिपदिकों से कही और मन्त्रों के अर्थ में मनुष्य अवयव ही । जैसे—गर्भोऽव सन्ति गोमन् देवदत्तः; कृताः सन्तवसिन् त वृक्षवान् पर्वतः; यथा मरुत मग्नि यजमान्, प्लक्षवान् इत्यादि ॥६७२॥

मानुषध्यायाश्च मतोर्बोऽववादिभ्यः ॥६७३॥

—अ० ११॥ २॥ १५॥

मकारान्त मकारोपध सप्तर्षिन्त और अवर्षोपध प्रातिपदिकों से परे मनुष्य इत्यन के मकार को वकारादेश हो, परन्तु यथादि प्रातिपदिकों से परे न हो ।

जैसे -वकारान्त—ऊँवान्; वंवान् । मकारोपध—कमीवान्; वाङ्मिवान्; लक्ष्मीवान् । अवर्षान्त—वृक्षवान्; प्लक्षवान्; पठवान्; कट्टवान्; मातावान् । अवर्षोपध—यजस्वान्; यजस्वान्; भास्वान् ।

यहाँ 'मकारान्त धादि' का उद्देश्य इसलिये है कि—अग्निमान्; वायुमान्; बुद्धिमान्, यहाँ वकार न हो । और 'अववादि' इसलिये कहा है कि -यजस्वान्; इत्थिमान्; ऊँग्मिमान् इत्यादि, यहाँ भी मकार को वकारादेश न होवे ॥६७३॥

अथः ॥६७४॥ —अ० ११॥ २॥ १६॥

मन्त्र आवाहारात् प्रातिपदिक से परे मनुष्य के मकार को वकारादेश ही । जैसे -अग्निचित्तवान् धामः; ऊँग्मिमान् धीवः; विद्युत्तवान् वज्रः; मरुत्तानिन्द्रः; वृक्षवान् देवः इत्यादि ॥६७४॥

संज्ञायाम् ॥६७३॥ —अ० ८।२।११॥

संज्ञाविषय में मतुप् के लकार की वक्रादादेश हो । जैसे—
छड़ीबली; कपीबली; खड़ीबली; मुनीबली या नगरी इत्यादि
॥६७३॥

का०—भूमनिन्दाप्रशंसानु निरूपयोगेऽस्तिभावने ।

सम्बन्धेऽस्तिविचक्षायां भवन्ति मतुबादयः॥६७६॥

बहुत्र निन्दा प्रशंसा निरूपयोग प्रतिपद्य सम्बन्ध और
अस्ति—होने की विचक्षा प्रयोग में मतुप्, और इस प्रकार में
चित्तने प्रत्यय है, वे सब होते हैं । यह कारिका इसी सूत्र पर
महाभाष्य में है ।

जैसे—भूम प्रत्य में—भोमान्; कवमान् इत्यादि । निन्दा
में—कुम्भी; ककुदाबलिनी इत्यादि । प्रशंसा में—कृपवती इत्यादि ।
निरूपयोग प्रत्य में—शीरिचो वृक्षाः; कन्दकिनी वृक्षाः इत्यादि ।
प्रतिपद्य में—उदरिचो कम्पा इत्यादि । सम्बन्ध में—दण्डी; छत्री
इत्यादि । होने की विचक्षा में—अस्तिमान् ॥६७६॥

आ०—गुणवचनेभ्यो मतुपो लुक् ॥६७७॥

गुणवाची प्रतिपदिकों के परे मतुप् प्रत्यय का लुक् हो ।
जैसे—गुणनी गुणोभ्यामस्तीति गुणवः पटः; कृष्णः; श्वेतः इत्यादि
॥६७७॥

रसादिभ्यश्च ॥६७८॥ —अ० २।२।१२॥

रस आदि प्रतिपदिकों के पछ्ठी सप्तमी के प्रत्य में मतुप्
प्रत्यय हो । जैसे—रसोऽस्मास्तीति रसवान्; कववान्; मन्त्रवान्;
कन्दवान् इत्यादि ।

यहां रसादि शब्दों से इत्ययविधान इसलिए किया है कि इनके पुनराची होने से मनुष्य का मुख पूर्व वातिक से घायत था, जो न हो ॥६७८॥

प्राक्स्थित्वादातो लज्जन्तरस्याम् ॥६७९॥

—स० ३।२।१९॥

सत्कर्त में प्राक्स्थित्वाची प्राकारान्त शब्द से लच् प्रत्यय विकल्प करके हो । जैसे—बुद्धालः, बुद्धावान्; कणिकालः, कणिकावान्; जिह्वालः, जिह्वावान्, जंघालः, जंघावान् ।

यहां 'प्राक्स्थित्वा' ग्रहण इसलिए है कि—जिह्वावान् जघीषः, यहां न हो । और 'प्राकारान्त' ग्रहण इसलिए है कि—हस्तवान्; पादवान् इत्यादि में भी लच् प्रत्यय न हो ॥६७९॥

वा०—प्राक्पङ्क्त्यादिति वक्तव्यम् ॥६८०॥

प्राक्स्थित प्राकारान्त शब्दों से जो लच् प्रत्यय कहा है, वह प्राक्स्थित के पङ्क्तवाकियों से हो । अर्थात् जिह्वीर्षास्वास्तीति, जिह्वीर्षास्वास्ति जिह्वीर्षावान्; जिह्वीर्षावान् इत्यादि में लच् प्रत्यय न हो ॥६८०॥

सिध्मादिभ्यश्च ॥६८१॥ —स० ३।२।१०॥

सत्कर्त में सिध्म आदि प्रातिपदिकों से लच् प्रत्यय विकल्प करके हो, पक्ष में मनुष्य हो । जैसे—सिध्मोऽस्वास्तीति सिध्मलः, सिध्मवान्; गङ्गलः, गङ्गवान्; मणिलः, मणिमान् इत्यादि ॥६८१॥

लोमादिषामादिभिश्छादिभ्यः शनेलचः ॥६८२॥

—स० ३।२।१००॥

मत्वर्थ में शोभादि पाप्मादि और निष्छादि सचनदित्त प्रातिपदिकों से क न और इत् प्रत्यय प्रयोग प्रयोग करने हों, तथा मत्तु भी होवे ।

जैसे—शोभात्वस्य सन्ति शोमजः, शोमवान्; पाप्मनः, पाप्मवान्; निष्छलः, निष्छलवान्; उरगिलः, उरगवान् इत्यादि ॥६८२॥

प्रज्ञाशब्दाधीन्यो नः ॥६८३॥ —अ० २ । २ । १०१ ॥

काव्यर्थ में प्रज्ञाशब्दा और सर्वा प्रातिपदिकों से क प्रत्यय हो । जैसे—प्रज्ञाश्वान्ति प्रज्ञः, प्रज्ञावान्; श्वाङ्गः, श्वाङ्गवान्; शार्चः, शार्चवान् ॥६८३॥

तपःसहस्राभ्यां विनीनी ॥६८४॥

—अ० २ । २ । १०२ ॥

मत्वर्थ में तपस् और सहस्र प्रातिपदिक से विनी और इति प्रत्यय हों । जैसे—तपोऽस्मिन्नास्तीति तपस्वी; सहस्वी ॥६८४॥

अणु न ॥६८५॥ —अ० २ । २ । १०३ ॥

मत्वर्थ में तपस् और सहस्र प्रातिपदिक से अणु प्रत्यय भी हो । जैसे—तापकः; साहस्रः ॥६८५॥

दन्त उन्नत उरन् ॥ ६८६ ॥ —अ० २ । २ । १०४ ॥

उन्नतमहानाधिकरण दन्त शब्द के मतुप् के अर्थ में उरन् प्रत्यय हो । जैसे—दन्ता उन्नत शब्द सन्ति क दन्तुरः ।

१. यहाँ प्रज्ञा आदि शब्दों के क और मत्तु प्रत्यय प्रयोगों अर्थ में सम्भवा पादिषे । और यहाँ सत्त्वान् अर्थ में प्रपत्ति बुद्धि मिलने की ऐसा सम्भवे से साधरण प्रातिपदिकों के नाम आज और प्रज्ञावान् होने, इसलि उक्तों विशेष अर्थ समझी ॥

यहां 'ऊन्नत' विशेषण इसलिये है कि—ऊन्नतवान्, यहाँ निम्ना
आदि शब्दों में उन्नत् प्रत्यय न होवे ॥६८६॥

ऊयमुषिमुष्कमधो रः ॥ ६८७ ॥ — ष० ३ । २ । १०५ ॥

ऊय मुषि मुष्क और मधु प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में र प्रत्यय
होवे । जैसे—ऊयमस्मिन्वस्ति ऊयरा भूमिः, मुषिरं काष्ठम्;
मुष्करः पशुः, मधुरी नुदः ॥६८७॥

वा०—रप्रकरणे खमुलकुञ्जेभ्य उपसंख्यानम् ॥६८८॥

ख मुल और कुञ्ज शब्दों से भी मत्वर्थ में र प्रत्यय हो ।
जैसे—खमस्वास्तीति खरः; मुलमस्वास्तीति मुलरः; कुञ्जरः^१
॥६८८॥

वा०—नगपांसुपाण्डुभ्यश्च ॥ ६८९ ॥

नग पांसु और पाण्डु शब्दों से भी मत्वर्थ में र प्रत्यय हो ।
जैसे—नगमस्मिन्वस्तीति नगरम्^२, पांसुरम्; पाण्डुरम् ॥६८९॥

वा०—कच्छा ह्रस्वत्वं च ॥ ६९० ॥

कच्छा शब्द से र प्रत्यय और उसकी ह्रस्वादेश भी हो ।
जैसे—कच्छास्वास्तीति कच्छरा भूमिः ॥६९०॥

१. विशेषणत्व से ख नाम विशेष शब्दात्त हो उसकी खर । मुल
का भाग निरन्तर उन्नतत्व करणा विभक्त हो उसकी मुलर । और
कुञ्जर कड़ी डोही होने से हाथी की कहते हैं ॥

२. नग शब्दों मुल और पक्षी विशेषों हो उसकी नगर कहते हैं ॥

केशाहोम्यन्तरस्याम् ॥ ६९१ ॥ — म० ३।२।१०१॥

इस सूत्र में केशा-मन्त्रिभाषा इसलिये समझना चाहिये कि केश शब्द से व प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है। केश प्रातिपदिक से व प्रत्यय विकल्प करके हो।

यहाँ महाविभाषा अर्थात् (समर्थना०) इस सूत्र से विकल्प की अनुवृत्ति चली जाती है, और दूसरे इस विकल्प के होने से चार प्रयोग होते हैं। जैसे—प्रथमाः केशा यस्य मन्तीति केशवः, केशी, केशिकः, केशवान्। केश शब्द मन्तीति अर्थात् अकाश गुण का भी नाम है ॥६९१॥

वा०—वप्रकरणे मणिहिरण्याभ्यामुपसंख्यानम् ॥ ६९२ ॥

मणि और हिरण्य प्रातिपदिक से भी व प्रत्यय हो। जैसे—मणिरन्मिन्नस्तीति मणिवः सर्वः, हिरण्यवः^१ ॥६९२॥

वा०—छन्दसीवनिषी च ॥ ६९३ ॥

वैदिक प्रयोगों में सामान्य प्रातिपदिकों से कत्वर्थ में ई और वनिप् प्रत्यय हो।

जैसे—रक्षीरघूमृदुलानी गविष्ठी, यहाँ रवीः छन्द में ई प्रत्यय हुआ है, सुमङ्गलीरिषं वधूः इत्यादि। अलावानम्; मधवानमीकहे, यहाँ अल और मध शब्द से वनिप् होता है ॥६९३॥

१. मणिवः किसी विशेष नर्य की और हिरण्यवः उक्त विशेष की कथा है ॥

वा०—मेघारवाभ्यामिरश्मिरचौ वलक्ष्यौ ॥ ६९४ ॥

मेघा और रश्मि शब्दों से मतलब में इरन् और इरन् प्रत्यय
हैं। जैसे—मेघिरः; रश्मिरः। मेघी मनुष्य के आकार हैं ॥६९४॥

वा०—अपर आह-वप्रकरणेऽन्येभ्योऽपि दृश्यते इति
वलक्ष्यम् ॥ ६९५ ॥

इस विषय में बहुतेरे ऋषि लोगों का ऐसा मत है कि
अविहित सामान्य प्रातिपदिकों से व प्रत्यय देखने में आता है।
जैसे—विष्वावम्; कुरदावम्; इष्टकावम् इत्यादि।

प्रयोजन यह है कि—पूर्व वालिक में जो अग्नि और हिरण्य
शब्दों से व प्रत्यय कहा है, उसका भी इस पक्ष में कुछ प्रयोजन
नहीं है ॥६९५॥

रजःकुक्ष्यामुत्तिपरिवर्तौ वलच् ॥ ६९६ ॥

—वा० ५।२।६९६ ॥

रजस् कुक्षि आमुत्ति और परिवर्त्त प्रातिपदिकों से वलच में
वलच् प्रत्यय ही। जैसे—रजोऽस्याः अवर्त्तते इति रजस्वला स्त्री;
कुक्षीवती शायीनः; आमुत्तिवतः शीलिकः; परिवर्त्ततो राजा
इत्यादि ॥६९६॥

वा०—वलचप्रकरणेऽन्येभ्योऽपि दृश्यते ॥ ६९७ ॥

विहितों से वृश्च प्रातिपदिकों से भी वलच् प्रत्यय देखने में
आता है। जैसे—आताऽस्यास्तीति आतृवतः; वृश्चवतः; अताङ्गवतः
इत्यादि ॥६९७॥

अत इतिठनी ॥६६८॥ — अ० २।२।११२॥

मलार्थ में प्रकारान्त प्रातिपदिक से इति और ठन् प्रत्यय हों ।
जैसे—दण्डी, दण्डिकः; छत्री, छत्रिकः ।

यहां विकल्प की अनुवृत्ति आने से पक्ष में मत्तुम् प्रत्यय भी
होता है । जैसे—दण्डवान्, दण्डिकः; छत्रवान्, छत्रिकः इत्यादि ।

यहां 'तत्परकरण' इतिविधे है कि—छट्टवान्, यहाँ इति
ठन् न हों ॥ ६६८ ॥

का०—एकाक्षरात्कुलो आतेः सप्तम्यां च न ली स्युती
॥६६९॥

एकाक्षर शब्द कुलान्त आतिवाची और सप्तमी के अर्थ में इति
और ठन् प्रत्यय न हों । सूत्र से जो प्राप्ति है; उसका विशेष विषय
में निवेश किया है ।

जैसे—एकाक्षर से—सप्तवान्; सप्तान् इत्यादि । कुलान्त से—
कारकवान्; कारकवान् । जानिवाचियों से—जुलवान्; जलवान्;
व्याघ्रवान्; सिंहवान् इत्यादि । सप्तम्यर्थ में—दण्डा दण्डा
आवायां स्युतीति दण्डवती आता इत्यादि ॥ ६६९ ॥

ब्रीह्यादिभ्यश्च ॥७००॥ — अ० २।२।११३॥

ब्रीहि आदि गणपठित प्रातिपदिकों से मलार्थ में इति और
ठन् प्रत्यय हों । जैसे—ब्रीही, ब्रीहिकः, ब्रीहिमान्, मायी, मायिकः,
मायावान् इत्यादि ॥ ७०० ॥

का०—शिखादिभ्य इतिर्वाच्य इकन्यबखदाविधु ॥७०१॥

पुर्व सूत्र में ब्रीह्यादि कन्वी में शिखादिभ्य है, उनसे इति,
और पवखदादि प्रातिपदिकों से इकन् (ठन्) कहना चाहिये ।

प्रयोजन यह है कि सब बीछादिकों से दोनों प्रत्यय प्राप्त हो जाय हों, किन्तु बिछादिकों से इनि ही हो, ठन् ही हो, और मयस्यदिकों से ठन् ही हो, इनि नहीं, यह नियम समझना चाहिये । जैसे—बिछी, बिछती इत्यादि । मयस्यदिकः इत्यादि ॥ ७०६ ॥

अस्मायामेछास्त्रयो विनि ॥७०७॥

—अ० ३ । २ । १११ ॥

अस्त्र माया मेछा और अस्त्र् प्रातिपदिकों से मत्तुप् के अर्थ में विनि प्रत्यय हो, और मत्तुप् तो सर्वत्र होता ही है । और माया अस्त्र् बीछादित्रय में पड़ा है, उससे इनि ठन् भी होते हैं । अस्त्र्नों से—अस्त्री; मयस्यबी इत्यादि; मायाबी, मायी, मायिकः, मायावान्; मेछाबी, मेछावान्; अम्बी, अम्बान् ॥ ७०७ ॥

बहुसं छन्दसि ॥७०८॥ —अ० ३ । २ । ११२ ॥

वैदिकप्रयोगवित्तम में सामान्य प्रातिपदिकों से अत्यन्तविषयक विनि प्रत्यय बहुत करके हो । जैसे—छान्ने छेदस्त्रिन्, यहाँ हो गया । और सुम्बी कर्षस्त्रान्, यहाँ गहरी भी हुम्पा इत्यादि । बहुत से अनेक प्रयोजन समझना चाहिये ॥ ७०८ ॥

वा०—छन्दोविम्वकरणेऽष्टामेक्षसाहपोभयस्यहृदयानां दीर्घश्च ॥७०९॥

अष्टा मेक्षसा इत्येव स्य और हृदय अश्वों ने विनि प्रत्यय और इनको दीर्घदिग् भी होय । जैसे—अष्टाबी; मेक्षमाबी, इयाबी, उभयार्वाः [इयाबी] हृदयाबी ॥ ७०९ ॥

वा०—सर्वप्रथम ॥७०५॥

सर्वन् शब्द से भी विनि प्रथम और उसको दीर्घदेश हो ।
जैसे—सर्वासी ॥ ७०५ ॥

वा०—सर्वप्रथमस्योत्पत्तिः ॥७०६॥

पूर्व के तीनों शालिनी से वेद से प्रथमविधान सम्भन्ता
बाह्ये, इतीतिवे इति शालिक में सर्वप्रथम पड़ा है ।

सर्वप्रथम—शैलिक वैदिक मय प्रयोगों में—प्रथम शब्द से
विनि प्रथम और दीर्घदेश भी होवे । जैसे—प्रथमवासी ॥७०६॥

वा०—शृङ्गवृन्दाभ्यामारकन् ॥७०७॥

पूर्व शालिक से पवते सब शालिकों में सर्वप्रथम शब्द की
अनुवृत्ति सम्भन्ती बाह्ये ।

शृङ्ग और वृन्द प्रातिपदिक से मत्वर्थ में आरकन् प्रथम हो ।
जैसे—शृङ्गाभ्यस्य सन्ति शृङ्गारकः; वृन्दारकः ॥ ७०७ ॥

वा०—फलवर्हाभ्यामितन् ॥७०८॥

फल और वर्ह शब्दों से इतन् हो । जैसे—फलवर्हाभ्यामितन्ति
फलिनः; बह्विः ॥ ७०८ ॥

वा०—हृदयान्वासुरन्यतरस्याम् ॥७०९॥

हृदय शब्द से वानु प्रथम विकल्प करके हो, और वक्ष में
इति ठन् तथा मनु भी हो जावे । जैसे—हृदयानुः, हृदयी,
हृदयिकः, हृदयवान् ॥ ७०९ ॥

वा०—गीतोऽथतुष्टेभ्यस्तत्र सह्य इति चानुबन्धव्यः

॥७१०॥

गीत शब्द और तुष्ट प्रातिपदिक से प्रत्यय के न सह करने
कार्य में चानु प्रत्यय हो। जैसे—गीतं न सहते स गीतातुः;
उष्वातुः; वृषातुः ॥ ७१० ॥

वा०—हिमाचनेतुः ॥७११॥

हिम शब्द से उसके न सहने कार्य में नेतु प्रत्यय हो। जैसे—
हिमं न सहते स हिमेतुः ॥ ७११ ॥

वा०—बलाचनौलः ॥७१२॥

बल शब्द से उसके न सहने कार्य में लल प्रत्यय हो। जैसे—
बलं न सहति इति बलूलः ॥ ७१२ ॥

वा०—वातात्समूहे च ॥७१३॥

वात शब्द से उसके न सहने और समूह कार्य में लल प्रत्यय
हो। जैसे—वातावां समूहो वातं न सहते वा स वातूलः ॥७१३॥

वा०—पर्वमरुद्रूपां तप् ॥७१४॥

पर्व और मरुद् प्रातिपदिक से शब्द के तप् प्रत्यय हो—
जैसे—पर्वमस्मिन्नस्ति स पर्वतः; मरुतः।

और यह मरुत शब्द 'मरुतों ने दिया' ऐसे भी कार्य में कृदन्त
प्रत्यय होने से बन जाता है ॥ ७१४ ॥

वाचो गिमिनिः ॥७१५॥ —ब० २।२। १२४ ॥

वाक् प्रातिपदिक से शब्द के गिमिनि प्रत्यय हो। जैसे—
वाक्वा वागवा स वाग्मी, वागिमनी, वाग्विनः ॥ ७१५ ॥

आलङ्कारो बहुभाषिणि ॥७१६॥

—अ० २ । २ । १२३ ॥

यहाँ पूर्वं सूच से आलु शब्द की अनुवृत्ति आती है ।

बहुज बोलने वाले के अर्थ में आलु प्रातिपदिक से आलु और आलन् प्रत्यय हों । जैसे—बहु भाषत इति आचालः; आचालः । यह द्विती प्रत्यय का अर्थवाद है ।

और यह भी समझना चाहिये कि जो विद्या के अनुकूल विचारपूर्वक बहुज बोलता है, उसको आचाल और आचाल नहीं कहते हैं, किन्तु जो अज्ञ बंद बोले । यह बात महाभाष्य में है ॥ ७१६ ॥

स्वामिन्नेश्वर्यम् ॥७१७॥ —अ० २ । २ । १२४ ॥

यहाँ ऐश्वर्यवाची स्व शब्द से स्वामी में स्वामिन् प्रत्यय करके स्वामिन् शब्द निरातन किया है । जैसे—स्वमेश्वर्यमस्मान्मीति स्वामी, स्वामिनी, स्वामिनः ।

ऐश्वर्य अर्थ इसलिये समझना चाहिये कि—स्वयान्, यहाँ स्वामिन् न हो ॥ ७१७ ॥

वातातीसाराम्नां कुक् ख ॥७१८॥

—अ० २ । २ । १२५ ॥

वात और अतीसार प्रातिपदिकों से मत्सर्ग में इति अवयव और कुक् का आगम भी हो । जैसे—वातकी; अतीसारकी ।

यहाँ रोग अर्थ में अवयव होना दृष्ट है, इससे वातवती कुक्, यहाँ इति और कुक् नहीं होते ॥ ७१८ ॥

आ०—विशाखाक्षय ॥७१६॥

विशाख शब्द से भी इति और उसकी कुक्ष का आगम होने ।
जैसे—विशाखकी वैश्ववषः ॥ ७१५ ॥

वर्षासि पुरषात् ॥७२०॥ —घ० ५ । २ । ११० ॥

वपस् नाम अक्षरवा घर्ष में पुरष प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से
इति प्रत्यय हो । जैसे—वपस्वमोऽयस्ति भासः संवत्सरो वा
वपस्वमो उष्टुः; नवमो; दशमो इत्यादि ।

यहां 'अक्षरवा' यहून इसलिये किया है कि—वपस्वमवान्
आपरणः; वहां इति न हुआ ॥ ७२० ॥

मुख्यादिभ्यश्च ॥७२१॥ —घ० ५ । २ । १११ ॥

मुख आदि प्रातिपदिकों के मत्वर्थ में इति प्रत्यय हो । जैसे—
मुखमस्ति मुखी, दुःखी इत्यादि ॥ ७२१ ॥

धर्माशीलवर्णान्ताच्च ॥७२२॥ —घ० ५ । २ । ११२ ॥

धर्म शील और वर्ण के शब्द जिनके धन्त में हों, उन
प्रातिपदिकों के इति प्रत्यय हो । जैसे—ब्राह्मणधर्मः
ब्राह्मणधर्मः मोऽयस्तीति ब्राह्मणधर्मी; ब्राह्मणशीली;
ब्राह्मणवर्णी इत्यादि ॥ ७२२ ॥

हस्ताज्जाती ॥७२३॥ —घ० ५ । २ । ११३ ॥

हस्त शब्द से जाति घर्ष से इति प्रत्यय हो । जैसे—हस्ती,
हस्तिनी, हस्तिनः ।

यहां 'जाति' इसलिये है कि—हस्तवान् पुरुषः, यहां इति न
हो ॥ ७२३ ॥

पुष्करादिभ्यो देसे ॥७२४॥ — अ० ५ । २ । १२३ ॥

देस शब्द में पुष्कर आदि शब्दों से इति प्रत्यय हो । जैसे - पुष्करी देसः; पुष्करिणी पश्चिमी ।

यहां 'देस' शब्द इसलिये है कि — पुष्करवान् कदाचः^१, यहाँ इति प्रत्यय न हो ॥ ७२४ ॥

वा०—इतिप्रकरणे बलाद्बाहुषपूर्वपदाहुपसंख्यानम्

॥७२५॥

बाहु और ऊष जिसके पूर्व हों, ऐसे बल प्रातिपदिक से इति प्रत्यय हो । जैसे - बाहुबलमस्वामि स बाहुवली; ऊषवली

॥ ७२५ ॥

वा०—सर्वविश्व ॥७२६॥

सर्व शब्द जिसके आदि में हो, ऐसे प्रातिपदिक से इति प्रत्यय हो ।

जैसे—सर्वजनमस्वामि स सर्वजनी; सर्वबीजो; सर्वकेही नटः इत्यादि ॥ ७२६ ॥

वा०—अर्थात्वास्तनिहिते ॥७२७॥

जिसके निष्कट पदार्थ न हों, और उनकी बाहुला हो, ऐसे शब्द में शब्द शब्द से इति प्रत्यय हो । जैसे—अर्थमस्तीति अर्थी ।

१. यहाँ (बाहुवलीलक्षणम्) इस सूत्र के अन्तर में इति प्रत्यय निश्चय किया है, जो (मत इतिहो) इस निश्चित सूत्र से इति होनाचा, फिर निश्चय निवर्णार्थ है । अर्थात् उन उन प्रातिपदिकों और उन उन विशेष शब्दों में इति ही होना न हो ॥

यहां 'सकृन्निहित' पक्ष इसलिये है कि—सर्ववान्, यहां इति प्रत्यय न हो ॥ ७२७ ॥

वा०—तदन्ताच्च ॥७२८॥

यस्य छन्द जिसके अन्त में हो, उससे भी इति प्रत्यय हो । जैसे—शान्ताची; हिरण्याची इत्यादि ।

इस सब बातों में भी यही नियम समझना चाहिये कि इन विशेष अर्थों में और अर्थों से इति ही हो, ऊन् न हो ॥ ७२८ ॥

बलादिभ्यो मतुबन्धतरस्याम् ॥७२९॥

—अ० ३ । २ । ११३ ॥

बलादि प्रातिपदिकों से मतुप् प्रत्यय विफल करके हो, पक्ष में इति समझी । जैसे—बलमस्यास्तोति बलवान्, बली; उत्साहवान् उत्साही; उद्धातवान्, उद्धाती इत्यादि ॥ ७२९ ॥

संज्ञायां भान्नाभ्याम् ॥७३०॥ —अ० ३ । २ । ११४ ॥

मत्वर्थ में कर्न्त और भान्त प्रातिपदिकों से संज्ञाविषय में इति प्रत्यय हो । जैसे—प्रविमित्री; दामिनी; होमिनी; सोमिनी ।

यहां 'संज्ञा' पक्ष इसलिये है कि—सोमवान्; लोमवान् इत्यादि में इति न हो ॥ ७३० ॥

कौशभ्यां बभ्रुस्तिक्तुलपसः ॥७३१॥

—अ० ३ । २ । ११५ ॥

अल और सुख के बाची कम् और तम् मकारान्त प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में क, म, सुख, ति, तु, त और तम् प्रत्यय हों । जैसे—कम्भः; कम्बः; कम्भः; कम्भः; कम्पुः; कम्पुः; कन्तिः; कन्तिः; कन्तुः; कन्तुः; कन्तः; कन्तः; कम्बः; कम्बः ।

यहां पुनः धीर वच् प्रत्यय में लकार बदलता होने के लिये है। इससे लकार को धनुस्कार धीर परलवणं होते हैं, धीर को भसंज्ञा हो तो लकार ही बना रहे ॥ ७३१ ॥

महंशुभवीर्षुस् ॥७३२॥ —सं० २।२।१४०॥

महं धीर शुभन् चञ्चलसंज्ञक कब्धी से कत्वर्थ में पुनः प्रत्यय हो। जैसे—महंशुः, यह महंकारी का नाम है, शुभंशुः, यह कल्याणकारी की संज्ञा है ॥ ७३२ ॥

॥ यह द्वितीय पाठ समाप्त हुआ ॥

अथ तृतीयः पाठः—

प्राप्तिदो विभक्तिः ॥७३३॥ —सं० २।३।१॥

यह अधिकार सूत्र है।

जो दिक् शब्द के उच्चारण से पूर्व पूर्व प्रत्यय विज्ञान करे, उन उन को विभक्तिसंज्ञा जाननी चाहिये ॥ ७३३ ॥

किसर्षनामबहुभ्योऽङ्घ्राविभक्त ॥७३४॥

—सं० २।३।२॥

यह भी अधिकार सूत्र है।

यहां से प्राप्ते किम् शब्द, द्वि आदि से भिन्न सर्वनाम धीर बहु प्रातिपदिकों से प्रत्ययों का विज्ञान जानना चाहिये ॥७३४॥

इदम् इत् ॥७३५॥ —सं० २।३।३॥

विभक्तिसंज्ञक प्रत्ययों के चरे इदम् शब्द को इत् आदेश हो। जैसे—इत्तः, इत्तः।

यहां इत् आदेश में दकार सब के स्थान में आदेश होने के लिये है ॥ ७३३ ॥

एतेतो रथोः ॥७३४॥ —घ० ३ । ३ । ४ ॥

जो प्राप्तिपदों और दकारादि विभक्ति परे हों, तो इत् शब्द को एत् और इत् आदेश होंगे । जैसे—एतद्भिः, इत्थम् ॥ ७३४ ॥

सर्वस्य सौजन्यतरस्यां दि ॥७३५॥

—घ० ३ । ३ । ५ ॥

जो दकारादि प्रत्यय परे हों, तो सर्व शब्द को स आदेश विकल्प करके ही । जैसे—सर्वदा; सदा ॥ ७३५ ॥

वञ्चाम्यास्तमित् ॥७३६॥ —घ० ३ । ३ । ७ ॥

किम् सर्वनाम और बहु प्राप्तिपदों से वञ्चामी विभक्ति के स्थान में तमित् प्रत्यय ही । जैसे—वस्मादिति कुतः; वस्मादिति यतः; ततः; बहुतः इत्यादि ॥ ७३६ ॥

पर्यभिष्याञ्च ॥७३७॥ —घ० ३ । ३ । ९ ॥

परि और अभि शब्दों से तमित् प्रत्यय ही । जैसे—परितः—पारी और के; अभितः—अन्मुख से ॥ ७३७ ॥

सप्तम्याहञल् ॥७४०॥ —घ० ३ । ३ । १० ॥

किम् सर्वनाम और बहु शब्दों से परे सप्तमी विभक्ति के स्थान में ञल् प्रत्यय ही । जैसे—अभिषमिति कुच; सर्वमिति सर्वत्र; वच; तत्र इत्यादि ॥ ७४० ॥

इदमो हः ॥७४१॥ —स० २।१।११॥

इदम् शब्द से सप्तमी के स्थान में हु प्रत्यय हो । जैसे—
अस्मिन्निति इह ॥ ७४१ ॥

किमोऽन् ॥७४२॥ —स० २।१।१२॥

किम् शब्द से सप्तमी के स्थान में अन् प्रत्यय हो । जैसे—
अस्मिन्निति क्व ॥ ७४२ ॥

इतराण्योऽपि दुष्कृन्ते ॥ ७४३ ॥ —स० २।१।१४॥

इतर अर्थात् पञ्चमी सप्तमी से अन्य विभक्तियों के स्थान में
भी उक्त प्रत्यय देखने में पाते हैं ॥ ७४३ ॥

इसमें विशेष यह है कि—

वा०—भवदादिभिर्योगे ॥७४४॥

भवान्, दीर्घान्, आमुष्मान्, देवानाग्रियः इन चार शब्दों
के योग में पूर्व सूत्र के प्रत्ययविधान समझना चाहिये । अर्थात्
सूत्र से जो सामान्य विधान था, उसको वास्तिक से विशेष
कनाया है ।

जैसे—स भवान्; तत्र भवान्; ततो भवान्; तन्भवन्तम्;
तत्र भवन्तम्; ततो भवन्तम्; तेन भवता; तत्र भवता; ततो भवता;
तस्मै भवते; तत्र भवते; ततो भवते; तस्माद्भूयतः; तत्र भवतः; ततो
भवतः; तस्य भवतः; तत्र भवतः; ततो भवतः; तस्मिन् भवति;
तत्र भवति; ततो भवति । स दीर्घान्; तत्र दीर्घान्; ततो
दीर्घान् । स आमुष्मान्; तत्रामुष्मान्; ततो आमुष्मान् । स
देवानाग्रियः; तत्र देवानाग्रियः; ततो देवानाग्रियः इत्यादि ॥७४४॥

सर्वैकान्यकियत्तदः काले वा ॥७४५॥

—अ० ३ । १ । १३ ॥

सर्व एक अन्य किम् अद् और तद् प्रातिपदिकों से काल सर्व में सप्तमी के स्थान में वा प्रत्यय हो ।

यह ह्रस्व अत् प्रत्यय का वाचक है । जैसे—सर्वस्मिन् काले इति सर्वदा; एकस्मिन् काले एकदा, अन्यदा; कदा; कदा; तदा इत्यादि ।

यहाँ 'काल' इसलिये कहा है कि—सर्वत्र देते, यहाँ वा प्रत्यय न हो ॥ ७४५ ॥

इदमो हिल् ॥७४६॥ —अ० ३ । १ । १४ ॥

काल सर्व में इदम् शब्द से सप्तमी के स्थान में हिल् प्रत्यय हो । जैसे—अस्मिन् काले एतद् ।

यहाँ काल की अनुवृत्ति आने के 'इह देते' इस प्रयोग में हिल् प्रत्यय नहीं होता ॥ ७४६ ॥

अधुना ॥७४७॥ —अ० ३ । १ । १५ ॥

कालाधिकरण सर्व में इदम् शब्द से सप्तमी विभक्ति के स्थान में युना प्रत्यय और इदम् शब्द की अत् भाव निराकरण करने से अधुना शब्द बनता है । जैसे—अस्मिन् काले इति अधुना ॥ ७४७॥

दानीं च ॥७४८॥ —अ० ३ । १ । १६ ॥

काल सर्व में कर्तृभाव इदम् शब्द से सप्तमी विभक्ति के स्थान में दानीं प्रत्यय हो । जैसे—अस्मिन् काले इदानीम् ॥ ७४८ ॥

तयो दा च ॥७४९॥ —अ० २।३।१९॥

काम धर्मे में वर्तमान तद् शब्द से सप्तमी विभक्ति के स्थान में दा, क्षीर चकार से दानी प्रत्यय हों। जैसे—तस्मिन् कामे ददा; तदानीम् ॥७४९॥

तयोर्दाहिलौ च छन्दसि ॥७५०॥

—अ० २।३।२०॥

इदम् क्षीर तद् दोनों शब्दों से वैदिकसंयोगविषय में सप्तमी विभक्ति के स्थान में यथासंख्य करके दा क्षीर हिल् प्रत्यय हों। जैसे—यस्मिन् कामे ददा; तस्मिन् कामे तद्हि ॥७५०॥

सद्यः वस्त्यराय्येषमः परेद्यस्यद्यपूर्वद्युरभ्येद्युरन्यतरे
द्युरितरेद्युरपरेद्युरधरेद्युरन्येद्युरन्यतरेद्युः ॥७५१॥

—अ० २।३।२२॥

यहाँ सप्तमी विभक्ति क्षीर काल की अनुवृत्ति पाती है।

इस सूत्र में काल धर्मे में सद्यः प्रादि शब्द सप्तमी विभक्ति के स्थान में दद्युः प्रादि अत्ययान्त निपातन किये हैं।

जैसे—समाने अह्नि सद्यः—समान शब्द की स आदेश क्षीर दद्युः प्रत्यय दिवस् धर्मे में हुआ है। पूर्वस्मिन् सम्बत्तरे दद्युः; पूर्वतरे सम्बत्तरे परादि—पूर्व क्षीर पूर्वतर शब्दों की पर आदेश क्षीर दद्युः तथा प्रादीन् प्रत्यय सम्बत्तरे धर्मे में यथासंख्य करके होते हैं। यस्मिन् सम्बत्तरे ऐषमः—यहाँ इदम् शब्द से सम्बत्तरे धर्मे में समसन् अत्यय हुआ है, उसके अन्धभाग का लोप होकर इदम् के इकार की वृद्धि हो जाती है। परस्मिन्नह्नि परेद्यवि—यहाँ पर शब्द से दिन धर्मे में एद्यवि अत्यय हो गया

है। अस्मिन्नहनि अस्म—यहाँ इदम् शब्द की अस्माभाव और छ प्रत्यय दिन सर्व में किया है।

और पूर्व अस्म अन्वतर इतर अपर अथवा उभय और उत्तर शब्दों से विन सर्व अभिधेय रहे, तो एषुच् अत्यय निपातन किया है। जैसे—पूर्वस्मिन्नहनि पूर्वेषुः; अन्वस्मिन्नहनि अन्वेषुः; अन्वतरस्मिन्नहनि अन्वतरेषुः; इतरस्मिन्नहनि इतरेषुः; अपरस्मिन्नहनि अपरेषुः; अथरस्मिन्नहनि अथरेषुः; उत्तरस्मिन्नहनि उत्तरेषुः; उभयोरह्नीः उभयेषुः ॥७५१॥

वा०—दुश्चोमयात् ॥७५२॥

उभय शब्द से च् अत्यय भी हो। जैसे—दुश्चोमनुष्येभ्य उभवेषुः ॥७५२॥

प्रकारवचने यात् ॥७५३॥ —प० ५।३।२३॥

यहाँ भी किम् सर्वनाम आदि शब्दों की अनुबृत्ति बनी जाती है।

प्रकारसमानाधिकरण किम् सर्वनाम और बहु प्रातिपदिकों से स्वार्थ में यात् अत्यय हो। जैसे—तेन प्रकारेण तथा; यथा; सर्वथा; इतरथा; अन्वथा; बहुथा इत्यादि ॥७५३॥

इदमस्यम् ॥७५४॥ —प० ५।३।२४॥

प्रकारसमानाधिकरण इदम् शब्द से स्वार्थ में यात् का अस्माद अच् अत्यय हो।

उकार की इत्संज्ञा होकर जोत हो जाता है। [जैसे—]
अनेक प्रकारेण इत्थम् ॥७५४॥

किमवन्न ॥७३३॥ - अ० ५ । ३ । २२ ॥

प्रकारसमानाधिकरण किम् शब्द से भी स्वार्थ में अमु प्रत्यय होने । जैसे—केन प्रकारेण कथम् ॥७३३॥

या हेतौ च छन्दसि ॥७३६॥ —अ० ५ । ३ । २५ ॥

यहाँ पूर्व सूत्र से किम् और प्रकारवचन शब्द की अनुवृत्ति जाती है ।

वैदिक प्रयोगविषय से हेतुसमानाधिकरण किम् प्रातिपदिकों से का प्रत्यय हो ।

यह अमु प्रत्यय का वाचक है । [जैसे—] केन हेतुना इति कथा; केन प्रकारेण इति कथा ॥७३६॥

दिक्छन्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेभ्य-
स्तातिः ॥७३७॥ —अ० ५ । ३ । २७ ॥

सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमासमर्थ दिशा देश और काल सभी में दिशावाची पूर्वादि शब्दों से स्वार्थ में अस्ताति प्रत्यय होते । जैसे—[सप्तमीसमर्थ से—] पूर्वस्यां दिशि पूर्वस्मिन् देशे काले वा पुरस्तात्; अस्तत्वात् । पञ्चमीसमर्थ से—पुरस्तादागतः । प्रथमासमर्थ से—पुरस्तादमनीकम् इत्यादि ।

यहाँ समर्थविभक्ति और दिशा आदि सभी का कथामुंध्य समीप्त नहीं है । यहाँ 'दिशावाचिणों का' ग्रहण इसलिये है कि—ऐन्द्र्यां दिशि अस्ति, यहाँ ऐन्ही शब्द दिशा का गौण नाम है । 'सप्तमी आदि समर्थविभक्तियों का' ग्रहण इसलिये है कि—पूर्व आद्य गतः, यहाँ भी अस्ताति प्रत्यय नहीं होता । और 'दिग् देश

काल अर्धों का ग्रहण इसलिये है कि—पूर्वदिग्म् दुरी भवति, यहाँ भी प्रत्यय न होवे ।

अस्ताति प्रत्यय में इकार लकार भी रत्ता के लिये है ॥७१७॥

दक्षिणोत्तराभ्यामतमुच् ॥७१८॥—अ० ३ । ३ । २८ ॥

यह मूत्र, अस्ताति प्रत्यय पूर्वमूत्र के प्राप्त है, उसका प्रथमाद है ।

दिशा देव और काल अर्धों में वर्तमान सप्तमी पञ्चमी और प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों के स्थाय में अतमुच् प्रत्यय होवे । जैसे—दक्षिणतो भवति; दक्षिणत आगत; दक्षिणतो रमणीयम्; उत्तरतो भवति; उत्तरत आगत; उत्तरतो रमणीयम् ॥

अतमुच् प्रत्यय के उच्चाच की इत्थंता होकर लोप हो जाता है । और इस मूत्र में दक्षिण शब्द का सम्बन्ध काल के साथ असम्भव होने से नहीं होता, किन्तु दिशा और देव दो ही अर्धों के साथ होता है ॥७१८॥

विभाषा परावराभ्याम् ॥७१९॥ —अ० ३ । ३ । २९ ॥

यहाँ अप्राप्तविभाषा इसलिये समझना चाहिये कि अतमुच् प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं । अतमुच् का विवक्ष्य होने से पक्ष में अस्ताति भी हो जाता है ।

अस्ताति प्रत्यय के अर्धों में पर और अवर अर्धों से अतमुच् प्रत्यय विफल करके हो, और पक्ष में अस्ताति हो जावे ।

जैसे—वरतो भवति; वरत आगत; वरतो रमणीयम्; परस्ताभवति; परस्तादागत; परस्ताद्वरणीयम्; अवरतो भवति; अवरत आगत; अवरतो रमणीयम्; अवस्ताभवति; अवस्तादागत; अवस्ताद्वरणीयम् ॥७१९॥

प्रत्ययेर्लुक् ॥७६०॥ —अ० २।३।३०॥

विशङ्क्य प्रत्ययानुदात्तु जिनके शब्द में हो, ऐसे दिशावाची शब्दों से परे सरलाति प्रत्यय का लुक् हो जाये। जैसे—प्राच्यां दिशि वसति प्राच्यमतिः; प्राच्यमतः; प्राच्यमधीयम्।

यहाँ लङ्लिङ्लङ्गक सरलाति प्रत्यय का लुक् होने के पश्चात् (लुक्लङ्लिङ्ग०) इस सूच से दधीप्रत्यय का भी लुक् हो जाता है ॥७६०॥

उपस्युपरिष्ठात् ॥७६१॥ —अ० २।३।३१॥

यहाँ ऊर्ध्व शब्द को उपसाध और रिन् तथा रिष्ठातिक् प्रत्यय सरलाति के शब्द में निपातन किये हैं। जैसे—ऊर्ध्वायां दिशि वसति उपरि वसति; उपस्यमतिः; उपरि रमणीयम्; उपरिष्ठाद्वसति; उपरिष्ठादागतः; उपरिष्ठाद्रमणीयम् ॥७६१॥

पश्चात् ॥७६२॥ —अ० २।३।३२॥

यहाँ अपर शब्द को पश्च आदेश और भाति प्रत्यय निपातन किया है। जैसे—अपरस्यां दिशि वसति पश्चाद्वसति; पश्चादागतः; पश्चाद्रमणीयम् ॥७६२॥

वा०—दिक्पूर्वपदस्य च ॥७६३॥

दिशा जिसके पूर्वपद में हो, उस अपर शब्द को भी पश्च आदेश और भाति प्रत्यय हो। जैसे—दक्षिणपश्चात्; उत्तरपश्चात् ॥७६३॥

वा०—अर्द्धोत्तरपदस्य च समासे ॥७६४॥

विद्यावाणी शब्द जिसके पूर्वपद में हो, और समास में अर्द्ध शब्द जिसके उत्तरपद में हो, ऐसे अर्द्ध शब्द को पश्य आदेश होवे । जैसे—दक्षिणपश्यार्द्धः; उत्तरपश्यार्द्धः ॥७६४॥

वा०—अर्द्धं च ॥७६५॥

पूर्व पद के बिना भी अर्द्ध जिसके उत्तरपद में हो, उस अर्द्ध शब्द को भी पश्य आदेश हो । जैसे—पश्यार्द्धः ॥७६५॥

पश्य पश्चा च छन्दसि ॥७६६॥ —अ० २ । ३ । ३३ ॥

यहाँ अर्द्ध शब्द को पश्य आदेश च तथा या प्रत्यय वैदिकप्रयोगविषय में होते हैं, और चकार से छान्ति प्रत्यय भी हो । जैसे—पश्य सिद्धः; पश्चा सिद्धः; पश्चात् सिद्धः ॥७६६॥

उत्तराधरदक्षिणादातिः ॥७६७॥ —अ० २ । ३ । ३४ ॥

उत्तर अधर और दक्षिण शब्दों से अस्ताति प्रत्यय के अर्थ में छान्ति प्रत्यय होवे । जैसे—उत्तरस्यां दिशि बसति उत्तरादसति; उत्तरादागतः; उत्तरादमणीयम्; अधरादसति; अधरादागतः; अधरादमणीयम्; दक्षिणादसति; दक्षिणादागतः; दक्षिणादमणीयम् ॥७६७॥

एनञ्मत्तरस्यामनूरेऽपञ्चम्याः ॥७६८॥

—अ० २ । ३ । ३५ ॥

यहाँ एनप् प्रत्यय में अप्रत्ययविभाषा है, क्योंकि एनप् प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है । और पूर्व सूत्र में उत्तर आदि तीनों शब्दों की अनुवृत्ति माली है ।

सप्तमी और प्रथमात्ममर्थ उत्तर अक्षर और दक्षिण शब्दों से निकट धर्म में आति प्रत्यय का वाचक एनप् प्रत्यय विकल्प करके हो, वक्ष में आति भी हो जाये ।

जैसे—उत्तररतो विक्षि वसति उत्तरेण वसति; उत्तराद्वसति; उत्तरतो वसति; उत्तरेण रमणीयम्; उत्तराद्वरणीयम्, उत्तरतो रमणीयम्; अक्षरेण वसति; अक्षराद्वसति; अक्षस्ताद्वसति; अक्षरेण रमणीयम्; अक्षराद्वरणीयम्; अक्षस्ताद्वरणीयम्; दक्षिणेन वसति; दक्षिणाद्वसति; दक्षिणतो वसति; दक्षिणेन रमणीयम्; दक्षिणाद्वरणीयम्; दक्षिणतो रमणीयम् ।

यहां 'अदूर' ग्रहण इसलिये है कि—उत्तराद्वसति, वहां एनप् न होये । और 'सप्तमीसमर्थ का निषेध' इसलिये किया है कि—उत्तरावागतः, वहां भी एनप् प्रत्यय न होये ।

और वहां से आये छलि प्रत्यय के पूर्व पूर्व तक धूर्तों के सप्तमीसमर्थ का निषेध सम्भ्रमा चाहिए ॥७६८॥

दक्षिणावाच् ॥७६९॥ —अ० ४ । ३ । १६ ॥

सप्तमी और प्रथमात्ममर्थ दक्षिण शब्द से सरलाति के धर्म में आच् प्रत्यय हो । जैसे—दक्षिणा वसति; दक्षिणा रमणीयम् ।

यहां 'सप्तमी का निषेध' इसलिये है कि—दक्षिणत आगतः; वहां आच् प्रत्यय न हो ॥७६९॥

आहि च दूरे ॥७७०॥ —अ० ४ । ३ । १७ ॥

यहां पूर्व से दक्षिण शब्द की अनुवृत्ति आती है ।

दक्षिण प्रातिपदिक से अस्ताति के धर्म में चाहि, अकार से आच् प्रत्यय होवे । जैसे—दक्षिणाहि वसति; दक्षिणा वसति; दक्षिणाहि रमणीयम्; दक्षिणा रमणीयम् ।

यहां 'दूर' कह्य इसलिये है कि—दक्षिणतो वसति, यहां न हो । और 'पञ्चमीसमर्थ का निषेध' इसलिये है कि—दक्षिणत आगतः, यहां भी चाहि प्रत्यय न होवे ॥७७०॥

उत्तराचम ॥७७१॥ —अ० १ । ३ । ३० ॥

उत्तर नाम से अस्ताति प्रत्यय के धर्म में दूर धर्म वाच्य रहे, तो आच् और चाहि प्रत्यय हों । जैसे—उत्तरा वसति; उत्तराहि वसति; उत्तरा रमणीयम्; उत्तराहि रमणीयम् ।

यहां 'दूर' कह्य इसलिये है कि—उत्तरेव आसति, यहां न हो । और 'पञ्चमीसमर्थ का निषेध' इसलिये है कि—उत्तरावागतः, यहां भी चाहि प्रत्यय न होवे ॥७७१॥

पूर्वाधरावराभासति पुरधवश्चेयाम् ॥७७२॥

—अ० १ । ३ । ३१ ॥

सप्तमी पञ्चमी और प्रथमासमर्थ पूर्व अथर और अथर प्रातिपदिकों से अस्ताति प्रत्यय के धर्म में सति प्रत्यय, और पूर्व आदि शब्दों को अत्र के पुर अच् और अच् आवेश भी होवें ।

जैसे—पूर्वस्या दिति वसति पुरो वसति; पुर आगतः; पुरो रमणीयम्; अथो वसति, अथ आगतः; अथो रमणीयम्; अथो वसति; अथ आगतः; अथो रमणीयम् ॥७७२॥

अस्ताति च ॥७७३॥ —अ० २ । ३ । ४० ॥

अस्ताति प्रत्यय परे हो, तो भी पूर्वे आदि तीनों शब्दों को पुरु आदि आदेश कम से हो । और यहाँ अस्ताति प्रत्यय भी इस आदेश-विधानरूप आत्मक से ही समझना चाहिए । जैसे—
पुस्तताइसति; पुस्ततादायतः; पुस्तताइमयीयम्; अस्तताइसति;
अस्ततादायतः; अस्तताइमयीयम् ॥७७३॥

विभावावरस्य ॥ ७७४ ॥ —अ० २ । ३ । ४१ ॥

यहाँ प्राप्तविभावा है । पूर्व से निरप ही अब आदेश प्राप्त है ।

अवर शब्द को अस्ताति प्रत्यय के परे अब् आदेश विकल्प करके हो । जैसे—अस्तताइसति; अस्ततादायतः; अस्तताइमयीयम्
॥७७४॥

संख्याया विधार्थे वा ॥७७५॥ —अ० २ । ३ । ४२ ॥

क्रिया के प्रकार धर्म में वर्तमान संख्यावाची प्रातिपदिकों से स्वार्थ में वा प्रत्यय हो । जैसे—एकया भुङ्क्ते; द्विया गच्छति; त्रयुषा; पञ्चया इत्यादि ॥७७५॥

वाप्ये वाशब् ॥ ७७६ ॥ —अ० २ । ३ । ४३ ॥

वाप्य—निन्दित—धर्म में वर्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में वाशब् प्रत्यय हो । जैसे—कुत्सितो वैयाकरणो वैयाकरणवाशः; वाक्त्रिकवाशः इत्यादि ।

औ दुसरे व्याकरण वाक्य में प्रयोग और दूरे वाचरण करता हो, उसकी 'वैयाकरणवाश' संज्ञा इसलिए नहीं होती कि

जिस गुण के विद्यमान होने से संघाकरण शब्द की प्रवृत्ति उस
गुण में होती है, उसी गुण की निन्दा से प्रत्यय होता है ॥७७६॥

एकादाकिनिच्चाश्रयाये ॥७७७॥ — अ० २ । ३ । २२ ॥

अमहापयाची एक शब्द से स्वार्थ में आकिनिच् प्रत्यय हो,
घोर चकार से कन् प्रत्यय घोर मुक् भी हों । जैसे—एककी,
एककः, एकः ।

यहां आकिनिच् घोर कन् दोनों का मुक् सम्भलना चाहिये,
परन्तु प्रायश्चित्तान् अर्थ न हो इसलिए यहाँ में मुक् होता है
॥७७७॥

सतिशायने तमचिष्टनी ॥७७८॥—अ० २ । ३ । २२ ॥

सतिशायन—प्रकृत्यर्थ की उद्भूति—अर्थ में वर्तमान
सतिपदिक से स्वार्थ में तमच् घोर चिष्टन् प्रत्यय हों ।

जैसे—सतिशायितः श्रेष्ठःश्रेष्ठतमः; वैशाकरणतमः; बाह्य-
तमः; वर्तनीयतमः; सुकुमारतमः इत्यादि । अथमेश्वरसतिशयेन
पटुः परिश्रुतः; अचिष्टः; सरिष्टः इत्यादि ॥७७८॥

तिष्ठश्च ॥७७९॥ —अ० २ । ३ । २२ ॥

यहां उद्भूतिप्रकरण में चतुर्वीधभाव के भावि में हीनत
प्राथम्य और सतिपदिकों से प्रायश्चित्तान् का अधिकार कर चुके
हैं । इस कारण तिष्ठन् शब्दों से प्रायश्चित्तान् नहीं प्राप्त है,
इतीतिसे यह सूच पड़ा है ।

तिष्ठन्त शब्दों से सतिशय अर्थ में तमच् प्रत्यय हो । जैसे—
अथमेण भूजं पचति पचतिमान्; अल्पतिष्ठमान् इत्यादि ।

यहाँ पूर्वपक्ष से दृष्टन् प्रत्यय इसलिए नहीं आता कि प्रत्ययान्त पुनरावृत्ति शब्दों से लोक में वाच्य शब्दों के साथ सम्बन्ध दीव्यता है, किया शब्दों के साथ नहीं ॥७७९॥

द्विचतुर्विधव्योपपदे तरबोपमुनी ॥७८०॥

—मं० ३ : १ : ३७ ॥

यहाँ विद्वत् की अनुवृत्ति पूर्व पक्ष से आती है ।

यहाँ विधान करने योग्य दो और व्यक्तियों का कहना उपपद हो, यहाँ सामान्य प्रातिपदिकों और विद्वत् शब्दों से अतिशय संबंध में तरप् और विसुन् प्रत्यय हो ।

जैसे—डाविमावाङ्घ्री यद्यमनयोरतिशयेनादयः प्राक्चतरः; डाविमी विद्वांसो यद्यमनयोरतिशयेन विद्वान् विद्वतरः; प्राक्चतरः; पचतितरान् लपतितरान् इत्यादि । ईदमुन्—डाविमी गुरु, यद्यमनयोरतिशयेन गरीवान्; पटीयान्; लघीयान् इत्यादि ।

विध्वज्योपपद से—मादुराः पादलिपुत्रेभ्य प्राक्चतराः; वाराणसेषा इतरेभ्यो विद्वतराः; दत्तनीचतराः इत्यादि । ईदमुन्—गरीवांसः; पटीयांसः इत्यादि ॥७८०॥

अजादी नृपवचनादेश ॥७८१॥ —मं० २ : ३ : ३८ ॥

पूर्व सूत्रों में जो अजादि—दृष्टन्, ईदमुन्—प्रत्यय सामान्य करके कहे हैं, उनका यहाँ विध्वज्योपपद करने हैं, कि वे दोनों प्रत्यय पुनरावृत्ति प्रातिपदिक से ही होंगे, अन्य से नहीं । अजाहरण पूर्व से चूके हैं ।

नियम होने से प्राक्चतरः; प्राक्चतमः इत्यादि में दृष्टन् और ईदमुन् प्रत्यय नहीं होते । और प्रत्यय का नियम सम्बन्धना

चाहिए, प्रकृति का नहीं। अर्थात् पुनराची प्रातिपदिकों से तस्य् तमप् प्रत्यय भी होते हैं, और द्रव्यवाचक शब्दों से तस्य् तमप् ही होते हैं, द्रष्टुन् और ईदुमुन् नहीं होते ॥७८२॥

तुल्यस्यसि ॥७८२॥ — अ० २।१।२९ ॥

यहाँ पूर्व तुल्य से सजादि की अनुवृत्ति नहीं आती है। पूर्व तुल्य में तुल्यवाचियों से नियम किया है, इससे यहाँ प्राप्ति नहीं थी।

तुल्य और तुल्य प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से वेदविक्रय में द्रष्टुन् और ईदुमुन् प्रत्यय होंगे। जैसे—प्राप्ति करिष्यः, 'अतिशयेन कर्ता' ऐसा विग्रह होगा; अतिशयेन दोहारी दोहीकसी प्रेसुः।

यहाँ सामान्य भसंज्ञा में (अस्यादे०) इससे पुनर्बुद्धाव होकर तुल्य तुल्य प्रत्ययों का लुक् हो जाता है ॥७८२॥

प्रशस्वस्य श्वः ॥७८३॥ — अ० २।१।३० ॥

सजादि प्रत्ययों के परे प्रशस्व शब्द को श्व आदेश होवे। जैसे—सर्व इमे प्रशस्वाः अथमतिशयेन प्रशस्वः श्वेष्ठः; इाविनी प्रशस्वी अथमनयोरतिशयेन प्रशस्वः श्वेवान्।

नद्धितप्रत्ययों के परे भसंज्ञक एकान् शब्दों को प्रकृतिभाव होने से अ शब्द के लिप्ताग का लोप नहीं होता ॥७८३॥

ज्व ज्व ॥७८४॥ — अ० २।१।३१ ॥

प्रशस्व शब्द को सजादि प्रत्ययों के परे ज्व आदेश भी हो। जैसे—सर्व इमे प्रशस्वाः अथमनयोरतिशयेन प्रशस्वः ज्वेष्ठः; इाविनी प्रशस्वी अथमतिशयेन प्रशस्वः ज्वावान्।

यहाँ ईयन् के ईकार को आकारादेश (उदादी०) इस वक्ष्यमात्र सूत्र से हो जाता है ॥ ७८४ ॥

बृद्धस्य च ॥ ७८५ ॥ —घ० ४ । ३ । ५३ ॥

बृद्ध शब्द को भी अजादि प्रत्ययों के परे उच्च आदेश होवे । जैसे—सर्वे इमे बृद्धाः अयमेवानतिष्ठयेन बृद्धः उनेष्टः; उच्चादिमौ बृद्धौ अयमनयोरेतिष्ठयेन बृद्धः उपामान् ।

घोर (त्रिवक्ष्यरः) इन वक्ष्यमात्र सूत्र से बृद्ध शब्द को सर्व आदेश भी होता है, परन्तु बृद्ध आदेश कहना व्यर्थ न होजाये, इसलिये वक्ष में सम्बन्धना चाहिये । जैसे—वधिष्ठः, वर्षमिान् ॥ ७८६ ॥

अन्तिरबाह्ययोर्नैदसाधौ ॥ ७८७ ॥ —घ० ४ । ३ । ५३ ॥

अन्तिक घोर बाह्य शब्दों को वक्ष्यान्वय करके अजादि प्रत्ययों के परे नैद घोर साध आदेश होवे । जैसे—सर्वाणीमान्प्रान्तिकानि इदमेवानतिष्ठयेनान्तिकं नैदिष्ठम्; उभे इमे अन्तिके इदमनयोरेतिष्ठयेनान्तिकं नैदीयः; सर्वे इमे बाह्यमधीयते नैदिष्ठमधीयते; अयमस्मात् साधोवीधीते ॥ ७८८ ॥

सुबालपयोः कनन्वतरस्याम् ॥ ७८९ ॥

—घ० ४ । ३ । ५४ ॥

इस सूत्र में अप्राप्तविधाया इसलिये समझनी चाहिये, कि अजादि प्रत्ययों के परे कन् आदेश किसी सूत्र से प्राप्त नहीं ।

सुब और अल्प शब्दों के स्थान में अजादि प्रत्ययों के परे कन् आदेश विकल्प करके होवे ।

जैसे—सर्व इमे दुःखानः अयमेवामतिशयेन दुःखा कनिष्ठः, यमिष्ठः; उभावपि दुःखानो अयमनघोरतिशयेन दुःखा कनीयान्, यनीयान्; सर्व इमेऽस्याः अयमतिशयेनल्पः कनिष्ठः, यमिष्ठः; उभावप्यपि अयमतिशयेनल्पः कनीयान्, यनीयान् ॥ ७८७ ॥

विमलतोत्पत् ॥७८८॥ —स० २।३।१२ ॥

चिन्, धीर मनुन् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से अजादि प्रत्यय परे हों, तो चिन्, धीर मनुन् प्रत्यय का लुक् हो जावे ।

जैसे—एवं इमे अग्निषः अयमेवामतिशयेन अग्नी अमिष्ठः; मायिष्ठः इत्यादि; उभावपि अग्निषो अयमनघोरतिशयेन अग्नी अनीयान्; अयमरमात् अनीयान्; सर्व इमे अनवन्तः अयमेवामतिशयेन अनवान् यमिष्ठः; उभावपि अनवन्तो अयमनघोरतिशयेन अनवान् यनीयान्; अयमस्मात् यनीयान् इत्यादि ।

(प्रत्ययस्य यः) इस सूत्र से ये के यहाँ तक सब सूत्रों में आयेले विधानरूप ज्ञापक से अजादि प्रत्ययों—इच्छन्, ईप्सुन्—की उत्पत्ति उन उन प्रत्यय आदि प्रातिपदिकों से सम्भवनी चाहिये ॥ ७८८ ॥

प्रशस्तायां रूपम् ॥७८९॥ —स० २।३।१३ ॥

प्रकृत्यर्थ की प्रशस्ता अर्थ में वर्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में रूपम् प्रत्यय होवे । जैसे—प्रशस्तो वैयाकरणो वैयाकरणरूपः; याज्ञिकरूपः; राघवरूपः; उपदेशकरूपः; प्राज्ञरूपः इत्यादि ।

यहाँ पूर्व से निकल की भी अनुवृत्ति चली आती है । जैसे—पञ्चद्विरूपम्; पठद्विरूपम्; अल्पद्विरूपम् ।

तद्विना अत्यन्त व्यापकता विचारों से द्विवचन बहुवचन विभक्ति नहीं आती, और सब विभक्तियों के एकवचन भी नहीं होते, किन्तु सम्भवसंज्ञा होजाने से सब विभक्तियों के स्थान में सम् वादेश हो जाता है। परन्तु द्विवचनान्त और बहुवचनान्त विचारों से ही तद्विना अत्यय हो जाते हैं। जैसे—पठनोक्तम्; पठनिकल्पम् इत्यादि ॥ ७८९ ॥

ईषदसमाप्ता कल्पदेश्यदेशीयः ॥ ७९० ॥

—स० ३।३।९० ॥

समाप्ति होने में थोड़ी न्युनता अर्थ में वर्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में कल्पन् देश्य और देशीयद् अत्यय होवें। जैसे—
ईषदसमाप्ता विद्या विद्याकल्पः; विद्यादेश्यः; विद्यादेशीयः;
ईषदसमाप्तः पठः पठकल्पः; पठदेश्यः; पठदेशीयः; मृदुकल्पः;
मृदुदेश्यः; मृदुदेशीयः इत्यादि।

तद्विना की भी अनुवृत्ति नहीं आती है। जैसे वचनिकल्पम्;
पठनिकल्पम्; पठनिकल्पम्; पठनिकल्पम्; पठनिकल्पम्;
पठनिकल्पम् इत्यादि ॥ ७९० ॥

विभाषा सुषो बहुच् पुरस्तात् ॥ ७९१ ॥

—स० ३।३।९० ॥

यहाँ भी अप्राप्तविभाषा है, क्योंकि मुकन्त से पूर्व बहुच् अत्यय किसी से प्राप्त नहीं। और यहाँ पूर्वसूच से ईषदसमाप्ति अर्थ की अनुवृत्ति भी नहीं आती है। ईषदसमाप्ति अर्थ में वर्तमान मुकन्त से पूर्व बहुच् अत्यय विकल्प करके होते।

तृतीयाध्याय के आरम्भ में अक्षरों के चालू प्रातिपदिकों से बने होने का अधिकार कर चुके हैं, इसलिये यहाँ पुरस्तात् अर्थ

पड़ा है कि प्रातिपदिकों के आदि में प्रत्यय हों । जैसे— ईशदत्तमात्तो
नेत्रः बहुनेत्रः; बहुपटुः; बहुशुभुः; बहुगुडा द्राक्षा इत्यादि ।

विचल्य के कहने से 'कल्पन्' आदि प्रात्यय भी इन प्रातिपदिकों
से होते हैं । और गुणन्यग्रह्य तिङन्त की निष्पत्ति के लिये है
॥ ७९१ ॥

प्रकारवचने जातीयर् ॥७९२॥ —अ० २ । ३ । १९ ॥

प्रकार के कहने अर्थ में वर्तमान प्रातिपदिकों से स्वार्थ में
जातीयर् प्रत्यय होते । जैसे— एवमप्रकारः एवमजातीयः; मृदुप्रकारः
मृदुजातीयः; प्रमाद्यजातीयः; प्रमेयजातीयः इत्यादि ॥ ७९२ ॥

प्रातिपदिकः ॥७९३॥ —अ० २ । ३ । ७४ ॥

यह अधिकार मूल है । यहाँ से चाये (इये प्रतिकृतो) इस
मूलपर्यन्त सब मूलों तथा व्यर्थों में सामान्य करके क प्रत्यय
होता । जैसे— अश्वकः; वृषभकः; वीकः इत्यादि ।

तिङन्त की अनुवृत्ति इस मूल में नहीं जाती, किन्तु उत्तरमूल
में ही जाती है ॥ ७९३ ॥

अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः ॥७९४॥

—अ० २ । ३ । ७० ॥

यहाँ तिङन्त की भी अनुवृत्ति जाती है । और यह मूल क
प्रत्यय का अन्वय है । अव्यय सर्वनामसंज्ञक और तिङन्त शब्दों
के टि भाग से पूर्व कच् प्रत्यय होते ।

यहाँ भी प्रत्ययों का वर होना अधिकार होने से टि से पूर्व
नहीं प्राप्त है, इसलिये प्राक्प्रत्यय किया है । जैसे— अव्ययों से—
उच्यते; नीचते; घनते; इत्यादि । सर्वनामसंज्ञकों से— सर्वके,

कर्म; विश्वके, विश्वे; लभयके, लभये; यका; सका; वा; सा; यकः; लकः; वः; लः; एयकः, एयः ।

यहाँ प्रातिपदिक और सुबन्त दोनों की अनुवृत्ति यही जाती है, इस कारण कहीं प्रातिपदिक के टि से पूर्व और कहीं सुबन्त के टि से पूर्व एकम् प्रत्यय होता है ।

प्रातिपदिक के टि से पूर्व—जैसे—दुष्मकाभिः; धर्मकाभिः; सुष्माभिः; अस्माभिः; दुष्मकाभुः; धर्मकाभुः; सुष्माभुः; अस्माभुः; सुलकयोः; आवकयोः; दुषयोः; आवयोः इत्यादि । सुबन्त के टि से पूर्व—जैसे—एवका; मयका; एववा; मवा; एवकि; मयकि; एवमि; मयि इत्यादि । तिरुन्त से—मयलकि; ययलकि; पठलकि; अयपलकि इत्यादि ॥ ७९४ ॥

वा०—अकचप्रकरणे तूष्णीमः कान् ॥७९५॥

तूष्णीम् मकारान्त सम्प्रत्यय शब्द के टि भाग से पूर्व एकम् प्रत्यय का वाचक कान् प्रत्यय होवे । जैसे—आलितम् किल तूष्णीकान् ॥ ७९५ ॥

वा०—शीले को मतोपशब्द ॥७९६॥

शील शब्द में तूष्णीम् सम्प्रत्यय शब्द से क सम्प्रत्यय और तूष्णीम् शब्द के मकार का लीप हो जावे । जैसे—तूष्णीशीमः तूष्णीकः ॥७९६॥

कस्य च इः ॥७९७॥ —सं० ३ । ३ । ७९७

यहाँ सम्प्रत्ययों के सम्बन्ध का सूचार्थ के साथ सम्भव होने से सम्प्रत्यय की अनुवृत्ति पूर्व सूच से जाती है, सर्वनाम की नहीं । क्योंकि सर्वनाम शब्द कोई ककारान्त नहीं है ।

ककारान्त प्रत्ययों को सकृन् प्रत्यय के संघोष में ककारान्त प्रत्येय होते । जैसे—क्रिक्, यकिक्; हिरक्, हिरकुक्; पृथक्, पृथक्कु इत्यादि ॥७९७॥

अनुकम्पायाम् ॥७९८॥ - अ० ५ । ३ । ७९ ॥

दुम्भों के दुःखों को वधाशक्ति निवारण करने को 'अनुकम्पा' कहते हैं । अनुकम्पा सर्व में वर्तमान सामान्य शक्तिविकी और तिष्ठन्त मयी से वधाशान्त प्रत्यय ही ।

जैसे—दुःखकः; वरसकः; दुर्वलकः; कुमुलितकः; उग्ररितकः इत्यादि । तिष्ठन्ती से—लेतके; विश्रुतितकि; स्वमितकि; प्राप्तिरितकि इत्यादि ॥ ७९८ ॥

ठाजाशबुध्वं द्वितीयादयः ॥७९९॥

- अ० २ । ३ । ७९ ॥

यहाँ पूर्वी मूत्र से लोप को अनुवृत्ति जाती है ।

इस प्रकार में जो ठ मयादि प्रत्यय हैं, उनके वरे जड़ति के द्वितीय अन् से अन्ध जो सम्प्रत्यय है उसका लोप हो । ऊर्ध्व मय के ग्रहण से सब का लोप हो जाता है ।

जैसे—अनुकम्पितो देवदत्त-देविकः, देवियः, देवियः; यजिकः, यजियः, यजिलः—यहाँ देवदत्त और यजवत्त शब्द से ठ, थ और इत्तक् प्रत्यय मय से हुए हैं । अनुकम्पित ऊर्ध्वदत्तकः उपद्रः, उपकः, उपियः, उपिलः, उपिकः—यहाँ ऊर्ध्वदत्त शब्द से अत्तक्, युप्, थ, इत्तक् तथा ठक् प्रत्यय होते हैं ।

इस मूत्र में ठ को भी इक् प्रत्येय हो जाता है । फिर मयादि के कहने से ठ प्रत्यय का भी ग्रहण हो जाता, फिर 'ठ प्रत्यय का'

बहुवचसिनिषे है कि—यहां ऊर्ध्व प्रत्याहार से परे ठ के स्थान में क प्रादेश होता है, वहां भी वो अन् से अन्य वचों का जोष हो जाये । जैसे—अनुकम्पितो वानुदत्तः वानुकः; पितुकः ॥८९९॥

वा०—द्वितीयादयो लोपे संख्यक्षरस्य द्वितीयस्ये
तदादेशोऽपी वक्तव्यः ॥८००॥

दो अक्षरों से अन्य वचों का जो जोष सूत्र से कहा है, सो जो द्वितीय अक्षर सन्ध्यक्षर—ए, ऐ, ओ, सो—हो, तो वहां सन्ध्यक्षर का जो जोष हो जाये । जैसे—सहोदः, सहिकः; कहोदः, कहिकः ।

यहां सहोद कहोद किसी मनुष्यविशेष की संज्ञा है, उन में हकारविशिष्ट ओकार का भी जोष हो जाता है ॥८००॥

वा०—चतुर्थत् ॥८०१॥

द्वितीय अन् से परे अन्य भाग का जो जोष कहा है, सो चतुर्थ अन् से परे भी हो जाये । जैसे—बृहस्पतिवत्तकः बृहस्पतिकः, बृहस्पतिपः, बृहस्पतितः इत्यादि ॥८०१॥

वा०—अन्तादौ च ॥८०२॥

अन्तादि अन्तर्ग के परे जोष कहा है, सो इत्यादि अन्तर्गों के परे भी द्वितीय अन् से अन्तर्ग का जोष हो । जैसे—देवदत्तकः देवदकः; यज्ञदत्तकः यज्ञदकः—यहां कन् प्रत्यय हुआ है ॥८०२॥

वा०—लोपः पूर्वपदस्य च ॥८०३॥

अन्तादि इत्यादि सामान्य प्रत्ययों के परे अन्तादौ अन्तर्गों के पूर्वपद का भी जोष हो जाये । जैसे—देवदत्तको दत्तकः, यज्ञदत्तको दत्तकः, दत्तिकः, दत्तिवः, दत्तितः इत्यादि ॥८०३॥

शा ०—अथरूपे लक्षणेभ्यः ॥ ५० ॥

कोई भी व्यवसाय न करने हो, तो भी पूर्वपद का जीव होवे ।
 जैसे :—देवदत्तो दत्तः पुरादि । (५०४)।

શાંતિ-પ્રવર્ધન દ્વારે જ 11.05.11

उपनिमित्त सहाकार से परे जो इत्यन् प्रत्यय उसके हकार का लोप हो। जैसे—भानुइलो भानूसः; यमुइलो यमुतः इत्यादि।

याः—एक। अणुर्वैयदानां मुलरूपदलीपः ॥८०॥

एकाक्षर जिनका पूर्वपद हो, उनके उत्तरपद का लोप हो, अर्थात् प्रथमों के परे । जैसे—वायाघोः; वाचिकः; क्षुत्तिकः; मयत्तिकः इत्यादि ॥५०६॥

निष्कलङ्को निष्कारणो हृषीकेशस्य कलशम् ॥६०॥

— 8 —

दो में से एक का जहाँ निष्कारण—पुण्य—करना हो, वहाँ क्रिय मत और तत् प्राप्तिदिनों से उत्तरण प्रत्यय होवे ।

जातिवाची कित्तावाची वृत्तवाची वा संज्ञा चार्थों के समुदाय से एकदेश का वृत्त करवा होता है। जैसे--कतरी भवती: कठः; कतरी भवती: कारकः; कतरी भवती: पदुः; कतरी भवतीर्द्वयदसः; कतरी भवती: कठः; कतरी भवती: कारकः; कतरी भवती: पदुः; कतरी भवतीर्द्वयदसः कतरी आशब्दनु इत्यादि।

यहां महाविभाषा अर्थात् (हमचर्चा) इस सूत्र से विकल्प की अनुवृत्ति पत्ती जाती है। इससे की भवतोर्देकदतः स प्रागल्भ्यतु इत्यादि वाक्यों में कतमच् प्रत्यय नहीं होता ॥८०७॥

या बहुना जातिपरिग्रहे कतमच् ॥८०८॥

— अ० १ । १ । ११ ॥

पूर्व सूत्र से किम् आदि शब्दों और एक के निर्धारण की अनुवृत्ति जाती है।

बहुतों में से एक का निर्धारण करना अर्थ हो, तो जाति के पूछने अर्थ में वर्तमान किम् आदि शब्दों से विकल्प करके कतमच् प्रत्यय होने। जैसे—कतमो भवता कतः; यतमो भवता कतः कतम प्रागल्भ्यतु इत्यादि।

यहां विकल्प के होने से वक्ष में इसी अर्थ में कतमच् भी होता है। जैसे—यको भवता कतः एक प्रागल्भ्यतु। और महाविभाषा के नले आने से वाक्य भी बना रहता है। जैसे यो भवता कतः स प्रागल्भ्यतु।

यहां 'जातिपरिग्रह' का बहुव्यय इसलिये है कि—को भवता देवदत्तः, यहाँ निज की संज्ञा के प्रश्न में किम् शब्द से कतमच् प्रत्यय नहीं होता। और परिग्रह का सम्बन्ध एक किम् शब्द के साथ ही सम्भूतना चाहिये, क्योंकि यत् तत् के साथ बहु अर्थ सम्भवित नहीं होता ॥८०८॥

इवे प्रतिवृत्ती ॥८०९॥ — अ० १ । १ । ११ ॥

यहाँ पूर्व से परिग्रह की अनुवृत्ति जाती है।

उपमावाचक अर्थ में वर्तमान प्रातिपदिक से कच् प्रत्यय होने। जैसे—सम्भ इव प्रतिकृतिः सम्भक्तः; गर्दभक्तः; लघुक्तः।

यहाँ 'प्रतिकृति' ग्रहण इनलिये है कि—बीरिय मन्थन, यहाँ केवल उलमा ही है प्रतिकृति नहीं, इससे कन् प्रायम नहीं होता ॥८०९॥

सुम्ननुष्ये ॥८१०॥ —स० १।३।१८॥

प्रतिकृति सादृशपार्थक्यता हो, तो उस अर्थ में सिद्धि कन् प्रत्यय का लुप् हो जाये । जैसे—सन्धेय मनुष्यः सन्ध्या; दासी; धरकुटी दत्तादि, यहाँ लङ्गिण-प्रत्यय का लुप् होने से सिद्ध धीर बनन पूर्व के हो हो जाती है ।

यहाँ 'मनुष्य' ग्रहण इसलिये है कि—सन्धकः, उष्णकः दत्तादि में लुप् न होवे ॥८१०॥

जीविकार्थे चाप्ये ॥८११॥ —स० १।३।१९॥

यहाँ मनुष्यग्रहण की अनुवृत्ति पूर्व लुप् से सम्बन्धी चाहिये, क्योंकि उलर लुप् में भी जाती है ।

१ जीविका काल का अर्थ मुख्य करके जीवनीयान् करता है । इस प्रकार में सिक्कान् प्रतिकृति धीर मनुष्य के लुप् में अनुवृत्ति नहीं जाती । यहाँ प्रयोजन यह है कि जिस लुप् लुप् चादि सम्बन्धी या निश्चितिको के साथ प्राप्तता ज्ञेय होता है, उनके विपरीत में उनकी प्रतिकृति देखते धीर लुप् कर्म तथा उपकार भावि का सम्बन्ध करते हुए अपने चित्त में स्वीकार करते हैं । परन्तु इस प्रकार में यह बात सिक्कारता चाहिये कि उपकार, में मिलने दूसरा करार्य है, जब जबकी प्रतिकृति होती है या नहीं ? जो बहूरे छोटे हाथी चादि जीवों की अस्मिन्मणीय मनुष्यादि की प्रतिकृतिवां गया बना कर देखते हैं, वे जीवितार्थक्य होते हैं । धीर जो बहूरे हीन हीनान्तर देख वैधान्तरी

वर्ण्य उसको कहते हैं कि जो ऐसा जावे, जो ब्रह्मार्थ ज्ञान के लिये न हो और उससे किसी प्रकार की जीविका होखी होवे, वह ब्रह्मार्थ बाध्य रहे, तो प्रतिफलित धर्म में विहित ब्रह्मण्य का लुप्त हो जावे । जैसे—अल्पिष्ठान्न प्रतिफलितमिच्छः; विश्वामित्रः; अर्जुनस्य

में अनुपपन्नान्न तथा अन्न की पुत्रादि की प्रतिफलितता रखते हैं, वे अल्पब्रह्मण्यकारण अर्थात् ज्ञान के लिये न हैं, किन्तु वेस और शिक्षा के जीविका करते हैं । परन्तु ब्रह्मार्थ के लक्ष्य इस विषय का कुछ सम्बन्ध नहीं ।

इसी मूल के अन्तर्गत वेदाचार्यों का यह ब्रह्मण्य है कि—जीविका के लिए जो ब्रह्मार्थ हो और वह ऐसा न जावे, तो उस धर्म में अनुपपन्न का लुप्त हो जावे, और (अनुपपन्नमेव) इस मूल के अनुसार ब्रह्मण्य का भी सम्बन्ध न करते, अर्थात् यदि वेदाचार्यों की मुक्तिवै, जो कि भविष्य में बना बना कर चलते हैं, उनसे जीविका—अन्न का आशय—तो है परन्तु वे प्रतिभा ज्ञान के लिये नहीं हैं, इसलिए वे उन्हीं का ब्रह्मण्य होना चाहिए ।

और इस मूल पर ब्रह्मण्यकारण के भी शिक्षा है कि—जो अन्तर्गत और अन्न आदि की प्रतिभा तथा बना कर चलते हैं, वहाँ अनुपपन्न नहीं पावेगा । क्योंकि ब्रह्मण्य के अन्तर्गत ब्रह्मण्य पदार्थ है कि जो ज्ञान के लिये न हो । इन ब्रह्मण्यकारण के भी अन्तर्गत ही अन्तिमार्थ सिद्ध करते हैं, तो ठीक नहीं, क्योंकि वहाँ प्रतिफलित और अनुपपन्न ब्रह्मण्य ही की अनुपपन्न है, अन्न की नहीं । वेदाचार्य भी वहाँ वेदाचार्य अन्तिमार्थ के नाम सम्बन्ध होता है, वहाँ अनुपपन्न ही की बना होती है । और वेदाचार्य ब्रह्मण्य भीविक ही हैं, वेदाचार्य भी वेदाचार्य है । जो इस मूल के अनुसार ब्रह्मण्य की अनुपपन्न अन्तिमार्थ आदि जोनों में नहीं की, वह उसकी अन्न

प्रतिकृतिरदुःखः, सुखिच्छिदः, रागः, क्लेशः, शिषः, पिप्पुः, स्कन्धः, आदित्य इत्यादि । ये वसिष्ठ आदि मनुष्यों के विशेष नाम भूत वसिष्ठत् और वसुमान् तीनों नाम में होते हैं ।

है । क्योंकि ये लोग देवता शब्द की मनुष्य के व्यक्तिगतार्थकारी समझते हैं, परन्तु सामान्य प्रत्य होने से जो जो प्रतिकृति जीविका के लिए ही और केही न जाये, तो वह उस शब्दके अभिप्रेत में प्रत्य का पुन होना चाहिये ।

और जहाँ कोई मनुष्य किसी जीवों की प्रतिकृतियों की विद्या के सर्वत्र समस्त जीविका करता हो, वहाँ भी पुन होना चाहिये । और पूरा का भवे भी सावर साकार ही होता है जो केवल का होना चाहिये । फिर महाभाष्यकार ने लिखा है कि जो इस समय पूरा के लिये है, वहाँ पुन होना । इसका भी यही अभिप्राय है कि जो शिव आदि मनुष्य की प्रतिकृति पूरा साकार के लिए है, उसके प्रत्य का पुन हो जाये । क्योंकि अन्ते पुन ही जो जो प्रतिकृति है उसके देवते के सम्बन्ध लोग कुराई समझते हैं ।

देव और देवता शब्द से मनुष्यों के प्रत्य में प्रमाण—

‘विश्वे देवास्त आसन् पृथुलोम^२ हवन् ॥’ यह पृथुलोम का प्रमाण है । ‘विष्टा^३ हि देवाः ॥’ यह प्रत्य का प्रमाण है । ‘मातृदेवी भव । पितृदेवी भव । आनाथदेवी भव । अलिखितेयी भव ॥’ यह त्रिलोचन आर्यभट्ट का प्रमाण है ॥

इत्यादि सब प्रमाणवक्तों से विद्वत् व्यक्ति आदि का प्रत्य देव और देवता शब्द से होता है । इनलिये पालिषि आदि अपि लोगों का अभिप्राय भी वेदों से विच्छिन्न कभी न होना चाहिये । इस प्रकार की पक्षपात शक्ति के कारणसमता से सब सम्बन्ध लोग विचारें ॥

यहाँ 'अनुष्य' ग्रहण की अनुवृत्ति इसलिये है कि—अन्धर्क संसृति, यहाँ न हो। और 'अपश्य' ग्रहण इसलिये है कि—हस्तिकान् विक्रीणीते, यहाँ भी कन् का लुप् न हो ॥८११॥

सभासाक्ष्य लङ्घिष्यात् ॥ ८१२ ॥ —अ० २ । ३ । १०६ ॥

यहाँ लृट् शब्द के पूर्वोक्त उपमावाक्यक शब्द लिया जाता है।

उपमार्थ में सभास किये प्रातिपदिकों से दूसरे उपमार्थ में छ प्रत्यय होवे। जैसे—काकतामनसिब लानपतनसिब काकताल काकतामसिब सत्कार्य काकतामोयम्; अजाकुपाभीयम्; अन्धक-वर्तकीयम् इत्यादि।

यहाँ कीड़े का बल के नीचे आना और ताल के फल का बिटना एक काम में होने से उस फल के दब के मर जाना अथवा उस फल को खा के मृत्यु होना दोनों अर्थों का सम्भव है। ऐसे ही संसार में जो कार्य हो, उस को 'काकतामोय' शब्द कहते हैं।

इस लृट् में पहले उपमार्थ में सभास और दूसरे में अत्यन्त की उत्पत्ति होती है ॥८१२॥

प्रत्यपूर्वविश्वेमात्र्यात् छन्दसि ॥ ८१३ ॥

—अ० २ । ३ । १११ ॥

प्रत्य पूर्व विश्व और इम शब्दों से उपमार्थ में वेदविषयक शब्द प्राप्य होवे। जैसे—प्रत्यशा; पूर्वशा; विश्वशा; इमशा ॥८१३॥

पूमाञ् अप्योऽग्रामणीपूर्वात् ॥ ८१४॥

—अ० ३ । ३ । ११२ ॥

यहाँ से उपमार्थ निकल हुआ। अर्थ और कामों में आसक्त पुरुषों को 'पूग' कहते हैं।

ग्रामणी शब्द जिसके पूर्व न हो, ऐसे घूमनाभी प्रातिपदिक से स्वार्थ में अन्य प्रथम ही । जैसे—लोहध्वज्यः, लोहध्वज्यो, लोहध्वज्याः; लैज्यः, लैज्यो, लिज्यः; वातक्यः, वातक्यो, वातक्याः ।

यहां 'ग्रामणी' पूर्व का निषेध इसलिये है कि—देशवर्ती ग्रामणीयों त हमे देवदत्तका; मज्जदत्तका; इत्यादि से अन्य अर्थ न होवे ॥८१४॥

वातक्यजोरस्त्रियाम् ॥ ८१५ ॥ —अ० २।३।११५ ॥

जो वृक्ष जीवों को मार मार के खींचिका करें उनकी 'वात' कहते हैं ।

वातवाची घोर भूज् अत्यन्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में अन्य प्रथम ही, स्त्रीलिङ्ग को छोड़ के । जैसे—कापोलपाक्यः, कापोलपाक्यो, कपोलपाक्याः इत्यादि । भूज् अन्त से—कौञ्ज्यायम्बः, कौञ्ज्यायम्बो, कौञ्ज्यायम्बाः इत्यादि ।

यहां 'स्त्रीलिङ्ग' का निषेध इसलिये है कि—कपोलपाकी; कौञ्ज्यायम्बो, यहाँ अन्य न होवे ॥८१५॥

अथावयवसद्व्राजः ॥ ८१६ ॥ —अ० २।३।११६ ॥

(घुमावटवाली) इस मूल में जो अन्य अवयव बड़ा है, वहाँ से यहाँ तक बीच में जिनसे प्रथम है, उन सब की 'सद्व्राज' संज्ञा होती है ।

उसका प्रयोजन यही है कि बहुवचन में प्रथम वह लुप्त हो जाता है ॥८१६॥

॥ इति पञ्चमोऽध्यायः कृत्यैः परः समाप्तः ॥

अथ चतुर्थः पादः—

पादशतस्य संख्यादेवींस्त्याप्तां वृत् लोचय ॥८१७॥

—म० ३ । ४ । १ ॥

संख्या जिसके आदि में हो, ऐसे पाद और शतशब्दान्त प्रातिपदिक से बीप्ता अर्थ में वृत् प्रत्यय और पाद शत शब्दों के अन्त का लोप होवे । जैसे—हो हो पादो ददाति द्विपदिका ददाति; हो हो शते ददाति द्विशतिका ददाति इत्यादि ।

यहां भर्त्सक प्रत्ययों के परे अन्त का लोप हो जाता, फिर 'लोप' रह्य इसलिये है कि—उस लोप के परनिमित्तक होने से स्वानिवद्धत्व होकर पाद शब्द की वृत् आदेश नहीं पावे । यह लोप परनिमित्त नहीं है, इस कारण स्वानिवद्धत्व का निवेश होकर वृत् आदेश हो जाता है ।

इस सूत्र में पाद और शत शब्दों का ग्रहण किया है, परन्तु पाद शत शब्दों से अन्वय भी संख्यादि शब्दों से बीप्ता अर्थ में वृत् प्रत्यय होता है । जैसे—'द्विपदिकामाददाति' इत्यादि प्रयोगों का आशय लेकर महाभाष्यकार ने पाद शत ग्रहण की उपेक्षा की है ॥८१७॥

अथ दशान्तकृत्त्वलक्ष्मीलम्पुश्याभ्युत्तरपदास्थः ॥८१८॥

—म० ३ । ४ । ७ ॥

अथदश, आशितकृत्, पल्लवम, सलम्पुश्या और अक्षि जिनका उत्तरपद हो, उन प्रातिपदिकों से स्वार्थ में छ प्रत्यय होवे । जैसे—अविद्यमानानि वट् लक्ष्मीव्यस्य, इस प्रकार बहुव्रीहि समास किये पश्चात् अक्षि शब्द से समासान्त वृत् प्रत्यय हो जाता है । उस अथदश शब्द से छ प्रत्यय हुआ है । अथलक्ष्मी लम्पुश्या ।

याचिता गात्रोऽस्मिन्नस्ये याचिज्जुनीमरस्यम्, यहाँ निषादतः पूर्वपद को मुक्त का प्रथम हुआ है। अलक्षुमीयम्; अलक्षुनीयम्; काष्ठीयम्; राजाक्षीयः इत्यादि ॥८१८॥

विभावाऽऽधेरविभिरजयाम् ॥ ८१९ ॥

—सं १।४।८॥

यहाँ अभावाविभावा है, क्योंकि वह प्रत्यय किसी से आता नहीं है।

विषय प्रत्ययान्त अक्षु जिसके अन्त में हो, उस प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग दिशा अर्थ को छोड़ के स्वार्थ में विकल्प से वह प्रत्यय होवे। जैसे—प्राक्, प्राचीनम्; अर्वाक्, अर्वाचीनम्।

‘दिशा स्त्रीलिङ्ग का निषेध’ इसलिये है कि—प्राची दिक्; अर्वाची दिक्। ‘दिशा’ का ग्रहण इसलिये है कि—प्राचीनः आद्यधीः; अर्वाचीना शिखा इत्यादि से वह प्रत्यय न होवे ॥८१९॥

स्थानान्तादिभावा सस्यानेनेति चेत् ॥ ८२० ॥

—सं १।४।१०॥

सुखता अर्थ में स्थानान्त प्रातिपदिक से विकल्प करके वह प्रत्यय होवे स्वार्थ में। जैसे—विषा सुखः पितृस्थानीयः, पितृस्थानः; मातृस्थानीयः, मातृस्थानः; भ्रातृस्थानीयः, भ्रातृस्थानः; राजस्थानीयः, राजस्थानः इत्यादि।

यहाँ ‘स्थान’ ग्रहण इसलिये है कि—गौरस्थानम्; सशस्थानम्, यहाँ न हो ॥८२०॥

किमेतिद्वयप्रधावाभ्यद्वयप्रकर्षे ॥ ८२१ ॥

—सं १।४।११॥

किम्, एकारान्त निपात, लिङ्गन्त और ध्रुव्य शब्दों से परे जो ष इत्यय लुङ्गन्त प्रातिपदिकों से चङ्ग्य—क्रिया और पुनः—की अधिकता में आनु प्रत्यय होवे ।

यद्यपि पुनः कर्मों के बिना केवल इत्य की कुछ उन्नति नहीं होती, तथापि क्रिया और पुनः की उन्नति की जब इत्य में विवक्षा होती है, उस इत्यर्थ प्रत्यय का निषेध यही सम्भला चाहिए । जैसे—किन्तराम् किन्तयाम्; पूर्वाह्णतराम्, पूर्वाह्णतयाम्; पठतितराम्, पठतितयाम्, उच्येस्तराम्, उच्येस्तयाम् इत्यादि ।

यहां आनु प्रत्यय में उकारानुबन्ध मकार की रक्षा के लिये है ॥८२१॥

गद्यः स्त्रियामञ् ॥ ८२२ ॥ —अ. १. ४. १४ ॥

स्त्रीलिङ्ग में जो लुङ्गन्त णच् प्रत्यय होता है, लुङ्गन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग विषयक स्वार्य में णच् प्रत्यय होवे । जैसे—आवकोटी; आवहासी इत्यादि ॥८२२॥

संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वमुच् ॥ ८२३ ॥

—अ. १. ४. १७ ॥

एक ही विनका कर्ता हो, ऐसी एक ही प्रकार की क्रियाओं के बार बार करने कार्य में वर्तमान संख्यावाची कर्त्तों से स्वार्य में कृत्वमुच् प्रत्यय होवे । जैसे—पञ्च बाराम्, भुङ्क्ते पञ्चकृत्वो भुङ्क्ते; सप्तकृत्वः; अष्टकृत्वः; दशकृत्वः इत्यादि ।

यहां 'संख्या' सहज इसलिये है कि—भूरीन् बाराम्, भुङ्क्ते, यही प्रत्यय न हो । और बार बार होना क्रिया का ही हो सकता है, इत्य पुन का नहीं, फिर यहाँ 'क्रिया' सहज इसलिये है कि—

उत्तर सूची में जहाँ किया ही गिनी जाती और सम्भाव्यता नहीं होती, जहाँ भी हो जावे। और 'सम्भाव्यता' बहुत इतलिये है कि—क्रियामात्र के करने में न हो। जैसे—पञ्च पाकाः; दश पाकाः ॥८२३॥

द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् ॥८२४॥ —अ० ३।४।१८॥

किया के बार बार गणने वर्ष में वर्तमान संख्यावाची द्वि त्रि और चतुर् चतुर् से कृत्वमुच् का बाधक सुच् प्रत्यय होते। जैसे—द्विः पठति; त्रिः स्नाति; चतुः विवर्ति इत्यादि ॥८२४॥

एकस्य सकृदस्य ॥८२५॥ —अ० ३।४।१९॥

किया की संख्या में वर्तमान एक शब्द से कृत्वमुच् का अपवाद सुच् प्रत्यय और एक शब्द की सकृत् आदेश होते। जैसे—सकृत् वधीते; सकृद्वाति; सकृत् कन्या प्रदीयते इत्यादि ॥८२५॥

तत्प्रकृतवचने मयद् ॥८२६॥ —अ० ३।४।२०॥

जिस शब्द से अवधारण की विवक्षा हो, उसी के निरन्तर कहने सर्वात् यावन्तर के मेल की निवृत्ति करने वर्ष में वर्तमान अवमासमर्ष प्रातिपदिकों से स्वार्थ में मयद् प्रत्यय होते। जैसे—आनन्दमयं ब्रह्म—अर्थात् ईश्वर में दुःख का मेल भी नहीं है; मन्त्रमयम्; आश्रममयम्; मनोमयम् इत्यादि ॥८२६॥

अनन्तावमधेतिहभेवजाञ्जयः ॥८२७॥

अनन्त, आवसथ, इतिह और भेषज शब्दों से स्वार्थ में अन् प्रत्यय होते । जैसे—अनन्त एव आनन्तवम्; आवसथ एव आवासथवम्; इतिह एव ऐतिहाम्; भेषजमेव भेषजम् ॥८२७॥

देवतान्तात्तादर्थ्यं यत् ॥ ८२८ ॥ —अ० ३ । ४ । २४ ॥

देवता शब्द जिसके अन्त में हो, उस चतुर्थीसमर्थ प्रातिपदिक से, प्रत्ययार्थ प्रकृत्यर्थ के लिये होते, तो यत् प्रत्यय होते । जैसे—अग्निदेवतायै इदम् अग्निदेवत्वम्; नितृदेवत्वम्; नातृदेवत्वम्; वातुदेवत्वम् इत्यादि ॥८२८॥

अतिथेऽर्थः ॥ ८२९ ॥ —अ० ३ । ४ । २५ ॥

तादर्थ्य चर्च में, चतुर्थीसमर्थ अतिथि प्रातिपदिक से अन् प्रत्यय हो । जैसे—अतिथये इदमातिथ्यम् ॥८२९॥

देवास्तत् ॥ ८३० ॥ —अ० ३ । ४ । २६ ॥

देव शब्द से स्वार्थ में तत् प्रत्यय होते । जैसे—देव एव देवता ॥८३०॥

लोहितान्मणी ॥ ८३१ ॥ —अ० ३ । ४ । २७ ॥

मणिवाची लोहित शब्द से स्वार्थ में कम् प्रत्यय हो । जैसे - लोहितो मणिः लोहितकः ।

‘मणि’ ग्रहण इसलिये है कि—लोहितः, यहाँ प्रत्यय न हो ॥८३१॥

वा०—लोहितालितङ्गवाचनं वा ॥ ८३२ ॥

लोहित शब्द से प्रतिपदविधि में कन् प्रत्यय के बलवान् होने से स्फोटिलङ्ग में लकार को लकार आदेश नहीं प्राप्त है, इसलिये यह वास्तविक पङ्क्ति है कि—

लोहित शब्द से कन् प्रत्यय लकारादेश का वाचक विकल्प करके होते । जैसे—लोहितिका, लोहितिका ॥ ८३२ ॥

वा०—अक्षरसमूहे छन्दसि यत् उपसंख्यानम् ॥ ८३३ ॥

अक्षरों के समूह यत् में वेदविषय में यत् प्रत्यय होते । जैसे—एष वं सप्तवधासप्तछन्दस्यः प्रजावतिः, यहाँ छन्दस्य शब्द में यत् प्रत्यय हुआ है ॥ ८३३ ॥

वा०—छन्दसि बहुभिर्बसब्दैरुपसंख्यानम् ॥ ८३४ ॥

वेद में वसु शब्द से यत् प्रत्यय होते । जैसे—हस्तः वृषस्य बहुभिर्बसब्दैः, यहाँ वसस्य शब्द में यत् प्रत्यय हुआ है ॥ ८३४ ॥

वा०—अपम्, शोक, कवि, उदक, वर्चस्, निष्केवल,
उदक, जन इत्येतेभ्यश्च वा ॥ ८३५ ॥

यहाँ लकार से छन्दसि और यत् की अनुवृत्ति पाती है ।

इस अपम् यादि प्रातिपदिकों से वेद में स्वाधिक यत् प्रत्यय विकल्प करके होते । जैसे—अपस्यो वसानाः, अपो वसानाः; एष शोभते, एष शोकः; कव्योऽसि, कविरसि; [उदकम्, उदकम्;] वर्चस्यः, वर्चः; निष्केवलम्, निष्केवलम्; उदकम्, उदकम्; जनम्, जनम् ॥ ८३५ ॥

वा०—समादावतुः ॥ ८३६ ॥

सम शब्द से स्वार्थ में आवातु प्रत्यय होवे । जैसे—
समावदमति; समावद् वृद्धति इत्यादि ॥ ८३६ ॥

वा०—नवस्य नू त्वप्स्तनव्याश्च ॥ ८३७ ॥

नव शब्द को नू यादेश और उससे स्वार्थ में तन्, तनम् तथा च प्रत्यय होवे । जैसे—नूतनम्; नूतनम्; नवीनम् ॥ ८३७ ॥

वा०—नश्च नुरागं प्रात् ॥ ८३८ ॥

प्राचीन शब्द में नर्तमान न शब्द से च प्रत्यय, और नकार से तन् तनम् और च प्रत्यय भी हों । जैसे—नश्चम्; प्रत्यम्; प्रतनम्; प्रीणम् ॥ ८३८ ॥

तद्युक्तात्कर्मणोऽण् ॥ ८३९ ॥ — अ० २।४।११ ॥

यहाँ पूर्व सूत्र से अभ्याहृतवाणी की अनुवृत्ति पाती है ।

अभ्याहृतवाणी के मुक्त—योग्य—कर्म शब्द से स्वार्थ में अण् प्रत्यय होवे । जैसे—कर्मणं कर्मणम् । वाणी को मुक्त के बैसे ही जो कर्म किया जावे उसको 'कर्मण' कहते हैं ॥ ८३९ ॥

वा०—अष्टाकरणे कुलालवस्त्रनिषादचण्डालामिश्रेभ्य
वस्त्रन्दस्तुपसंख्यानम् ॥ ८४० ॥

कुलाल, वस्त्र, निषाद, चण्डाल और अमिश्र जातिपदिकों से भी वेद में अण् प्रत्यय कहना चाहिये । जैसे—कीलालः; वास्त्रः; निषादः; चण्डालः; अमिश्रः ॥ ८४० ॥

वा०—भायरूपनामस्यो धेयः ॥ ८४१ ॥

भाय्, रूप और नाम शब्दों से धेय प्रत्यय हो । जैसे—
भायधेयम्; रूपधेयम्; नामधेयम् ॥ ८४१ ॥

वा०—मिश्राच्छन्दसि धेयः ॥ ८४२ ॥

मिश्र शब्द से वेदविषयक स्वार्थ में धेय प्रत्यय हो । जैसे—
मिश्रधेये यत्स्थ ॥ ८४२ ॥

वा०—यन् मिश्राच्च ॥ ८४३ ॥

मिश्र और यमिश्र शब्दों से स्वार्थ में यन् प्रत्यय भी हो ।
जैसे—मिश्रयेय मेषम् । यमिश्र एव यामिश्रः ॥ ८४३ ॥

वा०—साम्राज्यानुजावरानुषूकज्वातुप्रासघराक्षीघ्नवैद्यात-
वैकुलावारिबहुलाघ्रायणाग्रहायणसान्त्वनानि
निपात्यन्ते ॥ ८४४ ॥

साम्राज्य आदि शब्द स्वाधिक यन्प्रत्ययान्त शोक वेद में
सर्वत्र निपातन किये हैं । जैसे—साम्राज्यः; यानुजावरः;
यानुषूकः; यानुप्रासः; राक्षीघ्नः; वैद्यातः; वैकुलः; वारिबहुलः;
घ्रायायणः; याम्रहायणः; सान्त्वनः ॥ ८४४ ॥

वा०—आग्नीध्रसाधारणादम् ॥ ८४५ ॥

आग्नीध्र और साधारण शब्दों से स्वार्थ में अम् प्रत्यय हो ।
जैसे—आग्नीध्रम्; साधारणम् ॥ ८४५ ॥

वा०—अपवसमवद्वृत्ताच्छन्दस्यम् ॥ ८४६ ॥

अपवस और वद्वृत्त शब्दों से स्वार्थ में अम् प्रत्यय हो ।
जैसे—अपवसे वद्वन्तम्; वद्वन्त शब्दः ॥ ८४६ ॥

वा०—नवमूर्मर्त्यविष्टेभ्यो यत् ॥८४७॥

यहाँ भी पूर्व वाचिक से छन्द की अनुवृत्ति समझनी चाहिये ।

नव, मूर, मर्त, और यविष्ट शब्दों से स्वार्थ में यत् प्रत्यय होते । जैसे—नवः; मूर्त्यः; मर्त्यः; यविष्टयः; ॥८४७॥

वा०—क्षेमाद्यः ॥८४८॥

क्षेप शब्द से स्वार्थ में य प्रत्यय हो । जैसे—क्षेपयिष्यन् प्रत्ययः क्षीरः, यहाँ यत् क्षीर य प्रत्यय में केवल स्वर का भेद है, रूप भेद नहीं ॥ ८४८ ॥

क्षीपक्षीरजालौ ॥८४९॥ —य० १।४।३३॥

क्षीपक्षि शब्द से वाचि कर्ष्य व होने, तो स्वार्थ में कप् प्रत्यय हो । जैसे—क्षीपक्षं विवर्ति, क्षीपक्षं वदति इत्यादि ॥ ८४९ ॥

मृदस्तिकन् ॥८५०॥ —य० १।४।३९॥

मृत् शब्द से स्वार्थ में तिकन् प्रत्यय हो । जैसे—मृदेय मृत्तिका ॥ ८५० ॥

सस्नी प्रशंसयाम् ॥८५१॥ —य० १।४।४०॥

प्रशंसा करने में वर्तमान मृत् प्रातिपदिक से स्वार्थ में स और स्त प्रत्यय हो । जैसे—प्रशंसा मृत् मृत्वा; मृत्तवा ॥ ८५१ ॥

बहुवचार्थाच्छेदस्कारकावन्त्यतरस्याम् ॥८५२॥

—य० १।४।४२॥

यहाँ कप् प्रत्यय की किसी सूत्र से प्राप्ति न होने से बहुवचान्विभाषा समझनी चाहिये ।

कारकवाची बहु धातु धीर इनके धर्म के शब्दों से विकल्प करके शब्द प्रत्यय होते ।

किसी कारक का वहाँ विशेष निर्देश नहीं किया, इससे कर्मादि सब कारकों का ग्रहण होता है । जैसे—बहुनि ददाति, बहुषो ददाति; धल्यं ददाति, धल्यषी ददाति; बहुधिर्यदाति, बहुषी ददाति; धल्येन, धल्यषी ददाति; बहुभ्यः, बहुभ्यः; धल्यथाः, बहुनां बहुषु वा बहुभ्यः; धल्यस्य, धल्ये वा धल्यसः । इनके धर्म के—धुरितो ददाति; स्त्रोकषो ददाति इत्यादि ।

यहाँ 'बहु तथा धल्यवाची का' ग्रहण इसलिये है कि—वा ददाति; धल्यं ददाति इत्यादि से शब्द प्रत्यय न होते ॥ ८२२ ॥

वा०—बहुत्वाधीन्यङ्गलामङ्गलसवचनम् ॥८२३॥

बहु धीर धल्य शब्दों से जो प्रत्यय विधान किया है, वहाँ बहु से मङ्गल धीर धल्य शब्द से अमाङ्गल धर्म में होते ।

यह धातुिक शून्य का लेश है, इसलिये उक्त उदाहरण ही समझने चाहिये । धर्मात्—बहुषो ददाति, यह प्रयोग सज्जित के बहुत देने में न होवे । धीर—धल्यषो ददाति, यह भी द्रष्ट के देने में प्रयोग न किया जावे ॥ ८२३ ॥

प्रतियोगे पञ्चम्यास्ततिः ॥८२४॥

—वा० २ । ४ । ४४ ॥

कर्मप्रत्ययनीकसक प्रति शब्द के योग में वहाँ पञ्चमो विभक्ति की है, उस विभक्त्यन्त प्रातिपदिक से तति प्रत्यय होते । जैसे—प्रमुन्यो वामुदेवतः प्रति; धमिकपुरधुंस्तः प्रति ।

यहाँ कुर्व से विकल्प की वामुवति धनी धाने से वामुदेवात्; धर्तुनात् ऐसा भी प्रयोग होता है ॥ ८२४ ॥

वा०—तसिप्रकरणे आद्यादीनामुपसंख्यानम् ॥८३५॥

इस प्रकरण में आद्यादि शब्दों के तसि प्रत्यय कहना चाहिये ।
जैसे—आद्यो आदितः; मध्यतः; पन्नातः; चार्वर्तः; पृथगतः इत्यादि
॥ ८३५ ॥

कुम्बसितपोमे सम्पद्यकर्त्तोरि त्विः ॥८३६॥

—म० ३ । ४ । ३० । ३

संपूर्वक पद धातु के कर्त्ता धर्म में वर्तमान प्रातिपदिक के कु,
भू धीर धम्लि धातुओं के बीच में त्वि प्रत्यय होवे ॥ ८३६ ॥

वा०—स्त्रिविधायामृततद्भावग्रहणम् ॥८३७॥

यह वालिक सूत्र का शेष समझना चाहिये । जो पदार्थ प्रथम
कारण रूप से उपसिद्ध हो, धीर पीछे काव्यैक्य से प्रकट किया
जाये, उसको 'अमृततद्भाव' कहते हैं ।

इस अमृततद्भाव धर्म में उक्त सूत्र से त्वि प्रत्यय कहा है,
सो होवे । जैसे—अशुक्लः शुक्लः सम्पद्यते तं करोति शुक्ली-
करोति, अर्थात् जो पदार्थ प्रथम से मशीन है, उसको शुद्ध करता
है, शुक्लीभवति; अशुक्लीत्वात्; कठिनीकरोति; कठिनीभवति;
कठिनीत्वात्; घटीकरोति; घटीभवति; घटीत्वात् इत्यादि ।

प्रयोजन यह है कि जो पदार्थ अपनी प्रथमावस्था में जिस
स्वरूप से वर्तमान हो, उन्हीं अवस्था के साथ इस प्रत्ययार्थ की
विशेषता समझनी चाहिये । धीर इस प्रत्यय के बिना शीघ्र में
सिद्ध पदार्थों का कहना बन सकता है, कि जो पदार्थ वैसा ही
उसको जैसे ही स्वरूप से वर्णन करें ।

यहाँ 'अनृततद्भाव' ग्रहण इसलिये है कि—सम्पन्नान्ते यथाः; सम्पन्नान्ते शालयः, यहाँ चिन्म प्रत्यय न होवे। 'कु भू चमिन् छातुषीं का योग' इसलिये कहा है कि—अनुवन्तः दुस्ती जायते, यहाँ न हो। और 'संपूर्णक पद छातु के कर्ता' का ग्रहण इसलिये है कि—यह संपूर्ण्यते, यहाँ भी चिन्म प्रत्यय न होवे ॥ ८३७ ॥

वा०—समीपदिभ्य उपसंख्यानम् ॥८३८॥

समीप आदि शब्दों के भी पूर्वोक्त व्यर्थों में चिन्म प्रत्यय होवे। जैसे—समीपपथं समीपस्थं भवति समीपीभवति; सम्पासीभवति; अन्तिकीभवति; त्विष्टीभवति इत्यादि।

यहाँ प्रकृति से विकार का होना नहीं है, इस कारण प्रत्यय की प्राप्ति नहीं है ॥ ८३८ ॥

विभाषा साति कालार्थे ॥८३९॥

—स० ३।४।३२ ॥

यहाँ चिन्म प्रत्यय को छोड़ के पूर्व सूत्र से सब पदों की अनुवृत्ति जाती है।

संपूर्णक पद छातु के कर्ता में वर्तमान प्रातिपदिकों के कु भू और चमिन् छातु का योग हो, तो अनृततद्भाव अर्थ में संपूर्णता विहित होवे, तो मानि प्रत्यय विकल्प करके हो। जैसे—अस्ममाज्जवति काष्ठम्, अस्ममाज्जरोति, अस्ममाज्जवात्, अस्मीभवति, अस्मीकवात्; त्वक्माज्जवति लवणम्, त्वक्कीभवति लवणम् इत्यादि। प्रकृति संपूर्ण विकार रूप हो जावे।

यह सूत्र चिन्म प्रत्यय का अपवाद और यहाँ अप्राप्तविभाषा है। यहाँ चिन्म प्रत्यय भी हो जाता है। यहाँ 'संपूर्णता' ग्रहण

इत्यनिवे हे कि—

एकदेशेन पठः शुक्लीभवात्, यहाँ प्रत्यय न होवे ॥ ८२५ ॥

देवमनुष्यपुरुषपुरुषमर्यम्भो द्वितीयोपास्यतम्योर्बहुसम् ॥ ८२६ ॥

—सं० २ । ४ । २६ ॥

यहाँ ने साति प्रत्यय निवृत्त हुआ, और वा प्रत्यय की अनुवृत्ति जाती है ।

द्वितीयोपासीर मर्यादीकमर्थे देव, मनुष्य, पुरुष, पुरु और मर्ये प्रातिपदिकों में बहुव्यय करके स्वार्थ में वा प्रत्यय होते । जैसे—
देवान् गरुडराति, देवेषां गरुडराति; देवेषु यमति, देवेषां यमति;
मनुष्यान् वन्दति, मनुष्येषां वन्दति; मनुष्येषु वसति, मनुष्येषां वसति;
पुरुषं ध्यायति, पुरुषेषां ध्यायति; पुरुषं वृक्षति, पुरुषेषां वृक्षति;
पुरुषं यमति, पुरुषेषां यमति, मर्यान् मर्येषु वा मर्येषां इत्यादि ।

यहाँ 'बहुव' शब्द के ग्रहण से अनुक्त शब्दों से भी वा प्रत्यय हो जाते । जैसे—बहुव्या जीवतो मनः इत्यादि ॥ ८२६ ॥

अभ्यक्तानुकरणोद्दृष्टमवराद्धादिति कश्च ॥ ८२७ ॥

—सं० २ । ४ । २७ ॥

यहाँ हूँ भू और क्षति धातुओं के योग की अनुवृत्ति जाती है । जिस स्थिति में ककारादि अणं भूयस् भूयस् स्पष्ट नहीं जाने जाते उसकी 'अभ्यक्त' शब्द कहते हैं । उसी शब्द के अनुसार जो कहावा जाने कि यह अभ्यक्त शब्द ऐसा हुआ, उसकी 'अभ्यक्तानुकरण' कहते हैं ।

इति शब्द जिससे परे न हो, और जिसके एक अर्द्धभाग में दो अच् हों, ऐसे अव्यक्तानुकरण प्रातिपदिक से क भू और अच् धातु के बीच में डाच् प्रत्यय होवे । जैसे—घटघटा करोति; घटघटा भवति; घटघटा स्वात्; दमदमा करोति; दमदमा भवति; दमदमा स्वात्; बलबला करोति; बलबला भवति; बलबला स्वात् इत्यादि ।

यहाँ 'अव्यक्तानुकरण' ग्रहण इसलिये है कि—दुषकरोति, दलकरोति इत्यादि में डाच् प्रत्यय न हो । 'इषजवरार्द्ध' ग्रहण इसलिये है कि—धत्करोति, यहाँ एकाच् में न हो । और 'अवर' शब्द का ग्रहण इसलिये है कि—खरट खरट करोति, यहाँ अर्द्धभाग में तीन अच् हैं, इससे डाच् प्रत्यय नहीं होता । और 'इतिवरक का निषेध' इसलिये है कि—पटिति करोति, यहाँ इति शब्द से परे डाच् प्रत्यय न हो ।

(डाचि बहुल हो भवतः) इस वार्तिक में विषयसन्तती मान के डाच् प्रत्यय के होने की विवक्षा में ही द्विवचन हो जाता है, जो कदाचित् ऐसा न समझे तो जिसके अवर अर्द्धभाग में दो अच् हों, यह कहना ही न बने । डाच् प्रत्यय में टकार का लोप होकर कित् मान के द्विवचन और चकार अनुबन्ध से अन्तोदात्तरूप होता है ॥ ८६१ ॥

कुब्जो द्वितीयतृतीयसम्बन्धीभात्व्यौ ॥८६२॥

—अ० ३ । ४ । ३८ ॥

यहाँ कुब्, धातु का ग्रहण भू और अच् धातु की निवृत्ति के लिये है ।

द्वितीय तृतीय सम्बन्ध और बीच प्रातिपदिक से केली सर्व अधिकेय ही, तो कुब्, धातु के बीच में डाच् प्रत्यय होवे ।

जैसे—द्वितीया करोति, दूसरी बार सेत को जोतता है; तृतीया करोति, तीसरी बार जोतता है; चतुर्थी करोति, चौथा जोत के फिर तिरछा जोतता है; बीया करोति, बीज बोने के साथ ही जोतता है ।

यहां 'कृषि' ग्रहण इसलिये है कि—द्वितीयां करोति पादम्, यहाँ कान् प्रत्यय न होवे ॥८६२॥

संख्यावाच्य गुणान्तायाः ॥८६३॥

—अ० २ । ४ । ६९ ॥

यहां कृष्, धातु और कृषि सर्व दोनों की अनुवृत्ति जली जाती है ।

गुण शब्द जिसके अन्त में हो, ऐसे संख्यावाची साहित्यिक से कृषि सर्व में कृ धातु के योग में कान् प्रत्यय हो । जैसे—द्विगुणं विभेक्षनं क्षेत्रस्य करोति द्विगुणा करोति क्षेत्रम्; त्रिगुणा करोति इत्यादि ।

यहां 'कृषि' ग्रहण इसलिये है कि— द्विगुणा करोति रज्जुम्; यहाँ कान् प्रत्यय न हो । पूर्व सूत्र में द्वितीय तृतीय शब्दों के साथ इस सूत्र का शब्द भेद हो जात होता है, पर्यभेद नहीं ॥८६३॥

समवाच्य वाचकानाम् ॥८६४॥ —अ० २ । ४ । ७० ॥

यहां कृषि की अनुवृत्ति नहीं जाती, परन्तु कृष्, धातु की जली जाती है ।

करने योग्य कामों के व्यवहार मिलने को 'समय' कहते हैं, उस समय के याचना—प्रतिपत्त्य सर्व में समय शब्द से कृष्, धातु के योग में कान् प्रत्यय होवे । जैसे—समया करोति, कालक्षेप करता है ।

यहां 'आपना' शब्द इसलिए है कि- समयं करोति मेघः, यही शब्द प्रत्यय न हो ॥८६४॥

महापरिवापये ॥८६५॥ —अ० ३।४।६७।

मङ्गलवाची मह शब्द से परिवापय—मुम्हल शब्द में कुम्, धातु का योग होवे, तो शब्द प्रत्यय हो । [जैसे —] मङ्गलं मुम्हलं करोति महाकरोति ।

यही परिवापय' इसलिए कहा है कि- 'मह' करोति, यही शब्द प्रत्यय न हो ॥८६५॥

वा०—महाशब्द ॥८६६॥

मह शब्द से भी परिवापय शब्द में कुम्, धातु का योग हो, तो शब्द प्रत्यय हो । जैसे—महा करोति नाविनः कुमारम् ।

यही भी परिवापय शब्द से वृषद्—'मह' करोति, यही प्रयोग होता है ॥८६६॥

॥ इति पञ्चमोऽध्यायः सप्तमः पादः समाप्तः ॥

[इति पञ्चमाध्यायः समाप्तः]

महाद्विजे ॥८६७॥ —अ० ६।४।१४८॥

द्विजसंज्ञक प्रत्यय परे ही, तो महाशब्द महासंज्ञक धातु के दिव्यान् का लीय होवे ; जैसे —अभिशम्भोऽस्तत्त्वमभिशम्भिः, धीदुषोमिः इत्यादि, यहाँ अभिशम्भेन्, धादि कण्ठो का आह्लादिगण में पाठ होने से दृक् प्रत्यय हुआ है ।

वा०—चर्मणः कोश उपसंख्यानम् ॥८६९॥

कोश—तमभार का घर चर्म हो, तो तद्धितसंज्ञक प्रत्ययों के चरे होते चर्मन् शब्द के टिभाग का लोप होवे । जैसे—चर्मणो विकारः कोशः चर्मः कोशः ।

जहाँ कोश चर्म न हो वहाँ—चर्मणः, प्रयोग हीमा ॥८६९॥

वा०—आशमनो विकार उपसंख्यानम् ॥८७०॥

विकार चर्म में तद्धित प्रत्यय चरे हों, तो आशमनवाची आशमन् शब्द के टिभाग का लोप हो । जैसे—आशमनो विकार आशमः ।

जहाँ विकार चर्म न हो वहाँ—आशमनः, ऐसा ही रहे ॥८७०॥

वा०—संकोच उपसंख्यानम् ॥८७१॥

कुत्ते के बाची अन् शब्द के टिभाग का लोप हो, संकोच चर्म अभिधेय रहे तो । [जैसे—] संकुचितः आ रीतः । इस अन् शब्द का द्वारादिगण में पाठ होने से बकार के पूर्व ऐच् का खानम हो जाता है ।

धीर संकोच चर्म से अन्वय—सोचनः, ऐसा ही प्रयोग हीमा ॥८७१॥

वा०—अव्ययानां च साधुम्यास्तिकान्तर्गम् ॥८७२॥

तद्धितसंज्ञक प्रत्ययों के चरे साधुम्यास्तिक आदि शब्दों के सिद्ध होने में लिये भसंज्ञक अव्यय शब्दों के टिभाग का भी लोप कहना चाहिये । जैसे—साधुम्यान्तर्गवः साधुम्यास्तिकः ; पौनःपुनिकः इत्यादि ।

दे लोपोऽकट्वाः ॥ ८७७ ॥

नवविधमहाभूत न प्रत्यक्ष पदो हन्ते, तेषां कश्चिदपि पदो हन्ति ते
असत्त्वोऽप्रतिविम्बो नो हन्ति तेषां तेषां पदो हन्ति तेषां तेषां पदो हन्ति
पदो हन्ति तेषां तेषां पदो हन्ति तेषां तेषां पदो हन्ति तेषां तेषां पदो हन्ति

[illegible]

510. $\frac{1}{2} \times 100 = 50$ II. $\frac{1}{2} \times 100 = 50$

[illegible][illegible]

यह भी समझें कि एकात्मक मान्यता यह नहीं है कि जो भी व्यक्ति किसी एक विशेष क्षेत्र में काम करेगा वह उस क्षेत्र में ही रुक जाएगा। यहाँ पर हमें यह समझना पड़ेगा कि हमें किस प्रकार के क्षेत्रों में काम करना है। हमें यह समझना पड़ेगा कि हमें किस प्रकार के क्षेत्रों में काम करना है। हमें यह समझना पड़ेगा कि हमें किस प्रकार के क्षेत्रों में काम करना है।

[illegible]

जैसे—सूर्योप एतदिह् मीरी बलाका, वहाँ उपासप्रसन्न
 जायक से शयन का लीन बसिद्ध नहीं समझा जाता; निश्चय
 पुनः काल-तंचमह्, तेजी राखी, धनसंयसपायस कन्या हम
 विग्रह में भूषिता-नी धनसंय शब्द से शब्द प्रत्यय हो जाता है—
 धनसंयः; धनसंयः । धनसंय शब्द के गौरादि वज्र में होने से
 शीघ्र हो जाता है—संयः ।

'उपधा' सहज इसलिये है कि—सूर्यचरी, मही मुरी गज से बहुतपूर्व धर्म में परब्रह्म प्रथम के चरे पुनःप्राप्त हुआ है। इसलिये वस्तुमान के प्रकार का मोह प्राप्त है, उपधा के न होने से नहीं होता, इत्यादि ॥ ५३३ ॥

सू. ८-मन्त्रमयस्य कथाम् ॥ ६७९ ॥

होव् प्रत्यय के परे ही मत्स्य शब्द के उपरान्त सकार का लोभ हो, शब्दप्रत्यय नहीं। जैसे—बायी। निश्चय होवि से मत्स्यप्रत्यय विकारो मत्स्यं सामान्य, वही न हो। (पृ. ७९, ४)

वा. ०—सुदृष्टिगल्लययोऽति च ।। ८८० ।।

इ, खीर, कीम्, कीम्, प्रत्यय के चारे ही धूर्त खीर प्रत्यय
शब्दों के प्रकार का होता है। जैसे: खीरीय, खीरी, खीरप्रतीक,
खीरप्रतीक।

निजम होने से—सूखी बेकलास्य लीयं हवि, अमृतमप्य
मोक्षलपसावसावः; यदा न होति ।। ८८० ।।

४७-विष्णुपुत्र्यदीर्घक्षत्राणि ॥ ८८६ ॥

यहाँ स्वकथयद्गुणपरिभाषा का शास्त्रम उदाहरिते नहीं होना जिसलिये कालिक पडा है। अर्थात् स्वकथयद्गुण के न होने में कालिक आपक है।

तद्धितलोक धीर ईकार प्रत्यय परे हो, तो तिथ्य धीर पुण्य शब्दों के लक्ष्य परस्पर का लोप होवे, अन्य पर्यायशब्दों का नहीं । जैसे—निष्पन्नस्तथैव युक्तः कानः लैवः; पीवः ।

नियम इसलिये है कि—संक्षयः, यहाँ लोप न हो ॥ ८८१ ॥

धा०—अन्तिकस्य तसि कादिलोपश्चाद्युदात्तश्च ॥ ८८२ ॥

अन्तिक शब्द से तसि प्रत्यय परे हो, तो कादि—स्वरसहित ककार—का लोप धीर आद्युदात्तस्वर होवे । जैसे—अन्तिको न दूयात् ।

तसि प्रत्यय को प्रत्ययस्वर होने से अन्तोदात्त होगा, इसलिये आद्युदात्त कहा है । धीर अन्तिक शब्द ने अन्तान्तरकार में प्रति प्रत्यय होता है ॥ ८८२ ॥

धा०—तमे लक्ष्येण ॥ ८८३ ॥

यहाँ लकार लक्ष्य ने कादि को भी अनुवृत्ति पानी है ।

तम प्रत्यय परे हो, तो अन्तिक शब्द तादि—तिर—भाय तथा दादि—क साथ का लोप होवे । जैसे—अन्तिशब्दान्तिकम् अन्तमः; अन्तिनः; अन्तिस्वप्नो अन्तमः; अन्तिकमे अवरोहति ।

यद्यपि इस कालिक में अन्तोपहृत नहीं किया, तथापि वैदिक प्रयोगों में ही बहुत-इनकी अवृत्ति दीया गइली है । इसमें पूर्व कालिक में जो तसि प्रत्यय का लक्ष्य है, उसकी महाभाण्डकार ने उल्लेख की है कि—‘अन्तिके लोपति अन्तिकम्’ इसकादि शब्दों में भी कादिलोप हो जावे ॥ ८८३ ॥

हृत्कलत्राद्विजय ॥ अ. ४८ ॥ अ. १. ८. १७५.

हृत् ने हृत् के लक्ष्मणवन्दन प्रकार का हृत्कलत्र प्रकार, हृत्कलत्र सीप होवे, ईश्वर उदयन रहे ही नो । जैसे—लक्ष्मणवन्दन काका शर्मा; बाली, बालनी हृत्कलत्र ।

अत्र 'हृत्' बहुवचनविधि है कि—हृत्कलत्र सीप हृत्कलत्र हृत्कलत्र सीप सीप न हो ॥ अ. ४८ ॥

आत्मवन्दन च हृत्कलत्राणि ॥ अ. ४९ ॥

—अ. १. ४. १७६. ॥

आत्मवन्दन विधान हृत्कलत्र है न हो ऐसा लक्ष्मणवन्दन उदयन रहे हृत्, नो हृत् नो हृत् आत्मवन्दनवन्दन । उदयन है, हृत्कलत्र वन्दन नो सीप होवे ।

अत्र जो हृत् में हृत्, लक्ष्मण वन्दन में हृत् भी लक्ष्मणवन्दनवन्दन है ईश्वर उदयन रहे हृत्, नो हृत्-वन्दनवन्दन है लक्ष्मण वन्दन नो आत्मवन्दन हो जाता है । अत्र—लक्ष्मण वन्दन लक्ष्मणवन्दन, लक्ष्मण वन्दनवन्दन सीप हृत्कलत्र, लक्ष्मण वन्दन ।

'आत्मवन्दन' बहुवचनविधि है कि—आत्मवन्दन लक्ष्मणवन्दन, हृत्कलत्र न हो । 'आत्मवन्दन' का लक्ष्मणवन्दन है कि आत्मवन्दन, आत्मवन्दन, लक्ष्मण वन्दन न हो । और 'हृत्' में 'हृत्' हृत्कलत्र हृत्कलत्र है कि—लक्ष्मणवन्दन लक्ष्मणवन्दन, हृत्कलत्र सीप न होवे ॥ अ. ४९ ॥

अत्र हृत्कलत्राणि ॥ अ. ५० ॥ अ. १. ८. १७७.

अत्र और हृत् उदयन रहे हृत्, नो हृत्कलत्र नो हृत्-वन्दनवन्दन वन्दन का सीप होवे । जैसे—लक्ष्मण वन्दनवन्दन लक्ष्मणवन्दन, आत्मवन्दन

इत्यन्तरि नास्तीति; नास्तीति; नास्तीति, इत्यन्तरि;
नास्तीति इत्यन्तरि । किं प्रत्यय के परे—नास्तीति; नास्तीति;
नास्तीति; इत्यन्तरि ।

यहां अन्तरमन्त्र विचार—यहां अन्तर इत्यन्तरि ? कि—
नास्तीति, नास्तीति, नास्तीति, नास्तीति न ही । और अन्तर के परे
इत्यन्तर अन्तर है कि—नास्तीति, नास्तीति, नास्तीति, नास्तीति, नास्तीति
इत्यन्तर के परे न ही है ॥ ८८६ ॥

विलम्बकादिप्रत्ययस्य तुक् ॥ ८८७ ॥

—अ० ६।४।११५ ॥

(नञादिस्य तुक्) इस मूल पर नञादिस्य के अन्तर
विलम्बकादिप्रत्यय न ही है । अन्तर-तुक् का आगम होने में विलम्बका
आदि होते हैं ।

विलम्बकादिप्रत्ययों में पर के प्रत्यय न ही है, नञादि-
प्रत्यय प्रत्यय परे ही है । और—विलम्बकादिप्रत्यय नञादि
विलम्बकादि-प्रत्यय प्रत्यय प्रत्यय, विलम्बकादि, विलम्बकादि;
विलम्बकादि—विलम्बकादि इत्यन्तरि ।

यहां अन्तरमन्त्र का अन्तर—अन्तरि है कि—तुक् आगम का
तुक् न ही है । अन्तरि (नञादिस्यप्रत्ययः) इस परिभाषा में
तुक् आगम के अन्तरि तुक् आगम है, न ही है । और नञादि की
अन्तरि न ही आगम है, किन्तु तुक् अन्तरि अन्तरि है कि—
अन्तरि अन्तरि का अन्तर ही न ही है । तुक् न ही है नञादि की अन्तरि के
अन्तर में ही है ॥ ८८७ ॥

तुरण्डिमेवममु ॥ ८८८ ॥ —अ० ५ । ४ । १२४ ॥

तुर ने यहाँ लुक् की अनुवृत्ति नहीं आती, किन्तु लोप की आती है। लुक् होने से प्रत्ययार्थ गुण का विशेष प्राप्त है। जो अक्षर का लोप होवे, तो मूल ही व्यर्थ होवे, क्योंकि हि भाग का लोप ना करने मूल से ही हो जाता।

इच्छन्, इमनिच् और इम्युन् ये लङितसंज्ञक प्रत्यय पड़े हों, तो लृच् लृन् प्रत्ययान्त शब्दों का लुक् होवे। प्रत्ययमात्र का लुक् कहा है, इमनिचे मत्र का हो जाता है। जैसे—अतिशयेन कर्त्ता करिष्ठः; भूषं विजेता विजयिष्ठः; बीडा बहुष्टो वृषभाः; योहीवसो धेनुः इत्यादि। यहाँ इमनिच् ग्रहण उत्तरार्थ है ॥८८८॥

टेः ॥ ८८९ ॥—अ० ५ । ४ । १२५ ॥

इच्छन्, इमनिच् और इम्युन् प्रत्यय पड़े हों, तो भसंज्ञक शब्दों के टिभाग का लोप होवे। जैसे—अतिशयेन पटुः पटिष्ठः; लयिष्ठः; लघीवान्; लघीयान्; पटिमा; लयिमा इत्यादि।

यह लोप गुण का अपवाद उवर्णित शब्दों में समझना चाहिये। यहाँ गुण की प्राप्ति में लोपविधायक किया है ॥८८९॥

**वा०—वाचिष्ठवत्प्रातिपदिकस्य पुं बहुव्रीह्यरभावदिलोपयथादि-
परप्रादिविन्मलोत्सु ककन्विष्यर्थम् ॥ ८९० ॥**

निच् प्रत्यय के पड़े भसंज्ञक प्रातिपदिकमात्र की इच्छन् कर्त्तव्य होवे, प्रयोजन यह है कि पुं बहुव्रीह्य, रभाव, दिलोप, यथाविपर, प्रादि आदेश, विन्मलोत्सु और कन् प्रत्यय, वे विधि होने के लिये यह वालिक कहा है।

जैसे—पुंवाङ्माचष्टे एतवति; स्वेनीमाचष्टे स्वेतवति । इष्टन् प्रत्यय के परे पुंवाङ्माचष्टे कहा है, जैसे ही वहाँ मिच् प्रत्यय के परे भी हो जाता है । इसी प्रकार सब कार्यों जो इष्टन् के परे होते हैं, वे मिच् प्रत्यय के परे भी सम्भूतता चाहिये ।

रभाव—पृथुमाचष्टे, वयवति; जयवति । यहाँ (रञ्जतो०) इस आगामी सूत्र से इष्टन् प्रत्यय के परे ऋकार को र प्रादेश कहा है, सो मिच् के परे भी हो जाता है ।

द्विलोप—पट्माचष्टे पठवति; लघुमाचष्टे लघवति । यहाँ इसी (३ः) सूत्र से जो इष्टन् प्रत्यय के परे द्विलोप कहा है, वह मिच् प्रत्यय के परे भी हो जाता है ।

वशादिपर—स्पृमाचष्टे स्प्रवति; दूरमाचष्टे दवति इत्यादि । यहाँ अपने सूत्र से इष्टन् प्रत्यय के परे वष् को वशि लेके परभाम का लोप और वृष् को वृषादेश कहा है, सो मिच् प्रत्यय के परे भी हो जाता है ।

प्रादि—एवमे सूत्र से इष्टन् प्रत्यय के परे प्रिय प्रादि शब्दों को प्र प्रादि प्रादेश कहे हैं, सो मिच् प्रत्यय के परे भी हो जायें ।

जैसे—प्रियमाचष्टे प्रापवति; स्थिरमाचष्टे, स्थापवति । यहाँ प्रिय और स्थिर शब्दों को प्र, स्थ प्रादेश होकर (अन्वीक्ष्यति) सूत्र में णच् पदान के होने से प्र, स्थ को वृद्धि होकर पुनान्व हो जाता है ।

विमलोलुक्—इस सूत्र से इष्टन् प्रत्यय के परे विन् और क्तुन् प्रत्ययों का लुक् कहा है, सो मिच् प्रत्यय के परे भी हो जाये । जैसे—अन्विषमाचष्टे अन्ववति; अनुमन्तमाचष्टे वन्ववति । यहाँ क्तु शब्द के लकार का भी लोप हो जाता है ।

उत्पत्ति—युव यौव वृद्ध मादो को उत्पन् प्रत्यय के तरे वन्
प्राप्ति कह चुके हैं, सो विन् प्रत्यय के तरे भी हो जाये । जैसे—
मुक्तानमावष्टे—उत्पन्मावष्टे कनयनि, यवयनि, माव्ययनि
इत्यादि ।

हम भारतीय के उदाहरणों की तलाश नहीं करनी कि हमने ही रक्तर्षी में हम का उपयोग है, किन्तु उदाहरणवाचक हिंदे है । और भी हमके बहुत उपयोग सम्भव है । १५७ ।

सुखदुर्युक्तद्वारवदिप्रयुक्तानां यथाविपरं पूर्वम् च
गुणः ॥ ८६ ॥ — अ० १५ अ० २४

इष्टान् दमनिन् श्रीर ईशान् अत्राय परे ह्यो, श्री रत्नान्, दूर,
दुष्ट, दमन, शिष्ट श्रीर शुद्ध अर्थो के यन् का आदि लक्षके परमाण
का आदि श्रीर पूर्व की सम्यक्ता लोक ।

अर्थ—प्रतिमाकेन स्फुर, रक्षितः, रक्षणीयान्, अस्मन्नेन दूर
 इतिष्ठम्; रक्षीयः । यथा स्फुरणं यत्नं मेन शीतं दूरं मेन शीतं वा
 शीतं होतव्यं, शीतं दूरं लक्ष्यं शीतं गुणं शीतं अस्मन्नेन होतव्यं
 है । गुणम्—अस्मन्नेन दूरं रक्षणीयान् ; रक्षितः । इति स्फुरणं
 शीतं अस्मन्नेन दूरं रक्षणीयान् ; रक्षितः । इति स्फुरणं
 शीतं अस्मन्नेन दूरं रक्षणीयान् ; रक्षितः । इति स्फुरणं

इस्य अक्षिपटः, क्षमीपटः, क्षमिणा । क्षिप-अक्षिपटः
क्षमीपटः, क्षमिणा । क्षिपटः, क्षमीपटः, क्षमिणा ।
इत इत्येव यदि तीन पदोः कावृत्त्यवस्थाने पदार्थेने मे इत्यभिन्
हो जाता है ।

उद्धा 'पर' ग्रहण हममिय किया है कि यण की यादि लके
पुर्वभाग का कोण न हो जावे ।। २३२ ।।

प्रिय सिवरसिंहरोहचहुलमहाबद्धनृपदीर्घवन्दारकाण।

अथ यत्तु न विदुः स्यात्तदाऽपि ॥ ८५ ॥

— 4 —

[illegible][illegible]

यिज्ञा वह गुरु-अनुसंधान और योगी साधन प्रणालि मन में बसे है, इस कारण उनमें दमनित् प्रत्यक्ष होता है, योगी में नहीं होता । हमोगिने उनमें दमनित् प्रत्यक्ष के उदाहरण भी नहीं मिले

1154 李 强

बहोलाप्यो शु च बहोः ॥८६३॥

— 45 —

यह शब्द से वारे जो दृष्टन्, दृग्निन्, क्षीर ईकमुन्, प्रत्यय छानका नोप हो, और यह शब्द को भू आदेश होने ।

भू अनेकात् आदेश होने से सब के स्थान में हो जाता है ।
 और (आदेशः परस्मै) इस परिभाषा मूल में परस्मैकोनिर्दिष्ट बहु
 शब्द से उत्तर को कहा जोवत्स्य आदेश आदि शब्द के स्थान में
 होता है । जैसे—प्रतिपद्येन बहुः भूमान् ; भूवर्षो ; भूमासः ;
 बहुर्भाविः भूमा । बहु शब्द पृथ्वादिबन्ध में पड़ा है ।

और इस मूल में बहु शब्द का दूसरी बार कह्य इसलिये
 है कि—अथर्वों के स्थान में भू आदेश न हो जावे ॥८९३॥

इच्छन् प्रत्यय में विशेष बहु है कि—

इच्छस्य चिट् च ॥८९४॥ —स० ६ । ४ । १२९ ॥

बहु शब्द से परे जो इच्छन् प्रत्यय, उसकी चिट् का आगम
 और बहु शब्द को भू आदेश भी होने । जैसे—प्रतिपद्येन बहुः
 भूचिष्ठः । चिट् में से इट् मान का लोप हो जाता है । और यह
 सामान्य लोप का अन्वय है ॥८९४॥

ज्यादाभीयसः ॥८९५॥ —स० ६ । ४ । १३० ॥

प्रथम और बृद्ध शब्द को जो ज्य आदेश कह चुके हैं, उससे
 परे ईधनुन् प्रत्यय के ईकार की आन्वयादेश होने । जैसे—
 प्रतिपद्येन प्रथमो बृद्धो वा ज्यामान् ।

लोप की अनुवृत्ति यहाँ चनी धात्री, लो आन्वयादेश कहला
 नहीं पड़ता, फिर बीच में चिह्नान्ध का व्यवधान होने से नहीं
 हो सकती ॥८९५॥

र ऋतो ह्लावेर्लघोः ॥८९६॥ —स० ६ । ४ । १३१ ॥

इच्छन् इधमिन् और ईधनुन् प्रत्यय परे ह्रीं, लो हल् जिसके
 धारि में हो ऐसे लघुसंज्ञक ह्रस्व ऋकार के स्थान में र आदेश

हो । जैसे—अतिशयेन पृथुः प्रविष्टः; प्रवीयान्; पृथोर्ध्वः अविमा;
अविष्टः; अवीयान्; अविमा इत्यादि ।

यहां 'अकार' का बहुत इसलिये है कि—पठिष्टः; पटीयान्;
पटिमा, यहां र आदेश न हो । 'हन्' आदि में' इसलिये कहा है
कि—अतिशयेन अतुः अविष्टः; अवीयान्; अविमा, यहां न
हो । और 'लघुसंज्ञक' विशेषण इसलिये दिया है कि—कुप्तिष्टः;
कुप्पीयान्; कुप्तिमा, यहां गुरुसंज्ञक अकार को र आदेश न
होवे ॥८९६॥

मा०—पृथुमुदुमुशकुशकुडपरिवृडानामिति अतलव्यम् ॥८९७॥

इस वार्तिक के परिचयन करते हैं कि पृथु, मुदु, मुश, कुश,
कुड और परिवृड शब्दों के अकार को ही र आदेश हो, दूसरों
को नहीं ।

इस निबन्ध के होने से—कृतमाकष्टे कृतवति; मातरमाकष्टे
मातरवति; आतवति इत्यादि में अ के स्थान में र आदेश नहीं
होता ॥८९७॥

विभक्त्यर्जोवृद्धसि ॥८९८॥ —अ० ६ । अ । १६३ ॥

यहां अग्रन्तविभाषा है, क्योंकि अतु शब्द के अकार को
किसी से र आदेश प्राप्त नहीं है ।

इप्सन्, इसनिच् और इप्सुन् अलव्य वरे हो, तो वेदविशेष में
अतु शब्द के अकार को विकल्प करके र आदेश होवे । जैसे—
अतिशयेन अतुः रविष्टः, अविष्टो वा पन्थाः, रवीयान्,
अवीयान्; अतुमाकष्टे अतवति इत्यादि ॥८९८॥

प्रकृत्यैकाक्षं ॥८६६॥ —घ० १।४।१६१॥

इच्छन्, इमन्निच् और इमनुच् प्रत्यय परे हों, तो भर्त्सक एकान् जो शब्द है, वहाँ प्रकृति करके रहे । जैसे—अतिशयेन सखी सखिष्ठः; सखीवान्; सखिणमाकष्टे सखयति; अतिशयेन सख्यान् सखिष्ठः; सखीवान्; सख्यन्तमाकष्टे सखयति ।

यहाँ सखादि प्रत्ययों के परे यिन् और मनुच् का लुक् होने के कारण एकान् शब्दों के टिभाग का लोप जाय है, तो प्रकृतिभाव के होने से नहीं होता । फिर टिजोन का ही अपवाद यह सूत्र है ।

यहाँ 'एकान्' यहाँ इमन्निचे है कि—अतिशयेन वसुमान् वसिष्ठः, यहाँ प्रकृतिभाव न होवे, किन्तु टिजोन हो हो जावे ॥८६९॥

घा०—प्रकृत्याशके राज यवनपुष्पपुमानः ॥८७०॥

आच् प्रत्यय परे ही, तो राजन्व वनपुष्प और पुषन् शब्द प्रकृति करके रह जावे । जैसे—राजन्वानां लघुहो राजन्वकम्; वानपुष्पकम्, यहाँ (आपत्त्यस्य च लङ्गित्वाति इम) लिखित सूत्र से यकार का लोप जाय है, तो न होवे ।

दूसरा भावः शीघ्रनिका, यहाँ इस पुषन् शब्द का मर्त्तजादिगण में पाठ होने से पुष्, प्रत्यय हुआ है, उस के नान्त टिभाग का लोप जाय है, तो नहीं होता ॥८७०॥

इनप्यनपत्ये ॥८७१॥ —घ० १।४।१६४॥

अपत्यरहित शब्दों में णच् प्रत्यय परे ही, तो भर्त्सक इच्छन् आङ् प्रकृति करके रह जावे । जैसे—सांकृष्टितम्; सांराज्यम्; सांवाजिनम्; सखिण इव साखिणाम् इत्यादि ।

यहां 'अन्' प्रत्यय का प्रयोग इसलिए है कि—वस्तुनां सम्पूर्णादात्मम्, यहाँ अन् प्रत्यय के पारे प्रकृतिभाव न होवे । और 'अपत्य का निषेध' इसलिए है कि—मेधाविनोऽपत्यं मेधावः, यहाँ भी प्रकृतिभाव न होवे ॥९०१॥

वाचिचिदचिकेशचिपचिभश्च ॥९०२॥

—अ० ९।४।१९२॥

यह नूतन अपत्यसंज्ञक अन् प्रत्यय के पारे प्रकृतिभाव होने के लिए है ।

अपत्यसंज्ञक अन् प्रत्यय पारे हो, तो वाचिन्, चिदचिन्, चिकेशिन्, पचिन्, भश्च के सब प्रकृति करके रहे । जैसे—वाचिनोऽपत्यं वाचिनः; चिदचिनः; चिकेशिनः; वाचिनः; वाचिनः ॥९०२॥

संयोगादिश्च ॥९०३॥ —अ० ९।४।१९३॥

अपत्यसंज्ञक अन् प्रत्यय पारे हो, तो संयोग से पारे इन्भाग प्रकृति करके रहे । जैसे—वाचिःसंयोगादपत्यं वाचिःसंयोगः; वाचिःसंयोगः; वाचिःसंयोगः ॥९०३॥

अन् ॥९०४॥ —अ० ९।४।१९४॥

यहाँ अपत्य की अनुवृत्ति नहीं जाती, किन्तु सामान्य विधान है ।

अन् प्रत्यय पारे हो, तो असंज्ञक अपत्य अन् प्रकृति करके रहे । जैसे—सामान्यादपत्यं सामनः; वैद्यः; सौख्यः; वैद्यः; सौख्यः ॥९०४॥

ये चाभावकर्मणोः ॥६०३॥ — अ० ६ । ४ । १५४ ॥

भावकर्म सबों को छोड़ के अन्य सबों में विहित प्रकारादि तद्विषय प्रत्यय परे हो, तो भवसंज्ञक अश्रयत शब्द प्रकृति करके रह जावे । जैसे—आत्मन् आधुः आत्मन्ः, आत्मन्ः इत्यादि ।

यहां 'भावकर्म सबों का निषेध' इसलिये है कि—रामो भावः कर्म वा आत्मन् । यह रात्रन् शब्द पुरोहितादिक्रम में पड़ा है, इस कारण इससे यह प्रत्यय हो जाता है ॥६०३॥

आत्माध्वानी से ॥६०४॥ — अ० ६ । ४ । १५५ ॥

तद्विषयसंज्ञक का प्रत्यय परे हो, तो आत्मन् और आध्वन् शब्द प्रकृति करके रह जावें । जैसे—आत्मनीनः, आध्वानमलङ्कानी आध्वनीनः ।

यहां 'अ' प्रत्यय का ग्रहण इसलिये है कि—प्रवात्मन्; आध्वन्; यहां प्रकृतिभाव न होवे । यहां आत्मन् अश्रयत शब्द से समासान्त एन् और अवर्तन से परे आध्वन् शब्द से अन् प्रत्यय हुआ है ॥६०४॥

न मयुषोऽवस्थेयमर्थः ॥६०५॥

— अ० ६ । ४ । १५६ ॥

अवस्थाधिकार में विहित अन् प्रत्यय परे हो, तो मयेन् शब्द को छोड़ के न जिसके पूर्व हो, ऐसा अवसंज्ञक अश्रयत शब्द प्रकृति करके न रहे, किन्तु टिसोप हो जावे । जैसे—मयुषोऽवस्थं सीतामः; आनन्दतामः; मयुषोऽवस्थं सीतामः इत्यादि ।

यहां 'मयुषोऽवस्थं' का ग्रहण इसलिये है कि—सीतामः, यहां टिसोप न हो । 'अवस्थ अर्थ' इसलिये कहा है कि—वर्मेया

परिवृत्तो रचयामेवः, वहाँ प्रकृतिभाव हो जाये । और 'वर्मन्' शब्द का निषेध' इसलिये किया है कि—सूत्रालयमनोज्ञत्वं भीषालवर्मणः, वहाँ भी द्वितीय न हो जाये ॥ ९०३ ॥

वा०—वापुर्वात् प्रतिषेधे वा हितनाम्नः ॥९०४॥

पूर्व सूत्र में वकार जिसके पूर्व हो उसको प्रकृतिभाव का निषेध किया है, तो हितनाम्न शब्द को विकल्प करके प्रकृतिभाव हो । जैसे—हितनाम्नोज्ञत्वं हितनामः; हितनाम्नः । वहाँ पञ्च में द्वितीय हो जाता है ॥ ९०४ ॥

ब्राह्मोऽजातो ॥९०६॥ —वा० १।४। ९०६ ॥

इस सूत्र का सर्व महाभाष्यकार ने ऐसा किया है कि—इस सूत्र का योनविधान करके ही वाक्यार्थ सच करने चाहिये । ब्राह्म शब्द सामान्य धर्मों में अणुप्रत्ययान्त निपातन किया है । जैसे—ब्राह्मी गर्भः; ब्राह्ममस्यन्; ब्राह्म हविः; ब्राह्मी नारदः इत्यादि । वहाँ सर्वत्र ब्रह्मन् शब्द का द्वितीय निपातन से किया है ।

और अक्षयमंतक अणुप्रत्यय परे हो, तो जाति सर्व में ब्रह्मन् शब्द के द्विभाग का लोप न होवे । जैसे—ब्रह्मोऽज्ञत्वं ब्राह्मणः ।

वहाँ 'अपत्य' ग्रहण इसलिये है कि—ब्राह्मी योषधिः, वहाँ निषेध न जाये ॥ ९०९ ॥

कर्मस्तान्महीत्ये ॥९१०॥ —वा० १।४। ९१० ॥

तान्महीत्य सर्व में व प्रत्यय परे हो, तो कर्मन् शब्द का द्वितीय निपातन से किया है । जैसे—कर्मन्महीतः वाम्नेः । इस कर्मन् शब्द का लुवादिप्रथ में पाठ होने से शील सर्व में व प्रत्यय होता है ।

यह मूल नियमार्थ है कि—कर्मण इव कर्मणम्, इत्यादि में टिप्पणी न होवे ॥ ९१० ॥

श्रीशमनपरमे ॥६११॥ -म० ६।४।१०१ ॥

सपत्न्याधिकार को छोड़ के अन्य शब्दों में शब्द प्रत्यय परे हो, तो श्रीश शब्द में टिप्पणी निपातन किया है। जैसे—उत्पन्न इव श्रीशम् ।

‘सपत्न्य का निषेध’ इसलिये है कि—उत्पन्नोत्पत्त्यसौत्पत्तिः, यहाँ निषेध न होवे ॥ ९११ ॥

**दाण्डिनायनहस्तिनायनाश्वर्षणिकजैष्टाशिलेषवासिना-
यनिश्रीमहत्त्वधैर्यसाराश्वर्याकर्मैषेष्टहिरण्ययानि ॥६१२॥**

-म० ६।४।१०४ ॥

इन मूल में दाण्डिनायन, हस्तिनायन, आश्वर्षणिक, जैष्टाशिलेय, वासिनायनि, श्रीमहत्त्व, धैर्यस, साराश्व, ऐश्वर्याक, कर्मैष और हिरण्य इन शब्दों में उद्धृत प्रत्ययों के परे टिप्पणी आदि कार्य निपातन से माने हैं ।

दण्डिन् और हस्तिन् शब्द तथादि मूल में पड़े हैं, इनसे मूल प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव निपातन से किया है। जैसे—दण्डिन्ना गोवापत्यं दाण्डिनायनः; हस्तिनायनः ।

अश्वर्षन् शब्द वसन्त्यादि मूल में पड़ा है। उपचारोपाधि वान के अश्वर्षा श्रुति के बनाये ग्रन्थ को भी ‘अश्वर्षान्’ कहते हैं। उससे कहने वालों ने शब्द प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव निपातन किया है। जैसे—अश्वर्षाश्वर्षीते वेति वा आश्वर्षणिकः ।

शिक्षाणिन् शब्द बुधादि गण में पड़ा है, उससे अन्त्य ध्वनि में इन् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव निपातन किया है। जैसे—
शिक्षाणिनोऽन्त्यं शिक्षाणिनेयः।

गोचसंसारहित् बृद्धलङ्कार वाक्निन् शब्द से अन्त्य ध्वनि में चिन् प्रत्यय के परे टिलोप का निमित्त निपातन किया है। जैसे—
वाक्निनोऽन्त्यं वाक्निनामनिः।

भ्रूणहन् भौर औक्न् शब्दों से ध्वञ् प्रत्यय के परे इनके नकार की तकारादेश निपातन किया है। जैसे—भ्रूणहन्नी भावः
औणहन्, औक्नी भावी औक्त्वम्। भ्रूणहन् शब्द से ध्वञ् प्रत्यय के निम् होने से (हन्कृतोऽविष्मन्तोः) इस सूत्र से नकारादेश हो जाता, फिर निपातन नियमान्त है कि शब्द लङ्गित प्रत्ययों के परे इसकी तकारादेश न होने। जैसे—भ्रूणह्नोऽन्त्यं औक्त्वनः, औक्त्वनः, वहां ध्वञ् प्रत्यय हुआ है।

सरज् शब्द से शैथिल्य अन् प्रत्यय के परे अय् भाव का लोप निपातन किया है। जैसे—सरज्वां अयं सारजमुदकम्। ऊकार की गुण होकर सवादेश हो जाता है।

जनपद के सञ्चान क्षत्रियवाची इत्यन्तु शब्द से अपत्य और लङ्गाय ध्वनि में ध्वञ् प्रत्यय के परे ऊकार का लोप निपातन किया है। जैसे—इत्याकीरपत्यमिहवाकुनां राजा वा ऐश्वर्यम्।

विषयु शब्द वृष्ट्यादि गण में पड़ा है, उससे इन् प्रत्यय के परे इय् आदेश का अपवाद यु शब्द का लोप निपातन किया है। जैसे—विषयोऽन्त्यं मेषेयः।

हिरण्य शब्द से षवट् प्रत्यय के परे ण वाच का लोप निपातन किया है। जैसे—हिरण्यस्य विकारः हिरण्यमः ॥९१२॥

आस्त्यवास्त्यवास्त्यमास्त्योहिरण्यमानि छन्दसि ॥६१३॥

—अ० ५।४।१७२॥

आस्त्य, वास्त्य, वास्त्य, मास्त्यो और हिरण्य, ये शब्द वेदविषय में लङितप्रत्ययान्त निपातन किये हैं।

जैसे—आती भवम् आस्त्यम् ; वास्तो भवं वास्त्यम्, यहाँ आतु और वास्तु शब्दों को ककारादि यत् प्रत्यय के बारे जनादेश निपातन किया है।

वस्तु शब्द से वस्तु प्रत्यय के बारे वुञ्ज का जनवाद जनादेश निपातन किया है—वस्तुनि भवं वास्त्यम् । मधुशब्द से मधोनिञ्ज में वञ् प्रत्यय के बारे जनादेश निपातन किया है। जैसे—मधुन दमा माध्वोनेः सार्वभौषधीः ।

हिरण्य शब्द से परे ऋह् के म आच का लोच निपातन के किया है। जैसे—हिरण्यस्य विकारो हिरण्यम् ॥ ५१३ ॥

लङितेभ्यश्चाभादेः ॥६१४॥ —अ० ७।२।११७॥

प्रित्, नित् लङितसंज्ञक प्रत्यय परे हों, तो षञ्ज के छत्तों में आदि षञ् को वृद्धि हो। जैसे—प्रित्—मनेस्व गोत्रापरम् दाम्ब्यः ; वास्त्यः ; दाक्षिः ; प्लाक्षिः इत्यादि । नित्—उपखोरपत्यम् भीमरावः ; कापतवः ; सौम्यं हविः इत्यादि ॥ ५१४ ॥

किञ्ति च ॥६१५॥ —अ० ७।२।११८॥

किञ्चसंज्ञक लङित प्रत्यय परे हों, तो भी षञ्ज के छत्तों में आदि षञ् को वृद्धि होने । जैसे—कङ्—नाशायनः ; पाराशर्यः ; रेवत्या अश्वस्य रेवतिकः इत्यादि ॥ ५१५ ॥

देविकार्तिशयादित्य वा इदीर्घसञ्चयेयसामात् ॥६१६॥

—य० ७ । ३ । १ ॥

यहां जित्, गित् और कित् लङितसंज्ञक प्रत्यय परे हों, तो देविका, शिष्या, शिष्याट्, दीर्घश्च और श्वेयस्, इन पाँचों के आदि अन् को वृद्धि प्राप्त है, उसको वाच के आकारदेख होवे ।

जित्, गित् और कित् लङितसंज्ञक प्रत्यय परे हों, तो देविका, शिष्या, शिष्याट्, दीर्घश्च और श्वेयस्, इन पाँचों के आदि अन् को वृद्धि प्राप्त है, उसको वाच के आकारदेख होवे ।

जैसे—देविकायां भवं दाविकमुदकम्—देविका नाम किसी नदीविशेष का है; देविकासूत्रे भवाः दाविकाः शालयः; पूर्वदेविका नाम है प्राचीनों के ग्राम का—पूर्वदेविकायां भवः पूर्वंः पूर्वदाविकः, यहाँ भी (प्राचां ग्राम०) इस आशयों श्रुति से उत्तरपदवृद्धि प्राप्त है, उसका अर्थवाद आकार ही हो जाता है ।

शिष्यायां विकारः शाक्ष्यास्त्वभसः, यह शिष्या शब्द 'शीशो' लृप्त का नाम है । उसके अनुदात्तादि होने से विकार अर्ध में अच् प्रत्यय होता है । शिष्यास्त्वभे भवाः शाक्ष्यास्त्वभः । और पूर्वशिष्यायां शब्द प्राचीनग्राम की संज्ञा है, उसको भी पूर्वोक्त प्रकार से उत्तरपदवृद्धि हो जाती है । जैसे—पूर्वशिष्यायां भवः पूर्वशाक्ष्यः ।

शिष्याट्—शिष्यीह् ददं शिष्यीह्व, यहाँ शैविक अच् प्रत्यय हुआ है; दीर्घश्च—दीर्घश्च भवं दाविकम्; श्वेयस् भवं श्वेयस् ॥ ६१६ ॥

वा०—यहीनरस्येहचनम् ॥६१७॥

जित्, गित् और कित् लङितसंज्ञक प्रत्यय परे हों, तो यहीनर शब्द के आदि अन् को इसाखदेख होवे । जैसे—

बहीनरस्वापत्यं बहीनरः, यहाँ इनपरादेश वृद्धि की प्राप्ति में बही कहा, इसी से वृद्धि का वाचक नहीं होता है। परादेश किये इनकार की वृद्धि हो जाती है।

और किन्हीं शक्ति शक्तियों का इस विषय में यह अभिप्राय है कि—‘बहीनर’ शब्द से ही प्रत्यय होता है। यस्मिन् यह ऐसा ही शब्द है। कामबीनाभ्यां बहीनो नरः बहीनरः। यहाँ पूषोदरादि मात्र के एक नकार का बोध हो जाता है। जिनके मत में ‘बहीनर’ शब्द है, उनके मत में वाचिक नहीं करना चाहिये

॥ ९१७ ॥

केकयविश्वयुजलघानां यादेरियः ॥ ९१८ ॥

—अ० ७।१।२।१०

केकय, विश्वयु और प्रत्यय शब्दों के वकारादिक भाग को इस परादेश होने, अित् पित् कित् लङित प्रत्यय परे हों तो, और यादि यच् की वृद्धि तो पूर्व सूत्रों से सिद्ध हो है।

इसे—केकयस्वापत्यं केकयानां राजा वा केकेयः, यहाँ अनपद क्षत्रियवाची केकय शब्द से यश् प्रत्यय हुआ है; विश्वयुभावेन स्ताभते मेधेनिकत्वा स्तापते, यहाँ बीषवाची विश्वयु शब्द से स्ताभा शर्ष में युज् प्रत्यय हुआ है; प्रलाप्यादापत्यं प्रलियमुदकम्, यहाँ क्षागत शर्ष में यच् प्रत्यय हुआ है ॥ ९१८ ॥

न प्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वो तु ताभ्यामैच् ॥ ९१९ ॥

—अ० ७।१।३।३॥

अित् पित् और कित् संज्ञक लङितप्रत्यय परे हों, तो वकार वकार से परे शब्दों के यादि यच् के स्थान में वृद्धि न हो, किन्तु

उन वकार वकार से पूर्व ऐच् का आगम हो, अर्थात् वकार से पूर्व ऐकार और वकार से पूर्व औकार आदि होवे ।

जैसे—व्याकरणमञ्जीरे वेद का वेदाकरणः; न्यायमञ्जीरे नैयायिकः; व्यसने भव वैयस्यम् इत्यादि; स्वप्नस्वापत्यं सौवश्चः; सौवर्चः; स्वराणां व्याख्यानो घन्वः सौवरः इत्यादि ।

जहाँ 'वकार वकार से पूर्व' इत्यादि कहा है कि—वर्गस्वापत्यं चाभिः, यहाँ ऐक से पूर्व ऐच् का आगम न हो । 'पदान्त' विशेषण इत्यादि है कि—पठितः प्रहरणमस्य वाष्टीकः, जहाँ वकार से पूर्व ऐच् का आगम भी न होवे । और जहाँ वकार वकारों से उत्तर वृद्धि की प्राप्ति न हो, वहाँ उनसे पूर्व ऐच् का आगम भी न हो । जैसे—वदधश्चस्वापत्यं दाड्यश्चिः ॥ १,१९ ॥

द्वारादीनाञ्च ॥ १,२० ॥ -घ० ७।३।४ ॥

द्वारादि शब्दों के वकार वकार से उत्तर सभी के यदि घच् की वृद्धि न हो, किन्तु उन वकार वकारों से पूर्व तो ऐच् का आगम हो जाने ।

जैसे—द्वारे नियुक्तः दीवारिकः; द्वारपालस्वापत्यं दीवारपालम्; स्वरमण्डितय कृतो कन्धः सौवरः; सौवरोऽव्यायः; स्वाध्यायः प्रयोजनमस्य सौवाध्यायिकः; व्यस्तके भवः वैयत्कः; स्वस्त्योद्याह सौवस्तिकः; स्वर्गवर्ण प्रयोजनमस्य सौवर्गमनिकः; स्पष्टकृतस्वाध्यायं स्फुटकृतः; स्वाधुमृदु भक्तिरस्य सौवाधुमृदवः; सुन इदं सौजनम्—यहाँ पूर्वलिखित (घन्) सूत्र से घच् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव ही आता है, सुनी विहारः सौजन मायम्; अर्धपट्टायां भवः सौवाधट्टी मणिः; स्वस्मैऽनेच्छत्यं सौवम्; स्वयामे भवः सौवप्रायिकः—स्वयाम् शब्द से प्रख्यात्मादि वच में ज्ञान के रूप प्रत्यय होता है ।

पूर्व सूत्र में वदान्त वकार वकार से पूर्व ऐच् का आगम कहा है, यहाँ द्वारादि शब्दों में वदान्त नहीं, इसलिये फिर प्रत्यय करके कहा । स्वाध्याय शब्द दत्त द्वारादि पत्र में पड़ा है, इसका भी प्रकार से निर्वचन होता है- सुष्ठु वा अष्टम्यमं स्वाध्यायः, शीभवं वा अष्टम्यमं स्वाध्यायः, यथवा स्वमध्यममं स्वाध्यायः । इनमें से किसी प्रकार का निर्वचन सम्भो, स्वाध्याय शब्द सर्वथा यौगिक ही है ।

घोर द्वारादि शब्द सब अन्वयुत्पन्न प्रातिपदिक हैं । इसीलिये यह सूत्र कहा है । तो जो 'मु+आध्याय' ऐसा विच्छेद करें, तब तो वदान्त वकार से पूर्व प्रथम सूत्र से ही ऐच् का आगम हो जावेगा । घोर जब 'स्व+आध्याय' ऐसा निर्वचन करें तो भी स्व शब्द इसी रूप में पड़ा है । तो पहले सूत्र में केवल शब्द के ज्ञापन से इस प्रकरण में तदादिविधि होती है । फिर स्वशब्द जिसके प्रादि में ही ऐसे स्वाध्याय शब्द से इसी सूत्र करके ऐच् का आगम हो जावेगा । फिर स्वाध्याय शब्द को इस रूप में बदने से कुछ प्रयोजन नहीं । यह महाभाष्यकार का भाव्य है

॥ १२० ॥

न्यग्रोधस्य च केवलस्य ॥ १२१ ॥ —घ० अ० १।३।४॥

केवल न्यग्रोध शब्द के वकार से परे, शब्दों के प्रादि शब्द के स्थान में वृद्धि न हो, किन्तु वकार से पूर्व ऐच् का आगम हो जावे । जैसे—न्यग्रोधस्य विकारो लेंदग्रोधस्यमतः ।

यहाँ 'केवल' शब्द का ग्रहण इसलिये है कि—न्यग्रोधश्रुते भवाः न्यग्रोधश्रुताः आलवः, यहाँ ऐच् का आगम न होवे ।

इस 'न्यग्रोध' शब्द का ग्रहण श्रुत्यन्तिका में निश्चयार्थ है कि वदान्त वकार से पूर्व के केवल न्यग्रोध शब्द को ही ऐच् का

आगम्य हो, अन्य शब्दों की तदादि होने से भी हो जाये । और व्यङ्ग्यप्रतिपक्ष में विधान आवश्यक है ॥ १२१ ॥

न कर्मव्यतिहारै ॥ ६२२ ॥ — अ० ७।१।१ ॥

कर्मव्यतिहार शब्द में वर्तमान प्रालिपदिक के प्रकार प्रकार से पूर्व ऐच् का आगम्य न होवे । जैसे—व्यावकीर्षी; व्यावलेखी; व्यावहारी इत्यादि ।

यहां कर्मव्यतिहार शब्द में कृष्णत्वं वाक् प्रत्यय और लक्ष्मण से स्त्रीलिङ्गस्वार्थ में तद्धितसंज्ञक वाक् प्रत्यय हुआ है ॥ १२२ ॥

स्वागततदीनां च ॥ १२३ ॥ — अ० ७।१।७ ॥

जित् नित् कित् संज्ञक तद्धितप्रत्यय परे हों, तो मत्वप्रति स्वागतदि शब्दों के प्रकार प्रकार से पूर्व ऐच् का आगम्य न होवे ।

जैसे—स्वागतमित्याह स्वागतिकः; स्वध्वरेण चरति स्वाध्वरिकः; स्वाङ्गस्यापत्यं स्वाङ्गिः; स्वाङ्गस्यपत्यं स्वाङ्गिः; स्ववहारः प्रयोगजनस्य स्वावहारिकः—यही स्ववहार शब्द कर्मव्यतिहार शब्द में नहीं, किन्तु लौकिक भाष्यों का बाधो है; स्वचरी तावुः स्वाचरीवः ।

स्वागतदि कुछ लौकिक शब्द हैं, उनमें तो प्रधानतः प्रकार प्रकार से पूर्व ऐच् का आगम्य प्राप्य है, और स्वप्रति शब्द में यह बात नहीं, सो स्व शब्द द्वारादि मत्व में बढ़ा है, यही दशानि से ऐच् का आगम्य प्राप्य है, इन सबका निषेध समझना चाहिये

स्वादेरिति ॥ ६२४ ॥ —अ० ७।३।५ ॥

तद्धितसंज्ञक इत् प्रत्यय परे हो, तो किसी शब्द के आदि में वर्तमान अथ शब्द के बकार से पूर्व ऐच् का आगमन न हो। जैसे—आमस्यस्मात्तर्ष आभनितः, आर्दधुः इत्यादि।

अन् शब्द द्वारादिगण में पड़ा है, इस कारण इसको तदादिविधि मान कर बकार से पूर्व ऐच् प्राप्त है, उसका प्रतिषेध किया है ॥ ६२४ ॥

वा०—इकारादियहूर्णं च इवामनिकाद्यर्थम् ॥ ६२५ ॥

सूत्र में तद्धितसंज्ञक इत् प्रत्यय के बारे देवान्वय का निषेध किया है, जो सामान्य इकारादि प्रत्यय के बारे करना चाहिये। जैसे—वहमनेन चरति आभनिकः, आभुनिकः इत्यादि। यह शालिक सूत्र का शेष है ॥ ६२५ ॥

वा०—तदन्तस्य चाव्यय प्रतिषेधः ॥ ६२६ ॥

घोर इत् प्रत्यय के निम्न कोई प्रत्यय परे हो, तो आदि में वर्तमान वह शब्द के बकार से पूर्व ऐच् का आगमन न हो। जैसे—आमस्यः स्वं आभस्यम् इत्यादि ॥ ६२६ ॥

पदान्तस्याव्ययतरस्याम् ॥ ६२७ ॥ —अ० ७।३।९ ॥

पद शब्द जिसके अन्त में हो, ऐसे अथ शब्द के बकार से पूर्व ऐच् का आगमन रोककर दिये हैं। जैसे—आमस्यस्तेर्ष आभस्यम्; शीवापदम् इत्यादि ॥ ६२७ ॥

उत्तरपदस्य ॥ ६२८ ॥ —अ० ७।३।१० ॥

वह सविकार सूत्र है। वही से आगे जो कार्य विधान करे, जो (ह्रस्वोऽ) इस सूत्र पर्यन्त सामान्य करके उत्तरपद को होगा ॥ ६२८ ॥

अथपञ्चवर्णीः ॥ ९२९ ॥ — अ० ७।३।११।

चित् चित् धीर कित् संज्ञक लङितप्रत्यय परे हों, तो अथपञ्चवाची के बारे जो अनुवाची उत्तरपद उसके अर्थों में आदि अच् की वृद्धि होवे।

जैसे—पूर्ववर्णीषु अथ पूर्ववर्णिकम्; पूर्वहैमन्तम्; अथरवर्णिकम्; अथरहैमन्तम् इत्यादि। यहाँ पूर्व शब्द का अर्थ धीर हैमन्त शब्द के साथ एकदोही समास होता, धीर वर्णों शब्द से लैटिक ठक्, हैमन्त से अच् प्रत्यय धीर हैमन्त शब्द के लकार का बोध हुआ है।

यहाँ 'अथपञ्च' शब्द का ग्रहण इसलिये है कि—पूर्वेषु वर्णेषु अथ पूर्ववर्णिकम्, यहाँ अथपञ्चवर्णिक के न होने से उत्तरपदवृद्धि न हुई। यहाँ वर्णों धीर हैमन्त शब्दों के पूर्व धीर अथर शब्द अथपञ्च है ॥ ९२९ ॥

मुसर्वाद्धाञ्जलपदस्य ॥ ९३० ॥ — अ० ७।३।१२॥

चित् चित् धीर कित् संज्ञक लङित प्रत्यय परे हों, तो मु, सर्व धीर अर्थ शब्दों से परे जो जनपद देववाची उत्तरपद, उसके अर्थों में आदि अच् के स्थान में वृद्धि होवे।

जैसे—मुपाञ्चालेषु अथः मुपाञ्चालकः; सर्वपाञ्चालकः; सर्वपाञ्चालकः इत्यादि। यहाँ लैटिक ब्रह्म प्रत्यय होता है ॥ ९३० ॥

विशोऽम्राष्टाणाम् ॥ ९३१ ॥ — अ० ७।३।१३॥

चित् चित् धीर कित् संज्ञक लङित प्रत्यय परे हों तो विशावाची शब्दों से परे जो मद्र शब्द की छोड़ के जनपद

देसवाची उत्तरपद, उसके अर्थों में आदि अर्थ के स्थान में वृद्धि होती है ।

जैसे—पूर्वपञ्चाला निवासीऽथ पूर्वपञ्चालकः, उत्तरपञ्चालकः; दक्षिणपञ्चालकः इत्यादि । यद्वा भी ऐलिक अर्थ प्रत्यय होता है ।

यहाँ 'दिशावाची' का कहना इतना है कि—पूर्वः पञ्चालायां पूर्वपञ्चालः पूर्वपञ्चालेषु भवः पूर्वपञ्चालकः; उत्तरपञ्चालकः, यहाँ एकदोही स्थान में पूर्व तथा उत्तर अर्थ दिशावाची नहीं, किन्तु अर्थवाची है, इस कारण उत्तरपदवृद्धि नहीं होती । 'मध्यमार्ग का विशेष' इतना है कि—पूर्वमार्गेषु भवः पूर्वमार्गः; उत्तरमार्गः, यहाँ ऐलिक अर्थ प्रत्यय के परे उत्तरपदवृद्धि नहीं होती ॥ ९३१ ॥

प्राचां प्राचनगराणाम् ॥ ९३२ ॥ —अ० ७।१।१४ ॥

किन् किन् और किन् संज्ञक लङित प्रत्यय परे हों, तो प्राचीन प्राचाओं के मन में दिशावाची शब्दों के परे जो प्रथम और नवम्वाची उत्तरपद, उसके अर्थों में आदि अर्थ के स्थान में वृद्धि हो ।

जैसे—ग्राम—पूर्वग्रामाणां भवः पूर्वग्रामग्रामः; उत्तरग्रामग्रामः; पूर्वग्राममूलिकः; उत्तरग्राममूलिकः । नगरों के—पूर्वनगराणां भवः पूर्वनगरः; उत्तरनगरः; पूर्वश्रीणः दक्षिणश्रीणः इत्यादि ॥ ९३२ ॥

संख्यायाः संवत्सरसंख्याय च ॥ ९३३ ॥

—अ० ७।१।१५ ॥

किन् किन् और किन् संज्ञक लङित प्रत्यय परे हों, तो संख्यावाची शब्दों के परे जो संवत्सर और संख्यावाची उत्तरपद, उसके अर्थों में आदि अर्थ के स्थान में वृद्धि होती है ।

जैसे—द्विसंवाचनराशयोक्तो भूतो भूतो भावो वा, द्विसंवाचनिकः; द्वे वस्ती वस्तीक्तो भूतो भूतो भावो वा द्विसंवाचनिकः; द्विसंवाचनिकः; द्विसंवाचनिकः इत्यादि ।

यहां सवस्तर के ग्रहण से उत्तर सूच में परिमाणान्तग्रहण में काव्यपरिमाण का ग्रहण नहीं होता, इससे—द्विसंवाचनिकः; द्विसंवाचनिकः, वही उत्तरपदबुद्धि नहीं होती । द्विसंवाचनिकः, द्विसंवाचनिकः, यहां परिमाणवाची से कहा हीन प्रत्यय भी नहीं होता ॥२३॥

यथैवास्मान्निष्पद्यति ॥२३॥ —य० ३।३।१०॥

यहां सवस्तरवाची की अनुवृत्ति जाती है ।

भविष्यत् सर्व को छोड़ के अन्य सर्वों में स्थित किन्तु किन्तु और किन्तु सवस्तर लक्षित प्रत्यय परे हैं, जो सवस्तरवाची शब्दों से परे जो सर्व उत्तरपद, उसके सर्वों में प्राप्ति सर्व की बुद्धि ही । जैसे—द्विसंवाचनिकः द्विसंवाचनिकः भूतो भूतो वा द्विसंवाचनिकः; द्विसंवाचनिकः इत्यादि ।

यहां 'भविष्यत् सर्व' का निवेद्य उपनिषद् किया है कि—जो कि कर्षाणि भावो जैविकम्, वही उत्तरपदबुद्धि न होगी ।

संवाचन और भूत सर्वों में भी भविष्यत् काल होता है । परन्तु यहां भविष्यत् का निवेद्य नहीं लगता, क्योंकि उन सर्वों में जो भविष्यत् का सवस्तर है, वह लक्षित प्रत्यय का सर्व नहीं है । जैसे—द्वे सर्व वस्तीक्तो भूतो वा कर्षाणि कर्षाणीति द्विसंवाचनिकः ॥२३॥

परिमाणान्तस्वासंज्ञाज्ञानयोः ॥२३॥

—य० ३।३।१०॥

त्रित् त्रित् धीर कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों, तो संज्ञावाची छन्दों से परे जो संज्ञाविषय में धीर शान् उत्तरपद की छौड़ के अन्य परिमाणान्त उत्तरपद, उसके अर्थों में आदि अण् को वृद्धि होवे ।

जैसे—ही कुडवी प्रवीणवन्तस्य द्विक्रीडविकम्; द्वाभ्यां सुवर्णभ्यां भीतं द्विसौवनिकम्; द्वाभ्यां निष्काभ्यां भीतं द्विनेष्टिकम्; विनेष्टिकम् इत्यादि । यहाँ कण् प्रायश्च हुआ है ।

यहाँ 'संज्ञाविषय में निवेष्ट' इसलिये किया है कि—पाञ्च लोहित्यः परिमाणस्य पाञ्चलोल्लिखितम्; पाञ्चकपालिकम्, यहाँ संज्ञा में उत्तरपदवृद्धि न हो । धीर 'शान् उत्तरपद के परे निवेष्ट' इसलिये है कि—द्वाभ्यां शापाभ्यां भीतं द्वेषाणम्; वेष्टाणम्, यहाँ भीत अर्थ में अण् प्रायश्च के परे उत्तरपद को वृद्धि न होवे ॥९३३॥

जे प्रोष्ठपदानाम् ॥९३३॥ —क० ७।३।१५॥

यहाँ जे शब्द से जात अर्थ का बोध होता है । जात अर्थ में विहित त्रित् त्रित् धीर कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों, तो प्रोष्ठपदा नामक नक्षत्र में उत्तरपद के आदि अण् को वृद्धि होवे ।

जैसे—प्रोष्ठपदानु जातः प्रोष्ठपदो वागवकः, यहाँ नक्षत्रवाची से सामान्य जात अर्थ में विहित अण् प्रायश्च का मूप् होकर चिर नक्षत्रवाची से जात अर्थ में अण् प्रत्यय होता है ।

यहाँ 'जे' रह्य इसलिये है कि—प्रोष्ठपदानु अर्थः प्रोष्ठपदः, यहाँ वृद्धि न हो । धीर इत् सूत्र में बहुवचन निर्देश से प्रोष्ठपदा के पर्यायवाचिकों का भी रह्य समझना चाहिये । जैसे—अक्षपदानु जाती अक्षपदः ॥९३६॥

सानुहारतिः; कुदहनस्यान्तर्यं कीरयत्यः; कुदहनवासेषु भवः
कीरयान्त्वानः; उदकमुद्धस्यान्तर्यम् भीदकगौडिः ।

इह लोके भवं ऐहलोकिकम्; परलोके भवं पारलोकिकम्
लौकोत्तरपद प्रानिपदिषीं से ठहर् प्रत्यय कह चुके हैं; सर्वलोके
विहितः सार्वलोकिकः पुरुषः; सर्वपुरुषस्पर्धे कर्म सार्वपौरुषम्;
सर्वभूमेनिमित्तं सर्वेण उत्पत्तौ वा सार्वभौमः; प्रलोके भवं
प्राचीनिकम्; परस्मिवा अन्तर्यं पारस्पर्यम्—परस्मी शब्द
कलमत्तवादिकय में पड़ा है, वहाँ इनह् आदेश हो जाता है;
राजपुरुष शब्द को पण्य् प्रत्यय के परे उभयपदबुद्धि होती है—
राजपुरुषस्य कर्म राजपौरुषम् ।

अत्र प्रत्यय का निश्चय इसलिये है कि—राजपुरुषस्यापत्यं
राजपुरुषावधिः; वहाँ उत्तरदेशीय भाषाओं के मन में गोत्रसंज्ञा-
रहित बुद्धिसंज्ञक प्रानिपदिक से अन्तर्य पद में किर्य् प्रत्यय
होना है; शतकुम्भे भवः शतकीर्यम्; मुखशयनं कुच्छति
मौच्छतामन्त्रिकः; परदारान् गच्छति पारदारिकः; सूचनद्वयापत्यं
सौचनारिः; अभियममर्हति; आभियामिकः; अक्षिदेवे भवमायि-
देविकम्; आक्षिभौतिकम्; आश्वादिमिहम्—आश्वादिमादि शब्दों से
अन्तर्य में ठहर् प्रत्यय कह चुके हैं ।

यह आकृष्टिगण इसलिये समझना चाहिये कि अन्य अपठित
शब्दों की भी उभयपदबुद्धि हो जाये । जैसे—वतस एव विद्याः
आनुर्वीर्यम्; आनुराज्यम् इत्यादि में भी उभयपदबुद्धि हो
जाये ॥९३८॥

देवताद्वन्द्वे च ॥६३६॥ —घ० ७।३।२१॥

अित् नित् और कित् संज्ञक लङ्गित प्रत्यय परे हो, तो देवता-
बाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में पूर्व और उत्तर दोनों पदों के प्रथीं में

आदि षष् के स्थान में वृद्धि होवे । जैसे—प्राग्निवाक्यो;
आग्निमाकतो मन्त्रः ।

परन्तु जहाँ मूल षष्चा मन्त्र और हविष्य वदार्थ सम्बन्धी देवतावाची शब्दों का द्वन्द्वसमास हो, वही उभयपदवृद्धि हो । और—स्वन्दविज्ञात्री देवते अस्म रुक्माव्यविज्ञार्थं कर्म; आह्वयप्रज्वालनम्, वहाँ उभयपदवृद्धि न होवे ॥ ९३९ ॥

नेमद्वय्य वरदस्य ॥ ६४० ॥ — अ० ७ । ३ । २९ ॥

देवतावाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में उत्तरपद में जो इन्द्र शब्द आवे, तो उसकी वृद्धि न हो । पूर्व मूल से प्राप्त है, उसका निषेध किया है । जैसे—सोमेन्द्रो देवते अस्म सोमेन्द्रः; आग्नेन्द्रः इत्यादि ।

यहाँ 'वर' इहम इत्यलिये है कि—ऐन्द्रान्दं वरं निषेधेत्, वहाँ पूर्वपद में निषेध न होवे । इन्द्र शब्द में जो वर है । उसमें से अन्त्य अकार का लुप्त प्रत्यय के परे ओप, और पूर्व अकार का दूसरे वर्ण के साथ एकादेश होने से उत्तरपदवृद्धि की प्राप्ति ही नहीं हो सकती, फिर निषेध करने से यह साफ़ होता है कि अन्तरङ्ग भी एकादेश की साथ के अन्त्य पूर्वोत्तरपदवृद्धि ही होती है ।

इस साफ़ का अन्वय फल यह है कि—पूर्ववृत्तमशमः, यहाँ उत्तरपद में इव् शब्द के इकार की वृद्धि प्रथम ही हो जाती है, पीछे एकादेश होता है ॥ ९४० ॥

दीर्घाक्ष्य वरुणस्य ॥ ६४१ ॥ — अ० ७ । ३ । २३ ॥

दीर्घं वर्ण से परे जो वरुण उत्तरपद उसके आदि षष् को वृद्धि न हो ।

यहां भी देवता के इन्द्रमन्त्र में पूर्वमुख में प्राप्ति है, उसका प्रतिषेध समझना चाहिये । जैसे—इन्द्रावरुणी देवते अस्म ऐन्द्रावरुणम्; मीमावरुणम् इत्यादि ।

‘घोरं वर्षं मे परं’ इसलिये कहा है कि—आग्निवारुणी, यहां निषेध न हो जाये ॥ ९४१ ॥

प्राचीं नगरान्ते ॥ ९४२ ॥ —अ० ७ । ३ । २४ ॥

प्राचीनों के देश में त्रिन् पित् घोरं त्रिन् संज्ञक तद्विषय प्रत्यय परे हो, तो नगरान्त अङ्ग में उभयपद के आदि अच् की वृद्धि हो । जैसे—गुरुनगरे भवः सीतुनगरः; पौष्पनगरः इत्यादि ।

यहां ‘प्राचीं’ कहना इसलिये है कि—महानगरे भवः महानगरः, यहां उत्तरदेशीय नगरान्त में न होवे ॥ ९४२ ॥

अङ्गन्तधेनुवलयान्तरय विभावितमुत्तरम् ॥ ९४३ ॥

—अ० ७ । ५ । २२ ॥

त्रिन् पित् घोरं त्रिन् संज्ञक तद्विषय प्रत्यय परे हो, तो अङ्गन्त, धेनु, वलय ये शब्द मिलके अन्त हो, उस समुदाय के उत्तरपद के आदि अच् की विकल्प करके, घोर पूर्वपद के आदि अच् की निम्न वृद्धि होवे ।

जैसे—गुरुजङ्गलेषु भवः कीरजङ्गलम्, कीरजङ्गलम्; वैश्वर्षनयम्, वैश्वर्षनयम्; सीवर्षनयम्, सीवर्षनयम्, यहां सीवर्ष अच् प्रत्यय हुआ है ॥ ९४३ ॥

अर्द्धात्परिमाणस्य पूर्वस्य तु वा ॥ ९४४ ॥

—अ० ७ । ३ । २५ ॥

जित् जित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों, तो घट्ट शब्द से परे जो परिमाणवाची उत्तरपद, उसके अन्त में घादि अच् को नित्य और पूर्वपद के घादि अच् को विकल्प करके वृद्धि होती है। जैसे—घट्टाद्रीचंग नीलमाट्टाद्रीणिकम्, घट्टाद्रीणिकम्; घाट्टाकौटविकम्, घट्टाकौटविकम् ।

यहां 'परिमाण' ग्रहण इसलिये किया है कि—घट्टाकौटः प्रमाणनकस्य घाट्टाकौटविकम्, यहाँ पूर्वपद को विकल्प और उत्तरपद को नित्य वृद्धि न होती है ॥ २४४ ॥

नातः परस्य ॥ २४५ ॥ —घ. ७।३।२७ ॥

जित् जित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों, तो घट्ट शब्द से परे परिमाणवाची उत्तरपद के घादि अकार को वृद्धि न हो, और पूर्वपद को विकल्प करके होती है। जैसे—घट्टाप्रस्थेन नीलमाट्टाप्रस्थिकम्, घट्टाप्रस्थिकम्; घाट्टाकनिकः; घट्टाकनिकः ।

यहां 'अकार' का ग्रहण इसलिये है कि—घाट्टाकौटविकः, यहाँ वृद्धि का निषेध न होती है। और 'अकार में तत्परकरण' इसलिये है कि—घट्टाखाया भवा घाट्टाखारी, यहाँ खारी शब्द उत्तरपद के घादि में दीर्घ अकार है ।

कदापि वृद्धि होने न होने में कुछ विशेष नहीं दीखता, तो भी—घाट्टाखारी भाष्या यस्य घाट्टाखारीभाष्याः, यहाँ वृद्धि के निमित्त तद्धित प्रत्यय के परे पुंलङ्गात् का निषेध नहीं पायेगा । क्योंकि जिस तद्धित प्रत्यय के परे वृद्धि का निषेध है, वह वृद्धि का निमित्त नहीं हो सकता कि जैसे—वैयाकरणो भाष्या यस्य वैयाकरणभाष्याः यहाँ पुंलङ्गात् हो जाता है, वैसे उसमें भी हो जायेगा ॥ २४६ ॥

प्रवाहस्य ङे ॥ २४६ ॥ —सं० ७।१।२८ ॥

तद्धितसंज्ञक इ प्रत्यय परे हो, तो प्रवाह्म शब्द के उत्तरपद के आदि घञ् को वृद्धि हो और पूर्वपद के आदि घञ् को विकल्प करके होवे ।

जैसे—प्रवाह्मस्यप्रत्ययं प्रवाह्मैवः, प्रवाह्मैवः । प्रवाह्म शब्द का मुच्चादिसञ्ज्ञ में पाठ होने से कङ् प्रत्यय हो जाता है ॥ २४६ ॥

तत्प्रत्ययस्य च ॥ २४७ ॥ —सं० ७।१।२९ ॥

चित् चित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो, तो कङ् प्रत्ययान्त प्रवाह्म शब्द में उत्तरपद के आदि घञ् को नित्य और पूर्वपद के घञ् को विकल्प करके वृद्धि हो ।

जैसे—प्रवाह्मैवस्यमुवापर्यप्रवाह्मैविः, प्रवाह्मैविः इत्यादि, अर्थात् अने में इव् प्रत्यय हुआ है । दूसरे प्रत्यय के आशय की वृद्धि है, तो कङ् प्रत्यय की मात्र के विकल्प से नहीं हो सकती, इसलिये यह सूत्र कहा है ॥ २४७ ॥

नमः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम् ॥ २४८ ॥

—सं० ७।१।३० ॥

चित् चित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो, तो नञ् से परे जो शुचि, ईश्वर, क्षेत्रज्ञ, कुशल और निपुण उत्तरपद उसके अर्थों में आदि घञ् की नित्य और पूर्वपद को विकल्प करके वृद्धि हो ।

जैसे—शुचि—शुचीश्वरः, शुचीश्वरः; ईश्वर—श्रीश्वरस्य भावः शानीश्वर्यम्, शानीश्वर्यम्; क्षेत्रज्ञ—क्षेत्रज्ञश्चक्षुः, क्षेत्रज्ञश्चक्षुः

सर्ध्वनतपम्; कुशल—सकुशलस्य भावः आसीदलम्, असीदलम्;
निपुण—दार्ढ्यपुणम्, अर्धपुणम् ॥ ९४८ ॥

यथातथयथापुरयोः पर्यायेण ॥ ९४९ ॥

—अ० अ० ॥ ९४९ ॥

त्रिन् त्रिन् और त्रिन् संज्ञक लङ्गित अत्यय चरे हो, तो नञ्
से चरे की यथातथ और यथापुर उसके अर्थों में प्रादि अन् को
पर्याय से वृद्धि हो । अर्थात् जब पूर्वपद को हो तब उत्तरपद को
नहीं, और जब उत्तरपद को हो तब पूर्वपद को नहीं होते ।

अंशे—अयथातथा भावः अयथातथ्यम्, अयथातथ्यम्;
आयथापुण्यम्, अयथापुण्यम् । अयथातथा और अयथापुर से
दोनों अर्थ आह्लादादि अर्थ में पड़े हैं, इससे अत्र अत्यय होता
है ॥ ९४९ ॥

इति श्रीमत्तन्त्रामिदधानन्दसरस्वतीव्यासपात्रीश्याम्याश्याम्या

स्वर्णताडितोऽयं ग्रन्थः समाप्तः ॥

वसुरामाङ्गुचन्द्रेऽयं मार्गशीर्षे सिते बले ।

पञ्चमीतृतिवारोऽयं ग्रन्थः पूर्ति मतः शुभः ॥

संवत् १९३८ मार्गशीर्ष शुक्ल ५ तृतिवार के दिन यह स्वीकृताङ्कित
ग्रन्थ श्रीभुक्त दधानन्द सरस्वतीजी ने पूरा किया ॥

॥ समाप्त ॥

ॐ श्रीः ३ ॐ

अधि कृत

शिक्षा व त्याकरण ग्रन्थ

- ☐ अन्वयार्थ
 - ☐ सांख्यवैशेषिक
 - ☐ उपाधिसौम्य
 - ☐ कारकीर्ण
 - ☐ गणपति
 - ☐ नायिक
 - ☐ निषण्ण
 - ☐ पारिभाषिक
 - ☐ सति विषय
 - ☐ सामासिक
 - ☐ मौल्य
 - ☐ स्वपलादित
 - ☐ यथोन्मार्ग शिक्षा
 - ☐ संस्कृतवाक्यप्रयोग
 - ☐ व्याख्यानभाषा
 - ☐ निष्ठा
- अवश्य पढ़ें ☐ ☐

प्राप्ति स्थान —

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर